जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

तृतीय सत्र का निर्धारित पाठ्यक्रम

लेखन एवं सङ्कलन :
पण्डित कैलाशचन्द्र जैन

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षुमण्डल, देहरादून
एवं
पण्डित कैलाशचन्द्र जैन परिवार, अलीगढ़

ॐ

॥ परमात्मने नमः ॥

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन ग्रन्थमाला, पुष्प-10

जैन-सिद्धान्त प्रवेशरत्नमाला

तृतीय सत्र का निर्धारित पाठ्यक्रम

लेखन एवं सङ्कलन :
पण्डित कैलाशचन्द्र जैन
'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़ (उ०प्र०)

प्रकाशक :
श्री दिगम्बर-जैन मुमुक्षुमण्डल, देहरादून
एवं
पण्डित कैलाशचन्द्र जैन परिवार, अलीगढ़

पाँचवाँ संस्करण : 1100 प्रतियाँ (सम्पादित)
(दशलक्षण महापर्व के पावन अवसर पर प्रकाशित, मंगलवार, 03 सितम्बर 2019)

मूल्य -

— मुमुक्षुता की प्रगटता अथवा भावना/संकल्प ही
इस पुस्तक का उचित मूल्य है।

Available At -

— **TEERTHDHAM MANGALAYATAN**
Aligarh-Agra Road, Sasni-204216, Hathras (U.P.)
www.mangalayatan.com; info@mangalayatan.com

— **TEERTHDHAM CHIDAYATAN**
Dusari Nasiyan se Aage, Hastinapur, Distt. Meerut-250404 (U.P.)
Shri Mukeshchand Jain, Mob, 9837079003

— **SHRI KUNDKUND KAHAN DIG. JAIN SWADHYAY MANDIR**
29, Gandhi Road, Dehradun-248001 (Uttarakhand)
Ph. : 0135 - 2654661 / 2623131

— **AZAD TRADING COMPANY**
Jain Mandir ke Neeche, Lal Kauyan, Bulandshahar-203001 (U.P.)
Ph. : 9897096781

— **SHREE KUNDKUND-KAHAN PARMARTHIK TRUST**
302, Krishna-Kunj, Plot No. 30,
Navyug CHS Ltd., V.L. Mehta Marg,
Vile Parle (W), Mumbai - 400056
e-mail : vitragva@vsnl.com / shethhiten@rediffmail.com

टाइप सेटिंग :
मङ्गलायतन ग्राफिक्स, अलीगढ़

मुद्रक :
मङ्गलायतन मुद्रणालय, अलीगढ़

प्रकाशकीय

जगत के सब जीव, सुख चाहते हैं और दु:ख से भयभीत हैं। सुखी होने के लिये, जिनवचनों को समझना अत्यन्त आवश्यक है, इसी प्रयोजन हेतु जिनधर्म में प्रवेश पाने के इच्छुक छात्रों/मङ्गलार्थियों को आगमानुसार, जिनधर्म की शिक्षा प्रदान कर, भविष्य को शाश्वत सुख की ओर अग्रसर करने का प्रयास किया जा रहा है। जिनधर्म के रहस्यों के उद्घोषक अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी की शरण में रहकर, पूज्य पण्डितश्री कैलाशचन्द्रजी जैन ने समग्र जिनशासन के जिन मूलभूत सिद्धान्तों को सीखा, उन्हें 'जैन-सिद्धान्त प्रवेशरत्नमाला' के आठ भागों में गुंथित किया, जो जिनधर्म में प्रवेश पाने के लिये, अत्यन्त प्रयोजनभूत है। जैनधर्म के प्राणभूत जानकर, विद्यार्थियों की प्रारम्भ से लेकर बारहवीं कक्षा तक के विद्यार्थियों के लिये यह पाठ्यक्रम में शामिल करने का निर्णय, विद्वानों की एक बैठक में लिया गया। ***मङ्गलायतन*** में प्रायोजित इस बैठक में, बालब्रह्मचारिणी बहिन कल्पना जैन, सागर/जयपुर; श्रीमती बीना जैन, देहरादून; पण्डित अशोक लुहाड़िया, भूतपूर्व निदेशक; पण्डित सचिन जैन, पण्डित सुधीर जैन, निदेशक; डॉ. सचिन्द्र जैन, प्राचार्य, भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन, ***तीर्थधाम मङ्गलायतन,*** शामिल थे।

इस पाठ्यक्रम की सरलता, आत्मकल्याण हेतु महत्तानुसार सभी आध्यात्मिक विद्यालयों में प्रारम्भ कराने की ओर भी, हमारी भावना है।

सभी विद्यार्थी इन भागों में समाहित जिनधर्म की नींवरूप सिद्धान्तों को गम्भीरता से ग्रहणकर, अपने दृष्टि दोष दूरकर, आत्मानुभवता करें-यही मंगल भावना है।

निवेदक

प्रकाशक मण्डल

भूमिका

वीतरागी जिनेन्द्र परमात्मा का अनेकान्त-स्याद्वादमयी जिनशासन, चार अनुयोगमय है एवं जिनवाणी में अनेकान्तमय वस्तु का स्याद्वादशैली में प्रतिपादन किया गया है। आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने अनेकान्त को जिनेन्द्रभगवान का अलंघ्य शासन कहा है। इसलिए अनेकान्तमय वस्तु को जानकर, उसमें से सम्यक् एकान्तस्वरूप निज शुद्धात्मद्रव्य का अवलम्बन ही परम हितकारी है, इसलिए इस चौथे भाग में सर्व प्रथम अनेकान्त स्याद्वाद सम्बन्धी प्रश्नोत्तर दिये गये हैं।

आत्मा का हित मोक्ष ही है क्योंकि मोक्ष में आकुलता नहीं है; अत: निज चैतन्यस्वभावी भगवान आत्मा के आश्रय से मोक्षमार्ग प्रगट करना, प्रत्येक पात्र जीव का कर्तव्य है। अनादि काल से ही अज्ञानी जीव, शुभभावरूप पराश्रितभावों में मोक्षमार्ग की कल्पना करके अथवा शरीराश्रित क्रियाकाण्ड में मोक्षमार्ग मानकर, संसार परिभ्रमण का पात्र बना हुआ है; इसलिए दूसरे और तीसरे अध्याय में मोक्षमार्ग तथा मोक्षमार्ग सम्बन्धी प्रश्नोत्तरों का समावेश किया गया है; जिससे बन्धमार्ग में मोक्षमार्ग माननेरूप मिथ्याभ्रान्ति का अभाव होकर आत्मकल्याण का पथ प्रशस्त हो।

तत्त्वार्थसूत्र में जीवों के निज भावों का वर्णन करते हुए, औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक, औदयिक एवं पारिणामिकभाव को जीव का स्वतत्त्व कहा गया है। इन भावों का स्वरूप पहचानकर, उपादेयभूत निज परमपारिणामिकभाव के अवलम्बन से, सर्व प्रथम औपशमिक, धर्म का क्षायोपशमिक और क्षायिकभाव प्रगट करना पात्र जीवों का कर्तव्य है। यद्यपि औदयिकभाव भी जीव की पर्याय में होता है, तथापि आकुलतामय होने से उसे हेय कहा गया है। इन सभी पंच भावों पर उपयोगी प्रश्नोत्तरों का समावेश भी इस पुस्तक में किया गया है।

पण्डित राजमलजी द्वारा रचित पंचाध्यायी ग्रन्थ अध्यात्म के सूक्ष्म एवं गम्भीर रहस्यों से भरपूर है। इसमें द्रव्य-गुण-पर्याय; निश्चय-व्यवहार आदि

नय; जीवों के पाँच भाव; सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्मता से प्रतिपादित किया गया है। अत: पात्र जीवों के लिये उपयोगी जानकर, इस ग्रन्थ के आधार पर प्रश्नोत्तरों का संकलन अन्त में परिशिष्टरूप से दिया गया है।

यहाँ यह विशेष उल्लेखनीय है कि वर्तमान दिगम्बर जैन समाज में उक्त समस्त विषयों की चर्चा का उदय पूज्य गुरुदेवश्री की अध्यात्म क्रान्ति से ही हुआ है। पूज्य गुरुदेवश्री ने अपने प्रवचनों में जैन सिद्धान्तों का आत्महितकारी स्वरूप स्पष्ट करते हुए, निरन्तर आत्मकल्याण की पावन प्रेरणा भी प्रदान की है। इस उपकार के लिये पूज्य गुरुदेवश्री के चरणों में सादर वन्दन समर्पित करता हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन एवं समादरणीय श्री रामजीभाई दोशी, श्री खीमचन्दभाई सेठ की कक्षाओं के समय ही मैं इन विषयों को प्रश्नोत्तररूप से आत्महितार्थ लिखता रहा हूँ, जिसे देहरादून मुमुक्षु मण्डल ने अब तक तीन बार प्रकाशित किया है। अब यह चौथा संस्करण मेरी भावना के अनुरूप सम्पादित होकर प्रकाशित किया जा रहा है, जिसकी मुझे प्रसन्नता है।

हे जीवों! यदि आत्महित करना चाहते हो तो समस्त प्रकार से परिपूर्ण निज आत्मस्वभाव की रुचि और विश्वास करो। देहादि से सर्वथा भिन्न ज्ञानस्वरूप निज आत्मा का निर्णय करना ही सम्पूर्ण जिनशासन का सार है क्योंकि जो जीव, देहादि से भिन्न ज्ञान-दर्शनस्वभावी आत्मा का आश्रय लेते हैं, वे मोक्षमार्ग प्राप्त कर मोक्ष को चले जाते हैं और जो देहादि में ही अपनेपने का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण करते हैं, वे चारों गतियों में घूमकर निगोद में चले जाते हैं।

सभी जीव इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किये गये प्रश्नोत्तरों का बारम्बार अभ्यास करके, आत्महित के मार्ग में प्रवर्तमान हों - इसी भावना के साथ-

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन

अलीगढ़

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी
(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारत की वसुन्धरा, अनादि से ही तीर्थङ्कर भगवन्तों, वीतरागी सन्तों, ज्ञानी-धर्मात्माओं एवं दार्शनिक / आध्यात्मिक चिन्तकों जन्मदात्री रही है। इसी देश में वर्तमान काल में भगवान ऋषभदेव से लेकर भगवान महावीर तक चौबीस तीर्थङ्कर हुए हैं। वर्तमान में भगवान महावीर के शासनकाल में धरसेन आदि महान दिगम्बर सन्त, श्रीमद् कुन्दकुन्दाचार्य आदि महान आध्यात्मिक सन्त, इस पवित्र जिनशासन की पताका को दिगदिगन्त में फहराते रहे हैं।

वर्तमान शताब्दी में जिनेन्द्रभगवन्तों, वीतरागी सन्तों एवं ज्ञानी धर्मात्माओं द्वारा उद्घाटित इस शाश्वत् सत्य को, जिन्होंने अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से स्वयं आत्मसात करते हुए पैंतालीस वर्षों तक अविरल प्रवाहित अपनी दिव्यवाणी से, इस विश्व में आध्यात्मिक क्रान्ति का शंखनाद किया - ऐसे परमोपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी से आज कौन अपरिचित है! पूज्य गुरुदेवश्री ने क्रियाकाण्ड की काली कारा में कैद, इस विशुद्ध जिनशासन को अपने आध्यात्मिक आभामण्डल के द्वारा न मुक्त ही किया, अपितु उसका ऐसा प्रचार-प्रसार जिसने मानों इस विषम पञ्चम काल में तीर्थङ्करों का विरह भुलाकर, भरतक्षेत्र को विदेहक्षेत्र और पञ्चम काल को चौथा काल ही बना दिया।

भारतदेश के गुजरात राज्य में भावनगर जनपद के 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल, सन् 1890 ईस्वी) प्रातःकाल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

सात वर्ष की वय में लौकिक शिक्षा लेना प्रारम्भ किया। प्रत्येक वस्तु के हृदय तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धिप्रतिभा, मधुरभाषीपना, शान्तस्वभाव, सौम्य व गम्भीर मुखमुद्रा, तथा निस्पृह स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में प्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में

प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में माता के अवसान से, पिताजी के साथ पालेज जाना हुआ। चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर रात्रि के समय रामलीला या नाटक देखने जाते, तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन के काव्य की रचना करते हैं — **शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।**

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करते हैं, और गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार करते हैं, फिर 24 वर्ष की उम्र में (विक्रम संवत् 1970) में जन्मनगरी उमराला में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार करते हैं। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाती है, तीक्ष्ण बुद्धि के धारक कानजी को शङ्का होती है कि कुछ गलत हो रहा है।

विक्रम संवत् 1978 में महावीरप्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसङ्ग बनता है :

विधि के किसी धन्य क्षण में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, गुरुदेवश्री के हस्तकमल में आता है और इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकलते है — **'यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** समयसार का अध्ययन और चिन्तन करते हुए अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रस्फुटित होता है एवं अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन होता है। भूली पड़ी परिणति निज घर देखती है। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका

इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो जाता है कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण अन्तरंग श्रद्धा कुछ और तथा बाहर में वेष कुछ और — यह स्थिति आपको असह्य लगने लगती है। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय करते हैं।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थल की शोध करते हुए सोनगढ़ आकर 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर जन्मकल्याणक के दिवस, (चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991) दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न, मुँहपट्टी का त्याग करते हैं और स्वयं घोषित करते हैं कि '**अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।**' सिंहवृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्‌भुत पराक्रमी कार्य किया।

'स्टार ऑफ इण्डिया' में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा। अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय-मन्दिर**' का निर्माण किया। गुरुदेवश्री ने ज्येष्ठ कृष्णा 8, संवत् 1994 के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह 'स्वाध्यायमन्दिर' जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

यहाँ दिगम्बरधर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया। उनमें से 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर तो 19 बार अध्यात्म वर्षा की। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्‌घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1961 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण किया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह

ॐ

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

भाग - 3

आत्मस्तवन : 47 शक्तियोंरूप मङ्गलाचरण

जीव है अनन्ती शक्ति सम्पन्न, राग से वह भिन्न है;
उस जीव को लक्षित कराने, 'ज्ञानमात्र' कहा उसे ॥1॥

एक ज्ञानमात्र ही भाव में, शक्ति अनन्ती उल्लसे;
यह कथन है उन शक्ति का, भवि जीव जानों प्रेम से ॥2॥

'जीवत्व'[1] से जीवे सदा, जीव चेतता 'चिति'[2] शक्ति से;
'दृशि'[3] शक्ति से देखे सभी, अरु जानता वह 'ज्ञान'[4]से ॥3॥

आकुल नहिं 'सुख'[5] शक्ति से, निज को रचे निज 'वीर्य'[6] से;
'प्रभुत्व'[7] से वह शोभता, व्यापक वही 'विभु'[8] शक्ति से ॥4॥

सामान्य देखे विश्व को, यह 'सर्वदर्शि'[9] शक्ति है;
जाने विशेषे विश्व को, 'सर्वज्ञता'[10] की शक्ति है ॥5॥

जहँ दीसता है विश्व सारा, शक्ति यह 'स्वच्छत्व'[11] की;
है स्पष्ट स्वानुभावमयी, यह शक्ति जान 'प्रकाश'[12] की ॥6॥

विकास में संकोच नहीं',[13] यह शक्ति तेरहवीं जानना;
नहिं कार्य-कारण'[14] है किसी का, भाव ऐसा आत्म का ॥7॥

जो ज्ञेय का ज्ञाता बने, अरु ज्ञेय होता ज्ञान में;
उस शक्ति को 'परिणम्य-परिणामक'[15] कहा है शास्त्र में ॥8॥

'नहीं त्याग-नहीं ग्रहण'[16] बस! निजस्वरूप में स्थित है;
स्वरूपे प्रतिष्ठित जीव की, शक्ति 'अगुरुलघुत्व'[17] है ॥9॥

'उत्पाद-व्यय-ध्रुव'[18] शक्ति से, जीव क्रम-अक्रम वृत्ति धरे;
है सत्पना 'परिणामशक्ति',[19] तीन काल में नहीं फिरे ॥10॥

नहीं स्पर्श जाणो जीव में, आत्म प्रदेश 'अमूर्त'[20] हैं;
कर्ता नहीं परभाव का, ऐसी 'अकर्तृत्व'[21] शक्ति है ॥11॥

भोक्ता नहीं परभाव का, ऐसी 'अभोक्तृत्व'[22] शक्ति है;
'निष्क्रियता'[23] रूपशक्ति से, आत्म प्रदेश निस्पंद हैं ॥12॥

असंख्य निज अवयव घेरें, 'नियत प्रदेशी'[24] आत्म है;
जीव, देह में नहीं व्यापता, 'स्वधर्म-व्यापक'[25] शक्ति है ॥13॥

'स्व-पर में जो सम अरु, विषय तथा जो मिश्र है'[26];
ऐसे त्रयविध धर्म को, निज शक्ति से आत्मा धरें ॥14॥

जीव अनन्त भावों धारता, 'अनन्त धर्म की'[27] शक्ति से;
तत्-अतत् दोनों भाव वरते, 'विरुद्धधर्म'[28] की शक्ति से ॥15॥

जो ज्ञान का तद्रूप-भवन सो, 'तत्त्व'[29] नामक शक्ति है;
जीव में अतद्रूप परिणमन, जानों 'अतत्त्व'[30] की शक्ति से ॥16॥

बहु पर्ययों में व्यापता, एक द्रव्यता को नहिं तजे;
निज स्वरूप की 'एकत्व'[31] शक्ति, जान जीव शान्ति लहे ॥17॥

जीव, द्रव्य से है एक फिर भी, 'अनेक'[32] पर्ययरूप बने;
स्व पर्ययों में व्याप कर, जीव, सुखी ज्ञानी सिद्ध बनें ॥18॥

है 'भावशक्ति'[33] जीव की, सत्रूप अवस्था वर्तती;
फिर असत्रूप है पर्ययों, 'अभावशक्ति'[34] जीव की ॥19॥

'भाव का होता अभाव'[35] 'अभाव का फिर भाव'[36] है;
ये शक्ति दोनों साथ रहती, ज्ञान में तु जान ले ॥20॥

जो 'भाव रहता भाव'[37] ही, 'अभाव नित्य अभाव'[38] है;
स्वभाव ऐसा जीव का, निजगुण से भरपूर है ॥21॥

नहीं कारकों को अनुसरे, ऐसा ही 'भवता भाव'[39] है;
जो कारकों को अनुसरे, सो 'क्रिया'[40] नामक शक्ति है ॥22॥

है 'कर्मशक्ति'[41] आत्मा में, वह धारता सिद्धभाव को;
फिर 'कर्तृत्वशक्ति'[42] से स्वयं, बन जाते भावकरूप जो ॥23॥

है ज्ञानरूप जो शुद्धभावों, उनका जो भवन है;
आत्मा स्वयं उन भावों का, उत्कृष्ट साधन होत है ॥24॥

निज 'करणशक्ति'[43] जानरे तू बाह्य साधन शोध ना;
आत्मा ही तेरा करण है, फिर बात दूसरी पूछ ना ॥25॥

निज आत्मा निज आत्म को ही, ज्ञान भाव जो देत है;
उसका ग्रहण है आत्म को, यह 'सम्प्रदान'[44] स्वभाव है ॥26॥

उत्पाद-व्यय से क्षणिक है, पर ध्रुव की हानि नहीं;
सेवो सदा सामर्थ्य ऐसे, 'अपादान'[1] का आत्म में ॥27॥

भाव्यरूप जो ज्ञानभावों परिणमे है आत्म में;
'अधिकरण'[1] उनका आत्मा है, सुनलो अहो जिनवचन में ॥28॥

है 'स्व अरु स्वामित्व'[1] मेरा, मात्र निज स्वभाव में;
नहीं स्वत्व मेरा है कभी, निज भाव से को अन्य में ॥29॥

अनेकान्त है जयवन्त अहो! निज शक्ति को प्रकाशता;
शक्ति अनन्ती मेरी वह, मुझ ज्ञान में ही दिखावता ॥30॥

यह ज्ञान लक्षण भाव, सह भावों अनन्ते उल्लसे;
अनुभव करूँ उनका अहो! विभाव कोई नहीं दिखे ॥31॥

जिनमार्ग पाया मैं अहो!, श्री गुरु वचन प्रसाद से;
देखा अहा निजरूप चेतन, पार जो परभाव से॥32॥

निज विभव को देखा अहो!, श्रीसमयसार प्रसाद से;
निज शक्ति का वैभव अहो!, यह पार है परभाव से॥33॥

ज्ञानमात्र ही एक ज्ञायक, पिण्ड हूँ मैं आतमा;
अनन्त गम्भीरता भरी मुझ, आत्म ही परमात्मा॥34॥

आश्चर्य अद्भूत होत है, निज विभव की पहचान से;
आनन्दमय आह्लाद ऊछले, मुहूर-मुहूर ध्यान से॥35॥

अद्भूत अहो अद्भूत अहो! है विजयवन्त स्वभाव यह;
जयवन्त है गुरुदेव ने, मुझ निज निधान बता दिया॥36॥

1

समयसार के प्रथम कलश का रहस्य

प्रश्न 1- श्रीसमयसार का पहला कलश क्या है ?

उत्तर - नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे ॥1॥

प्रश्न 2- 'नमः समयसाराय' का क्या भावार्थ है ?

उत्तर - 'समय', अर्थात् मेरी आत्मा-जो द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से रहित है। उस (आत्मा) की ओर दृष्टि होना, यह 'नमः समयसाराय' का भावार्थ है।

प्रश्न 3- 'समय' शब्द के कितने अर्थ हैं ?

उत्तर - 'समय' शब्द के अनेक अर्थ है; (1) आत्मा का नाम, समय है, (2) सर्व पदार्थ का नाम, समय है, (3) काल का नाम, समय है, (4) शास्त्र का नाम, समय है, (5) समयमात्र काल का नाम, समय है, (6) मत का नाम, समय है।

[मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 297]

प्रश्न 4- 'समय' शब्द का अर्थ आपने आत्मा कैसे कर दिया है ?

उत्तर - 'सम' उपसर्ग है। 'सम' का अर्थ एक साथ है। अय् गतौ धातु है। 'अय्' का अर्थ गमन और ज्ञान भी है; इसलिए एक ही साथ जानना और परिणमन करना, यह दोनों क्रियाएँ जिसमें हो, वह समय है, इस अपेक्षा भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने समय शब्द का अर्थ, आत्मा किया है।

प्रश्न 5- 'नमः समयसाराय' में अपनी आत्मा को ही क्यों नमस्कार किया है; अन्य को क्यों नहीं ?

उत्तर - समयसार, अर्थात् शुद्धजीव ही परमार्थ से नमस्कार करने योग्य है; दूसरा नहीं है।

प्रश्न 6- किसी इष्टदेव का नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया ?

उत्तर - परमार्थतः इष्टदेव का सामान्यस्वरूप सर्व कर्मरहित, सर्वज्ञ, वीतराग, शुद्ध आत्मा ही है; इसलिए आत्मा को ही सारपना घटित होता है।

प्रश्न 7- शुद्धजीव के ही सारपना घटित है, यह कहाँ लिखा है ?

उत्तर - सार, अर्थात् हितकारी; असार, अर्थात् अहितकारी। सो हितकारी सुख जानना, अहितकारी दुःख जानना। क्योंकि अजीव पदार्थ - पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल के और संसारी जीव के सुख नहीं, ज्ञान नहीं और उनका स्वरूप जानने पर जाननहारे जीव को भी सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं। शुद्धजीव के सुख है, ज्ञान भी है। उनको जानने पर—अनुभव करने पर, जाननेवाले को सुख है, ज्ञान भी है; इसलिए शुद्धजीव को ही सारपना घटता है। (अर्थात्, ज्ञानियों को ही सारपना घटित होता है।)*[पण्डित राजमलजी कृत टीका]*

प्रश्न 8- ज्ञानियों को ही सारपना घटता है - ऐसा कहीं छहढाला में कहा है ?

उत्तर - तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहूँ त्रियोग सम्हारिकै ॥3॥
(पहली ढाल)

आतम को हित है सुख, सों सुख आकुलता बिन कहिए।
आकुलता शिव मॉहि न तातै, शिवमग लाग्यो चहिए॥1॥

(तीसरी ढाल)

प्रश्न 9- 'नमः' शब्द का क्या अर्थ है ?

उत्तर - नमना, झुकना, अर्थात् अपनी ओर लीन होना, यह 'नमः' का अर्थ है।

प्रश्न 10- नमस्कार कितने हैं और कौन-कौन से ?

उत्तर - पाँच है - (1) शक्तिरूप नमस्कार। (2) एकदेशभाव नमस्कार। (3) द्रव्यनमस्कार। (4) जड़नमस्कार। (5) पूर्णभाव नमस्कार।

प्रश्न 11- इन पाँच नमस्कारों को समझाइये ?

उत्तर - अनन्त गुणों का अभेद पिण्डरूप ज्ञायकभाव, वह **शक्तिरूप नमस्कार** है। शक्तिरूप नमस्कार का आश्रय लेने से, प्रथम **एकदेश भावनमस्कार** की प्राप्ति होती है और अपने शक्तिरूप नमस्कार का पूर्ण आश्रय लेने से पर्याय में **पूर्ण भावनमस्कार** की प्राप्ति होती है। यह ज्ञानियों को ही होता है। ज्ञानियों को अपनी -अपनी भूमिका अनुसार जो वीतराग-सर्वज्ञ आदि के प्रति बहुमान का राग आता है, वह **द्रव्यनमस्कार** है। शरीर की क्रिया द्वारा जो नमस्कार होता है, वह **जड़नमस्कार** है। द्रव्यनमस्कार और जड़नमस्कार का निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है।

प्रश्न 12- इन पाँच नमस्कारों में हेय-ज्ञेय-उपादेय कौन -कौन हैं ?

उत्तर - (1) 'शक्तिरूप नमस्कार' — आश्रय करने योग्य उपादेय। (2) एकदेश भावनमस्कार — प्रकट करने योग्य एकदेश

उपादेय। (3) द्रव्यनमस्कार — हेय। (4) जड़नमस्कार — ज्ञेय। (5) पूर्ण भावनमस्कार — पूर्ण प्रकट करने योग्य उपादेय।

प्रश्न 13- इन पाँच नमस्कारों से क्या सिद्ध हुआ ?

उत्तर - (1) शक्तिरूप नमस्कार का आश्रय लेने से एकदेश भावनमस्कार की प्राप्ति होती है।

(2) एकदेश भावनमस्कार की प्राप्ति होने पर, द्रव्यनमस्कार पर उपचार / आरोप आता है। तभी निमित्त को जड़नमस्कार कहा जाता है।

(3) परिपूर्ण शक्तिरूप नमस्कार का परिपूर्ण आश्रय लेने पर ही पूर्ण भावनमस्कार प्राप्त होता है। पर या विकारभावों के आश्रय से मात्र संसार परिभ्रमण ही रहता है।

प्रश्न 14- 'सार' शब्द का अस्ति और नास्ति से अर्थ करके 'सार' पर नौ पदार्थ लगाओ ?

उत्तर - 'सार' शब्द का नास्ति से अर्थ, द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से रहित है। द्रव्यकर्म और नोकर्म में अजीवतत्त्व आ गया। और भावकर्म में आस्रव-बन्ध, पुण्य-पाप आ गये। 'सार' का अर्थ अस्ति से परमसार जीव है, एकदेश सार संवर-निर्जरा हैं। पूर्णसार मोक्ष है। इस प्रकार नौ पदार्थ आ गये।

प्रश्न 15- अपनी आत्मा को सार करने से क्या प्राप्त होता है ?

उत्तर - वीतराग-विज्ञानता, अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 16- अजीव को सार करने से क्या होता है ?

उत्तर - चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद में चला जाता है।

प्रश्न 17- असार क्या है और सार क्या है ?

उत्तर - नौ प्रकार का पक्ष असार है; एकमात्र अपनी आत्मा ही सार है। उसको सार करने से धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्रश्न 18- पाँच प्रकार के नमस्कारों पर नौ तत्त्व / पदार्थ लगाकर बताओ और साथ ही क्या लाभ-नुकसान रहा, यह भी बताओ ?

उत्तर - शक्तिरूप नमस्कार में जीवतत्त्व आया। एकदेश भावनमस्कार में संवर-निर्जरातत्त्व आये। द्रव्यनमस्कार में आस्रव -बन्ध, पुण्य-पाप तत्त्व आये। जड़नमस्कार में अजीवतत्त्व आया। पूर्ण भावनमस्कार में मोक्षतत्त्व आया। अपने जीवतत्त्व का आश्रय ले, तो संवर-निर्जरा की प्राप्ति होकर, क्रम से मोक्ष की प्राप्ति होती है; अजीव और आस्रव-बन्ध से भला-बुरा माने, तो चारों गतियों में घूमते हुए निगोद की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 19- पाँच प्रकार के नमस्कारों पर (1) चार काल, (2) औपशमिक आदि पाँच भाव, (3) संयोग आदि तीन बोल, (4) देव-गुरु-धर्म, (5) सुखदायक-दुःखदायक घटित करके बताओ, साथ ही इसे जानने से क्या लाभ-नुकसान रहा यह भी बताओ।

उत्तर - (1) चार काल - अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त, सादी-सान्त, सादि-अनन्त।

शक्तिरूप नमस्कार - (1) अनादि-अनन्त; **एकदेश भावनमस्कार** — सादि-सान्त; **द्रव्यनमस्कार** — अनादि-सान्त; **जड़नमस्कार** — अनादि-अनन्त; **पूर्ण भावनमस्कार** — सादि -अनन्त है।

इनमें से अनादि-अनन्त शक्तिरूप नमस्कार का आश्रय ले तो सादि-सान्त एकदेश भावनमस्कार की प्राप्ति होती है। अभी पूर्ण भावनमस्कार के अभाव में, अनादि-सान्त द्रव्यनमस्कार और निमित्तरूप जड़नमस्कार पाया जाता है। फिर जैसे ही अनादि-अनन्त शक्तिरूप नमस्कार का पूर्ण आश्रय लेता है तो सादि-अनन्त पूर्ण भावनमस्कार की प्राप्ति होती है। यदि अनादि-सान्त द्रव्यनमस्कार और निमित्तरूप जड़नमस्कार से अपना भला-बुरा माने तो चारों गतियों में घूमकर, निगोद की प्राप्ति होती है।

(2) औपशमिक आदि पाँच भाव - (1) औपशमिक, (2) क्षायिक, (3) क्षायोपशमिक, (4) औदयिक, (5) पारिणामिक।

शक्तिरूप नमस्कार - पारिणामिकभाव; एकदेश भावनमस्कार - औपशमिकभाव, धर्म का क्षयोपशमभाव, सम्यग्दर्शन की अपेक्षा क्षायिकभाव।

द्रव्यनमस्कार - औदयिकभाव।

जड़नमस्कार - इन पाँच में से कोई भाव नहीं (अजीवतत्त्व)

पूर्ण भावनमस्कार - क्षायिकभाव।

पारिणामिकभावरूप शक्तिरूप नमस्कार का आश्रय ले तो एकदेश भावनमस्कार की प्राप्ति होकर; पूर्ण आश्रय लेने पर पूर्ण भावनमस्कार की प्राप्ति होती है। यदि जड़नमस्कार और द्रव्यनमस्कार से हित होना माने तो चारों गति में घूमता हुआ, निगोद चला जाता है।

(3) संयोगादि पाँच बोल - (1) संयोग, (2) संयोगीभाव, (3) स्वभाव त्रिकाली, (4) स्वभाव के साधन, (5) सिद्धत्व।

शक्तिरूप नमस्कार - स्वभाव त्रिकाली।

एकदेश भावनमस्कार - स्वभाव के साधन।

द्रव्यनमस्कार – संयोगीभाव।

जड़नमस्कार – संयोग।

पूर्ण भावनमस्कार – सिद्धत्व।

शक्तिरूप नमस्कारस्वरूप स्वभाव त्रिकाली का आश्रय ले तो एकदेश भावनमस्काररूप स्वभाव के साधन की प्राप्ति होकर; स्वभाव त्रिकाली का पूर्ण आश्रय होने पर सिद्धत्व की प्राप्ति होती है। यदि संयोगरूप जड़नमस्कार और संयोगीभावरूप द्रव्यनमस्कार से अपना भला होना माने तो चारों गतियों में घूमकर, निगोद की प्राप्ति होती है।

देव-गुरु-धर्म –

शक्तिरूप नमस्कार – धर्म (धर्मस्वरूप आत्मा)

एकदेश भावनमस्कार – गुरु (आचार्य, उपाध्याय, साधु)

पूर्ण भावनमस्कार – देव (अरहन्त, सिद्ध)

जड़नमस्कार और द्रव्यनमस्कार – इनमें से कोई नहीं

शक्तिरूप नमस्कारस्वरूप धर्म, अर्थात् त्रिकाली स्वभाव का आश्रय ले तो एकदेश भावनमस्काररूप गुरुपने की प्राप्ति होकर; धर्मस्वरूप स्वभाव का पूर्ण आश्रय होने पर पूर्ण भावनमस्कारस्वरूप देवपने की प्राप्ति होती है। यदि जड़नमस्कार और द्रव्यनमस्कार से अपना हित होना माने तो देव-गुरु-धर्म की विराधना होने से चारों गतियों में परिभ्रमण करते हुए, निगोद की प्राप्ति होती है।

सुखदायक : दुःखदायक –

शक्तिरूप नमस्कार – परम सुखदायक।

एकदेश भावनमस्कार – एकदेश सुखदायक।

पूर्ण भावनमस्कार – पूर्ण सुखदायक।

द्रव्यनमस्कार – दुःखदायक

जड़नमस्कार – न सुखदायक, न दु:खदायक।

परम सुखदायक शक्तिरूप नमस्कार का आश्रय ले तो एकदेश सुखदायक, एकदेश भावनमस्कार की प्राप्ति होती है और शक्तिरूप नमस्कारस्वरूप परम सुखदायक का पूर्ण आश्रय होने पर, पूर्ण सुखदायक पूर्ण भावनमस्कार की प्राप्ति होती है। यदि दु:खदायक द्रव्यनमस्कार और संयोगरूप जड़नमस्कार से अपना हित होना माने तो चारों गतियों में घूमकर महा दु:खदायक निगोददशा की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 20– 'भावाय-चित्स्वभावाय' का क्या भावार्थ है ?

उत्तर – (1) **'भावाय,'** अर्थात् त्रिकाली द्रव्य, यह मेरी सत्ता है। परद्रव्यों की सत्ता से मेरा किसी भी प्रकार का कर्ता-कर्म, भोक्ता-भोग्यसम्बन्ध नहीं है – ऐसा अनुभव-ज्ञान होते ही धर्मदशा प्रगट होना, यह भावाय को जानने का लाभ है।

(2) **'चित्स्वभावाय',** अर्थात् मुझ आत्मा का सम्बन्ध ज्ञान -दर्शनादि अनन्त गुणों से है। नौ प्रकार के पक्षों से मेरा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है; इसलिए ज्ञान-दर्शन से आत्मा की पहिचान करायी है।

प्रश्न 21– 'चित्स्वभावाय-भावाय' में द्रव्य-गुण क्या -क्या है ?

उत्तर – 'चित्स्वभावाय', गुण को बताता है और 'भावाय, द्रव्य' को बताता है।

प्रश्न 22– जैसे—प्रथम कलश में ज्ञान-दर्शन से जीव की पहिचान करायी है, ऐसी पहिचान और कहीं भी शास्त्र में करायी है ?

उत्तर – (1) समयसार, गाथा 24 में 'सर्वज्ञ ज्ञान विषै सदा, उपयोग लक्षण जीव है।

(2) मोक्षशास्त्र में 'उपयोगों लक्षणम्' कहा है।

(3) छहढाला में 'चेतन को है उपयोगरूप' – ऐसा कहा है।

(4) द्रव्यसंग्रह में 'सुद्धणया सुद्धपुण दंसणं णाणं' कहा है।

(5) समयसार, गाथा 38 में 'मैं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञान –दृग हूँ यथार्थ से' – बताया है।

प्रश्न 23– सब अनुयोगों में जीव का लक्षण ज्ञान–दर्शन क्यों बताया है?

उत्तर – मैं, परद्रव्यों को, शरीरादि को हिला–डुला सकता हूँ – ऐसी मिथ्या मान्यता का अभाव करने के लिए ज्ञान–दर्शन, जीव का लक्षण बताया है क्योंकि नित्य उपयोग लक्षणवाला जीवद्रव्य, कभी परद्रव्योंरूप तथा शरीरादिरूप होता हुआ देखने में नहीं आता है।

प्रश्न 24– 'स्वानुभूत्या चकासते' का क्या भावार्थ है?

उत्तर – आत्मा अपनी ही अनुभवनरूप क्रिया से प्रकाशित है, अर्थात् अपने से ही जानता है, प्रगट करता है। एकमात्र अपने चित्स्वभावाय पर दृष्टि करते ही शान्ति की प्राप्ति होती है – यह तात्पर्य है।

प्रश्न 25– 'स्वानुभूत्या चकासते' के पर्यायवाची शब्द क्या–क्या हैं?

उत्तर – निराकुलता; शुद्धात्मपरिणमन; अतीन्द्रियसुख; संवर –निर्जरा; स्वभाव के साधन आदि कहो या स्वानुभूति कहो – एक ही बात है।

प्रश्न 26– 'सर्व भावान्तरच्छिदे' का भावार्थ क्या है?

उत्तर - भगवान आत्मा, सर्व जीव और अजीवों को भूत -भविष्य-वर्तमान पर्यायसहित एक समय में, एक साथ जानता है। उनका करनेवाला, भोगनेवाला नहीं है - ऐसा जाने-माने तो अनन्त संसार का अभाव हो जाता है।

प्रश्न 27- 'सर्व भावान्तरच्छिदे' से क्या सिद्ध हुआ है ?

उत्तर - हे आत्मा! तू एक समय में लोकालोक को जानने -देखने के स्वभाववाला है - ऐसी तेरी अपूर्व महिमा है। इससे क्रमबद्धपर्याय की सिद्धि होती है। क्रमबद्धपर्याय को मानते ही जीव, चारों गतियों का अभावरूप पञ्चम गति का पात्र बन जाता है।

प्रश्न 28- आत्मा का अनुभव होते ही क्या होता है ?

उत्तर - जैसे—एक रत्ती सोने की पहिचान होते ही, विश्व के सम्पूर्ण सोने की पहिचान हो जाती है; उसी प्रकार अपने आत्मा का अनुभव होते ही, सिद्ध क्या करते हैं, सिद्धदशा क्या है; अरहन्त क्या करते हैं, अरहन्तदशा क्या है; मुनिराज क्या करते, मुनिदशा क्या है; श्रावक क्या करते हैं, श्रावकदशा क्या है; और अनादि से निगोद से लगाकर द्रव्यलिङ्गी मिथ्यादृष्टि क्या करते हैं, मिथ्यादृष्टिपना क्या है - आदि सब बातों का एक समय में ही ज्ञान हो जाता है। केवली के ज्ञान में और उस साधक के ज्ञान में जानने में अन्तर नहीं है; मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का ही भेद है; इसलिए हे भव्य! तू एक बार अपनी ओर दृष्टि करके देख, फिर क्या होता है! यह किसी से पूछना नहीं पड़ेगा, क्योंकि आत्मानुभव का ऐसा ही अलौकिक चमत्कार है।

प्रश्न 29- स्वानुभूत्या चकासते, चित्स्वभावाय-भावाय और सर्व भावान्तरच्छिदे पर, नौ पदार्थ लगाकर बताओ और लाभ-हानि भी बताओ ?

उत्तर - (1) **स्वानुभूत्या चकासते**—संवर-निर्जरा।

(2) **स्वानुभूत्या चकासते से विरुद्ध**—आस्रव-बन्ध, पुण्य -पाप।

(3) **चित्स्वभावाय-भावाय**—जीव।

(4) **चित्स्वभावाय-भावाय से विरुद्ध**—अजीव।

(5) **सर्वभावान्तरच्छिदे**—मोक्ष।

चित्स्वभावाय-भावाय का आश्रय लेवे तो स्वानुभूत्या चकासते की प्राप्ति होकर, सर्व भावान्तरच्छिदरूप बन जावे। चित्स्वभावाय-भावाय से विरुद्ध अजीव का आधार माने, तो स्वानुभूत्या चकासते के विरुद्ध आस्रव-बन्ध की प्राप्ति होकर, चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद की प्राप्ति करे।

प्रश्न 30- स्वानुभूत्या चकासते; चित्स्वभावाय-भावाय और सर्वभावान्तरच्छिदे पर (1) पाँच नमस्कार, (2) चार काल, (3) औपशमिक आदि पाँच भाव, (4) संयोगादि पाँच बोल, (5) देव-गुरु-धर्म, (6) सुखदायक-दुःखदायक, (7) हेय-उपादेय-ज्ञेय, (8) संयोग की पृथक्ता आदि तीन बोल घटित करते हुए, इससे होनेवाले लाभ-नुकसान को समझाइये।

उत्तर - (1) स्वानुभूत्या चकासते - (1) एकदेश भावनमस्कार, (2) सादि-सान्तकाल, (3) औपशमिक, धर्म का क्षयोपशमिक, और सम्यग्दर्शन की अपेक्षा क्षायिकभाव; (4) स्वभाव के साधन, (5) गुरु, (6) एकदेश सुखदायक (7) एकदेश उपादेय, एवं (8) स्वभाव सामर्थ्य का फल है।

(2) स्वानुभूत्या चकासते से विरुद्ध - (1) द्रव्यनमस्कार, (2) अनादि-सान्त, (3) औदयिकभाव, (4) संयोगीभाव,

(5) अधर्म, (6) दु:खदायक (7) हेय, और (8) विपरीतरूप विभाव है।

(3) चित्स्वभावाय-भावाय - (1) शक्तिरूप नमस्कार (2) अनादि-अनन्त, (3) पारिणामिकभाव, (4) स्वभावत्रिकाली, (5) धर्मस्वरूप, (6) परम सुखदायक, (7) परम उपादेय, सामर्थ्यरूप स्वभाव है।

(4) चित्स्वभावाय-भावाय से विरुद्ध (अजीव) - (1) जड़नमस्कार, (2) अनादि-अनन्त, (3) पाँच में से कोई भाव नहीं, (4) संयोग, (5) देव-गुरु-धर्म में से कोई नहीं, (6) न सुखदायक, न दु:खदायक, (7) ज्ञेय, (8) पृथक्रूप संयोग है।

(5) सर्वभावान्तरच्छिदे - (1) पूर्ण भावनमस्कार, (2) सादि -अनन्त, (3) क्षायिकभाव, (4) सिद्धत्व, (5) देव, (6) पूर्ण सुखदायक, (7) पूर्ण उपादेय, और (8) स्वभाव की सामर्थ्य का पूर्ण फल है।

यदि चित्स्वभावायरूप निज जीवस्वभाव का आश्रय ले तो स्वानुभूत्याचकासते की प्राप्ति होकर, क्रमश: सर्वभावान्तरच्छेद की प्राप्ति होती है और यदि चित्स्वभावाय से विरुद्ध, अजीव का आश्रय ले तो स्वानुभूत्याचकासते से विरुद्ध आस्रव-बन्ध, पुण्य-पाप, तथा मिथ्यात्व के कारण, चार गतियों में घूमता हुआ निगोद चला जाता है।

प्रश्न 31- भगवान ने अनेक बोलों से भगवान आत्मा की महिमा बतायी है, फिर भी हमें अपनी महिमा क्यों नहीं आती ?

उत्तर - चारों गतियों में घूमकर निगोद जाना अच्छा लगता है; इसलिए अपने भगवान आत्मा की महिमा नहीं आती है।

प्रश्न 32- निज भगवान आत्मा की महिमा कैसे आवे ?

उत्तर – (1) जीव, अनन्त हैं;

(2) जीव से अनन्त गुणा, पुद्गलद्रव्य हैं;

(3) पुद्गलद्रव्य से अनन्त गुणा, तीन काल के समय हैं;

(4) तीन काल के समयों से अनन्त गुणा, आकाशद्रव्य के प्रदेश हैं;

(5) आकाश में प्रदेशों से अनन्त गुणा, एक द्रव्य में गुण हैं;

(6) एक द्रव्य के गुणों से अनन्त गुणा, सब द्रव्यों में गुण हैं।

(7) सब द्रव्यों के गुणों से अनन्त गुणा, सब द्रव्यों की पर्यायें हैं।

(8) सब द्रव्यों की पर्यायों से अनन्त गुणा, अविभाग प्रतिच्छेद हैं।

विश्व में उक्त (आठ नम्बर तक) ही ज्ञेय है।

(9) विचारो! अपने आत्मा में आकाश के प्रदेशों से अनन्त गुणा अधिक, गुण हैं; उनमें से आत्मा में ज्ञान नाम का एक गुण है। उसकी केवलज्ञानरूप एक पर्याय है। उसमें आठ नम्बर तक जो ज्ञेय हैं, वह एक समय में ज्ञेयरूप से जाना जाता है – ऐसी ताकत केवलज्ञान की एक पर्याय में है। यदि ऐसे-ऐसे अनन्त विश्व हो, तो भी वे मेरे केवलज्ञान की पर्याय में ज्ञेय हो सकते हैं। एक समय की पर्याय की कितनी ताकत हैं! और केवलज्ञान... केवलज्ञान ऐसी अनन्त पर्यायें हैं।

(10) जब केवलज्ञान की इतनी ताकत है तो जिसमें से केवलज्ञान आता है, उस ज्ञानगुण की ताकत अमर्यादित है।

(11) ज्ञानगुण जैसे अनन्त गुण, मेरे में हैं। मैं, उन अनन्त गुणों का स्वामी हूँ – ऐसी अपनी महिमा समझ में आ जावे, तो जो अनादि से नौ प्रकार के पक्षों की महिमा है, उसका अभाव होकर, धर्म की शुरुआत, वृद्धि होकर, निर्वाण का पथिक बने।

प्रश्न 33- नौ प्रकार के पक्ष कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - (1) अत्यन्त भिन्न परपदार्थों का पक्ष।

(2) आँख-नाक-कान आदि औदारिकशरीर का पक्ष।

(3) तैजस-कार्माणशरीर का पक्ष।

(4) भाषा और मन का पक्ष।

(5) शुभाशुभ विकारीभावों का पक्ष।

(6) अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्याय का पक्ष।

(7) भेदनय का पक्ष।

(8) अभेदनय का पक्ष।

(9) भेदाभेदनय का पक्ष।

2

प्रतिक्रमण, आलोचना और प्रत्याख्यान का स्वरूप

प्रश्न 1- कुन्दकुन्दभगवान ने प्रतिक्रमण का स्वरूप नियमसार में क्या बताया है ?

उत्तर -

नारक नहीं, तिर्यंच-मानव-देव पर्यय मैं नहीं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं॥77॥

मैं मार्गणा के स्थान नहीं, गुणस्थान-जीवस्थान नहीं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं॥78॥

बालक नहीं मैं, वृद्ध नहिं, नहिं युवक तिन कारण नहीं।
कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं॥79॥

मैं राग नहिं, मैं द्वेष नहिं, नहिं मोह तिन कारण नहीं।
कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं॥80॥

मैं क्रोध नहिं, मैं मान नहिं, माया नहिं, मैं लोभ नहिं।
कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमोदक मैं नहीं॥81॥

मिथ्यात्व आदिक भावकी, की जीव ने चिर भावना।
सम्यक्त्व आदिक भावकी, पर की कभी न प्रभावना॥90॥

है जीव उत्तम अर्थ, मुनि तत्रस्थ हन्ता कर्म का।
अतएव है बस ध्यान ही, प्रतिक्रमण उत्तम अर्थ का॥92॥

प्रश्न 2- प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर - स्वास्थानात् यत्परस्थानं, प्रमादस्य वशाद्गतः।
भयोऽप्यागमनं तत्र प्रतिक्रमणमुच्यते॥

अर्थात्, प्रमाद के वश होकर स्वस्थान (अपना त्रिकाली-स्वभाव) को छोड़कर, परस्थान में (मोह-राग-द्वेषभावों में) गया हो, वहाँ से अपने स्थान में वापस आ जाना, उसे प्रतिक्रमण कहते हैं।

प्रश्न 3- भगवानकुन्दकुन्द ने समयसार में प्रतिक्रमण किसे कहा है ?

उत्तर -

शुभ और अशुभ अनेक विध, के कर्म पूरव जो किए।
उनको निवर्ते आत्म को, वो आत्मा प्रतिक्रमण है॥383॥

अर्थात्, पहले लगे हुए दोषों से आत्मा को निवृत्त करना, सो प्रतिक्रमण है; इसलिए निश्चय से विचार करने पर, जो आत्मा भूतकाल के कर्मों से अपने को भिन्न जानता, श्रद्धा करता और अनुभव करता है, वह आत्मा स्वयं ही प्रतिक्रमण है।

प्रश्न 4- प्रतिक्रमण के कितने भेद हैं ?

उत्तर - दो भेद हैं—द्रव्यप्रतिक्रमण, और भावप्रतिक्रमण।

प्रश्न 5- द्रव्यप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर - वर्तमान में भूतकाल के संयोगों को ज्ञेयरूप जानना, द्रव्यप्रतिक्रमण है। जैसे—दिल्ली में बैठे हुए ज्ञानी को सम्मेदशिखर, गिरनार, ज्ञानी-ध्यानियों का विचार आने पर, संयोगों को ज्ञेयरूप जानना, वह द्रव्यप्रतिक्रमण है।

प्रश्न 6- भावप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर - वर्तमान में भूतकाल के शुभाशुभभावों को ज्ञेयरूप ज्ञान

मे लेना, भावप्रतिक्रमण है। जैसे—दिल्ली में बैठै हुए ज्ञानी को सम्मेदशिखर और गिरनार में किये गये शुभाशुभभावों का ध्यान आने पर, शुभाशुभभावों को ज्ञेयरूप जानना, यह भावप्रतिक्रमण है।

प्रश्न 7- अप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर - प्रमाद के वश होकर, स्वस्थान को छोड़कर, परस्थान में गया हो, फिर वहाँ से अपने स्थान में वापस नहीं आना, उसे अप्रतिक्रमण कहते हैं।

प्रश्न 8- श्री कुन्दकुन्दभगवान ने समयसार, गाथा 283 से 285 तक में अप्रतिक्रमण किसे कहा है ?

उत्तर - अतीत काल में जिन द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म को ग्रहण किया था, उन्हें वर्तमान में अच्छा समझना, उनके संस्कार रहना, उनके प्रति ममत्व रहना, अप्रतिक्रमण है।

प्रश्न 9- अप्रतिक्रमण के कितने भेद हैं ?

उत्तर - दो भेद हैं—द्रव्यअप्रतिक्रमण और भावअप्रतिक्रमण।

प्रश्न 10- द्रव्यअप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर - वर्तमान समय में भूत काल के संयोगों को इष्ट-अनिष्ट मानना, द्रव्यअप्रतिक्रमण है। जैसे—दिल्ली में बैठै हुए कोई जीव विचार कर रहा है कि सम्मेदशिखर, गिरनार, ज्ञानी-ध्यानियों का संयोग मुझे सदैव बना रहे और अनिष्ट संयोग कभी न रहे, यह द्रव्यअप्रतिक्रमण है।

प्रश्न 11- भावअप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उत्तर - वर्तमान में भूत काल के शुभाशुभभावों के इष्ट-अनिष्ट मानना, भावअप्रतिक्रमण है। जैसे—दिल्ली में बैठे हुए कोई जीव सम्मेदशिखर और गिरनार में किये हुए शुभाशुभभावों में, अशुभभाव

जरा भी न होवे और शुभभावों को बनाये रखने का भाव, यह भावअप्रतिक्रमण है। *[श्रीसमयसार, कलश 226, देखें]*

प्रश्न 12- प्रतिक्रमण से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर - अनादि काल से अज्ञानी, भूत काल की परवस्तुओं को और शुभाशुभभावों को स्मरण करके, उन्हें इष्ट-अनिष्ट मानकर मिथ्यात्व की पुष्टि कर रहा था, तो सतगुरु कहते है कि हे जीव ! भूत काल सम्बन्धी द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म से दृष्टि उठाकर, एकमात्र अपने भूतार्थस्वभाव पर दृष्टि दे, तो ज्ञेय-ज्ञायकपना प्रकट हो और शान्ति की प्राप्ति हो।

प्रश्न 13- कुन्दकुन्दभगवान ने आलोचना का स्वरूप नियमसार में क्या बताया है ?

उत्तर -

नोकर्म, कर्म, विभाव, गुण पर्याय विरहित आतमा।
ध्याता उसे, उस श्रमण को होती परम-आलोचना ॥107॥

समभाव में परिणाम स्थापे और देखे आतमा।
जिनवरवृषभ उपदेश में वह जीव है आलोचना ॥109॥

जड़कर्म-तरु-जड़नाश के सामर्थ्यरूप स्वभाव है।
स्वाधीन निज समभाव, आलुंछन वही परिणाम है ॥110॥

प्रश्न 14- आलोचना किसे कहते हैं ?

उत्तर - अपने स्वरूप की (परमपारिणामिकभाव की) मर्यादा में रहकर ज्ञान करना, आलोचना है।

प्रश्न 15- भगवानकुन्दकुन्द ने समयसार में आलोचना किसे कहा है ?

उत्तर -

शुभ और अशुभ अनेक विध, है उदित जो इस काल में।
उन दोष को जो चेतता, आलोचना वह जीव है॥385॥

अर्थात्, वर्तमान दोष से आत्मा को पृथक् करना, वह आलोचना है; इसलिए निश्चय से विचार करने पर जो आत्मा, वर्तमान काल के द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मों से अपने को भिन्न जानता है, श्रद्धा करता है और अनुभव करता है, वह आत्मा स्वयं ही आलोचना है।

प्रश्न 16- आलोचना के कितने भेद हैं?

उत्तर - दो भेद हैं—द्रव्यआलोचना, और भावआलोचना।

प्रश्न 17- द्रव्यआलोचना किसे कहते हैं?

उत्तर - वर्तमान में वर्तमान के संयोगसम्बन्ध ज्ञेयरूप ज्ञान में आना, द्रव्यआलोचना है। जैसे—सम्मेदशिखर में बैठे हुए वर्तमान के संयोगसम्बन्ध को (नन्दीश्वरदीप की रचना, 24 टोकों, ज्ञानी -ध्यानियों को) ज्ञेयरूप ज्ञान में लेना, यह द्रव्यआलोचना है।

प्रश्न 18- भावआलोचना किसे कहते हैं?

उत्तर - वर्तमान में हुए शुभाशुभभावों को ज्ञेयरूप ज्ञान में लेना, भावआलोचना है। जैसे—सम्मेदशिखर में बैठे हुए वर्तमान में होनेवाले शुभ-अशुभभावों को ज्ञेयरूप ज्ञान में लेना, यह भाव-आलोचना है।

प्रश्न 19- अनालोचना किसे कहते हैं?

उत्तर - अपने स्वरूप की मर्यादा में रहकर नहीं जानना, वह अनालोचना है।

प्रश्न 20- भगवानकुन्दकुन्द ने समयसार में अनालोचना किसे कहा है?

उत्तर - वर्तमान काल में जिन द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म को ग्रहण किया है, उन्हें वर्तमान में अच्छा समझना, उनके संस्कार रहना, उनके प्रति ममत्व रखना, अनालोचना है।

प्रश्न 21- अनालोचना के कितने भेद हैं ?

उत्तर - दो भेद—द्रव्यअनालोचना, और भावअनालोचना।

प्रश्न 22- द्रव्यअनालोचना किसे कहते हैं ?

उत्तर - वर्तमान में वर्तमान के संयोग सम्बन्धों को इष्ट -अनिष्ट मानना, द्रव्यअनालोचना है। जैसे—गिरनार पर बैठे हुए वहाँ के संयोग सम्बन्धों की (पाँचवी टोंक-चौथी टोंक की) चाहना करना और बुरे संयोग सम्बन्धों की चाहना न करना, यह द्रव्य-अनालोचना है।

प्रश्न 23- भावअनालोचना किसे कहते हैं ?

उत्तर - वर्तमान में वर्तमान के शुभाशुभभावों को इष्ट-अनिष्ट मानना, भावअनालोचना है। जैसे—गिरनारपर्वत पर बैठे हुए वर्तमान के दया-दान-पूजा-अणुव्रत-महाव्रतादि भावों को इष्ट मानना और अनिष्टभाव तनिक भी न आवे, यह भावअनालोचना है।

[श्रीसमयसार, कलश 227 देखें]

प्रश्न 24- वर्तमान में हमको सच्चेदव-गुरु-शास्त्र का संयोग मिला, शुभभाव का अवसर मिला - क्या इसे भी हम अच्छा न माने ?

उत्तर - वास्तव में एकमात्र अपना भूतार्थ आत्मा ही आश्रय करने योग्य हैं। स्वभाव के आश्रय से शुद्ध वीतरागदशा प्रकट करने योग्य उपादेय है। ज्ञानियों को भूमिकानुसार जो राग होता है, उसे ज्ञानी, हेय-ज्ञेय जानते हैं परन्तु अज्ञानी, अनादि से एक-एक समय करके वर्तमान में देव-गुरु-शास्त्र के संयोगों को, वर्तमान के शुभभावों को अच्छा मानकर पागल बना रहता है और इन्हें मोक्षमार्ग मानता है। आचार्य भगवान कहते हैं कि अपनी आत्मा का अनुभव नहीं होने से शुभ, अच्छा; अशुभ, बुरा - यह मान्यता अनन्त संसार का कारण है और महान पाप है।

प्रश्न 25- कुन्दकुन्दभगवान ने प्रत्याख्यान का स्वरूप नियमसार में क्या बताया है ?

उत्तर -

भावी शुभाशुभ छोड़कर, तजकर वचन विस्तार रे।
जो जीव ध्याता आतमा, प्रत्याख्यान होता है उसे॥95॥

कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख कैवल्य शक्ति स्वभाव जो।
मैं हूँ वहीं, यह चिन्तवन होता निरन्तर ज्ञानि को॥96॥

निज भाव को छोड़े नहीं, किंचित् ग्रहे परभाव नहिं।
देखे व जाने मैं वही, ज्ञानी करे चिन्तन यही॥97॥

जो प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेशबन्ध बिन आत्मा।
मैं हूँ वही, यों भावता ज्ञानी करे स्थिरता वहाँ॥98॥

मम ज्ञान में है आतमा, दर्शन-चरित्र में आतमा।
हैं और प्रत्याख्यान संवर, योग में भी आतमा॥100॥

दृगज्ञान-लक्षित और शाश्वत् मात्र आत्मा मम अरे।
अरु शेष सब संयोग लक्षित भाव मुझसे हैं परे॥102॥

प्रश्न 26- प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर - आत्मा की जैसी प्रसिद्धि है, वैसी ही उसकी मर्यादा में (स्वभावसन्मुख) रहना, उसे प्रत्याख्यान कहते हैं।

प्रश्न 27- भगवानकुन्दकुन्द ने समयसार में प्रत्याख्यान किसे कहा है ?

उत्तर -

शुभ अरु अशुभ भावी करम का बन्ध हो जिनभाव में।
उनसे निर्वतन जो करे, वो आतमा पचखाण है॥ ३८४॥

अर्थात्, भविष्य में दोष लगने का त्याग करना, वह प्रत्याख्यान

है; इसलिए, निश्चय से विचार करने पर जो आत्मा, भविष्यत् काल के द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मों से अपने को भिन्न जानता है, श्रद्धा करता है, और अनुभव करता है, वह आत्मा स्वयं ही प्रत्याख्यान है।

प्रश्न 28- श्रीसमयसार, गाथा 34-35 में 'ज्ञान ही प्रत्याख्यान है' - ऐसा क्यों कहा है?

उत्तर -

सब भाव पर ही जान, प्रत्याख्यान भावों का करे।
इससे नियम से जानना कि, ज्ञान प्रत्याख्यान है॥३४॥

ये और का है जानकर, परद्रव्य को जो नर तजे।
त्यो और के हैं जानकर, परभाव ज्ञानी परित्यजे॥३५॥

अर्थात्, जिससे 'अपने अतिरिक्त सर्व पदार्थों को पर हैं' ऐसा जानकर प्रत्याख्यान करता है—त्याग करता है, उससे प्रत्याख्यान, ज्ञान ही है - ऐसा नियम से जानना। अपने ज्ञान में त्यागरूप अवस्था ही प्रत्याख्यान है; दूसरा कुछ नहीं॥34॥ जैसे—लोक में कोई पुरुष परवस्तु को 'यह परवस्तु है' — ऐसा जाने तो परवस्तु का त्याग करता है; उसी प्रकार ज्ञानी पुरुष, समस्त परद्रव्यों के भावों को 'ये परभाव हैं' — ऐसा जानकर, उनको छोड़ देता है।

प्रश्न 29- समयसार, कलश टीका, कलश 29 में पण्डित राजमलजी ने प्रत्याख्यान किसे बताया है?

उत्तर - जैसे—किसी पुरुष ने धोबी के घर से अपने वस्त्र के धोखे में, दूसरे का वस्त्र आने पर, बिना पहिचान के उसे पहन कर अपना जाना; बाद में उस वस्त्र का धनी जो कोई था, उसने अञ्चल पकड़कर कहा कि 'यह वस्त्र तो मेरा है, पुनः कहा कि मेरा ही है' — ऐसा सुनने पर उस पुरुष ने चिह्न देखा, जाना कि मेरा चिह्न तो मिलता नहीं, इससे निश्चय से यह वस्त्र मेरा नहीं है; दूसरों का

है। उसके ऐसी प्रतीति होने पर, त्याग हुआ घटित होता है। देखो! वस्त्र पहने ही है तो भी त्याग घटित होता है, क्योंकि स्वामित्वपना छूट गया है। उसी प्रकार अनादि काल से जीव, मिथ्यादृष्टि है; इसलिए कर्मजनित जो शरीर, दु:ख-सुख, राग-द्वेष आदि विभावपर्यायें, उन्हें अपना ही जानता है और उन्हीं रूप प्रवर्तता है; हेय-उपादेय-ज्ञेय को नहीं जानता है। सतगुरु का उपदेश सुना, हे भव्य! जितने हैं जो शरीर, सुख-दु:ख, राग-द्वेष-मोह, जिनको तू अपना जानता है और इनमें रत हुआ है, वे तो सब ही तेरे नहीं हैं। तू तो ज्ञान-दर्शन का धारी शुद्धचिद्रूप है। ऐसा निश्चय जिस काल हुआ, उसी समय सकल द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म का त्याग है। याद रहे-शरीर, सुख-दु:ख, जैसे थे, वैसे ही हैं, परिणामों से त्याग है, क्योंकि स्वामित्वपना छूट गया है - इसका नाम 'ज्ञान ही प्रत्याख्यान है'। देखो! ज्ञान हो गया कि वे मेरा नहीं, पीछे क्या उनको छोड़ना पड़ता है? अरे भाई! नहीं, परन्तु छूट ही जाता है; इसलिए ज्ञान ही प्रत्याख्यान है।

प्रश्न 30- प्रत्याख्यान के कितने भेद हैं?

उत्तर - दो भेद हैं—द्रव्यप्रत्याख्यान, और भावप्रत्याख्यान।

प्रश्न 31- द्रव्यप्रत्याख्यान किसे कहते हैं?

उत्तर - वर्तमान में जैसा संयोगसम्बन्ध है, भविष्य के लिए भी ऐसा ही संयोगसम्बन्ध बना रहे - ऐसे भाव का नहीं आना; यदि ऐसे संयोग आये तो ज्ञेयरूप से आये, यह द्रव्यप्रत्याख्यान है। जैसे - वर्तमान में सच्चे देव-गुरु-धर्म का संयोगसम्बन्ध है, आगामी काल में ऐसा ही बना रहे - ऐसा भाव का नहीं आना, परन्तु ज्ञेयरूप से ज्ञान में आवे, यह द्रव्यप्रत्याख्यान है।

प्रश्न 32- भावप्रत्याख्यान किसे कहते हैं?

उत्तर – वर्तमान के शुभभावों को आगामी काल में बनाये रखने का भाव और अशुभभाव न आये, ऐसा भाव, भविष्यत् के लिए नहीं आना अथवा आने पर उन्हें ज्ञेयरूप ज्ञान में लेना, भावप्रत्याख्यान है। जैसे—वर्तमान सम्मेदशिखर में बैठे हुए शुभभाव तो आते हैं, अशुभभाव नहीं आते हैं; भविष्य के लिए शुभाशुभभावों का ज्ञेयरूप ज्ञान में आना, यह भावप्रत्याख्यान है।

प्रश्न 33- अप्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर – आत्मा की जैसी प्रसिद्धि है, उसके सन्मुख न रहकर, उसकी मर्यादा का उल्लंघन करना, अप्रत्याख्यान है।

प्रश्न 34- भगवानकुन्दकुन्द ने समयसार, गाथा 283 से 285 तक में अप्रत्याख्यान किसे कहा है ?

उत्तर – आगामी काल सम्बन्धी द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मों की इच्छा रखना, ममत्व रखना, अप्रत्याख्यान है – ऐसा कहा है।

प्रश्न 35- अप्रत्याख्यान के कितने भेद हैं ?

उत्तर – दो भेद हैं—द्रव्यअप्रत्याख्यान, और भावअप्रत्याख्यान।

प्रश्न 36- द्रव्यअप्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर – वर्तमान में द्रव्यकर्म-नोकर्म का जैसा सम्बन्ध है, वैसा ही सम्बन्ध भविष्य में भी बनाए रखने का भाव, द्रव्यअप्रत्याख्यान है। जैसे—वर्तमान में सच्चे देव-गुरु-धर्म का संयोगसम्बन्ध है, आगामी काल में भी ऐसा ही बना रहे – ऐसा भाव, द्रव्यअप्रत्याख्यान है।

प्रश्न 37- भावअप्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उत्तर – वर्तमान में जैसे शुभभाव हैं, अशुभभाव नहीं हैं, आगामी काल में ऐसे ही शुभभाव बने रहें तो अच्छा हो, वह भावअप्रत्याख्यान है। जैसे—वर्तमान सम्मेदशिखर में बैठे हुए शुभभाव तो आते हैं और

अशुभभाव जरा भी नहीं आते; भविष्य में भी ऐसे शुभभावों को बनाए रखने का भाव, यह भावअप्रत्याख्यान है।

[श्रीसमयसार, कलश 288 देखें]

प्रश्न 38 - आपने, वर्तमान में जो अच्छा संयोगसम्बन्ध है और शुभभाव हैं, उन्हें आगामी काल में बनाए रखने के भाव का निषेध क्यों किया है?

उत्तर - वर्तमान में जैसा अच्छा संयोगसम्बन्ध है, शुभभाव हैं; वैसे ही आगामी काल में बने रहने का तात्पर्य यह हुआ कि तू संसार में ही घूमता रहे और निर्वाण की प्राप्ति न हो। अरे भाई! ऐसे भाव, अनन्त संसार का कारण हैं; इसलिए एकमात्र परमपारिणामिक-भावरूप अपने आत्मा का आश्रय लेकर, धर्म की प्राप्ति ही सुख पाने का उपाय है।

प्रश्न 39- भगवानकुन्दकुन्द और अमृतचन्द्राचार्य ने प्रतिक्रमण-अप्रतिक्रमण; आलोचना-अनालोचना; और प्रत्याख्यान-अप्रत्याख्यान का स्वरूप किन-किन गाथाओं और टीका में बताया है?

उत्तर - (1) समयसार, गाथा 283 से 285 तक अप्रतिक्रमणादि का स्वरूप समझाया है।

(2) समयसार, गाथा 306 तथा 307 में प्रतिक्रमण; गाथा 383 से 389 तक प्रतिक्रमण-आलोचना आदि का स्वरूप स्पष्ट किया है।

(3) समयसार, गाथा 215 में 'ज्ञानी के त्रिकाल सम्बन्धी परिग्रह नहीं है' - ऐसा बताया है। *

* पात्र जीवों से उक्त गाथाओं एवं टीका का सूक्ष्मता से अध्ययन करने का अनुरोध है।

प्रश्न 40- क्या नियमसार में प्रतिक्रमणादि का स्वरूप बताया है ?

उत्तर - (1) नियमसार, गाथा 38 से 50 तक किसके आश्रय से प्रतिक्रमणादि उत्पन्न होते हैं, यह बताया है।

(2) गाथा 77 से 158 तक की गाथाओं में प्रतिक्रमण आदि निश्चयचारित्र का वर्णन किया है।

(3) नियमसार, गाथा 119 की टीका तथा फुटनोट में बताया है कि 'मात्र परमपारिणामिकभाव का—शुद्धात्म द्रव्यसामान्य का' — आलम्बन लेना चाहिए। उसका आलम्बन लेनेवाला भाव ही (वीतरागभाव ही) महाव्रत, समिति, गुप्ति, प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित आदि सब कुछ है। (आत्मस्वरूप का आलम्बन, आत्मस्वरूप का आश्रय, आत्मस्वरूप के प्रति सन्मुखता, आत्मस्वरूप के प्रति झुकाव, आत्मस्वरूप का ध्यान, परम पारिणामिकभाव की भावना, मैं ध्रुव शुद्ध आत्मद्रव्यसामान्य हूँ - ऐसी परिणति—इन सबका एक ही अर्थ है।)

प्रश्न 41- समयसार में विषकुम्भ किसे कहा है ?

उत्तर -

प्रतिक्रमण अरु प्रतिसरण, त्यों परिहरण, निवृत्ति धारणा।
अरु शुद्धि, निन्दा, गर्हणा, ये अष्ट विध विषकुम्भ हैं ॥306॥

प्रश्न 42- समयसार में अमृतकुम्भ किसे कहा है ?

उत्तर -

अनप्रतिक्रमण अनप्रतिसरण, अनपरिहरण अनधारणा।
अनिवृत्ति, अनगर्हा, अनिन्द, अशुद्धि-अमृतकुम्भ हैं ॥307॥

3

श्रीसमयसार, गाथा 390 से 404 तक का रहस्य

भगवान आत्मा की छह बोलो से सिद्धि

प्रश्न 1- भगवान आत्मा, परद्रव्यों से भिन्न है - इसकी सिद्धि के लिए भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने श्रीसमयसार, गाथा 390 से 404 तक में क्या बताया है?

उत्तर -

रे! शास्त्र है नहि ज्ञान, क्योंकि शास्त्र कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, शास्त्र अन्य प्रभु कहे ॥390॥

रे! शब्द है नहिं ज्ञान, क्योंकि शब्द कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, शास्त्र अन्य प्रभु कहे ॥391॥

रे! रूप है नहिं ज्ञान, क्योंकि रूप कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, रूप अन्य प्रभु कहे ॥392॥

रे! वर्ण है नहिं ज्ञान, क्योंकि वर्ण कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, वर्ण अन्य प्रभु कहे ॥393॥

रे! गन्ध है नहिं ज्ञान, क्योंकि गन्ध कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, गन्ध अन्य प्रभु कहे ॥394॥

रे! रस है नहिं ज्ञान, क्योंकि रस जु कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, अन्य रस जिनवर कहे ॥395॥

रे! स्पर्श है नहिं ज्ञान, क्योंकि स्पर्श कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, स्पर्श अन्य प्रभु कहे ॥396॥

रे! कर्म है नहिं ज्ञान, क्योंकि कर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, कर्म अन्य जिनवर कहे ॥397॥

रे! धर्म नहिं है ज्ञान, क्योंकि धर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, धर्म अन्य जिनवर कहे ॥398॥

नहिं है अधर्म जु ज्ञान, क्योंकि अधर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, अधर्म अन्य प्रभु कहे ॥399॥

रे! काल है नहिं ज्ञान, क्योंकि काल कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, काल अन्य प्रभु कहे ॥400॥

आकाश है नहिं ज्ञान, क्योंकि आकाश कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से आकाश अन्य रु, ज्ञान अन्य प्रभु कहे ॥401॥

रे! ज्ञान, अध्यवसान नहिं क्योंकि अचेतन रूप है।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रु, अन्य अध्यवसान है ॥402॥

रे! सर्वदा जाने हि इससे, जीव ज्ञायक ज्ञानि है।
अरु ज्ञान है ज्ञायक से, अव्यतिरिक्त यों ज्ञातव्य है ॥403॥

सम्यक्त्व अरु संयम तथा पूर्वाङ्गगत सब सूत्र जो।
धर्माधरम दीक्षा सबहि, बुध पुरुष माने ज्ञान को ॥404॥*

प्रश्न 2- कुन्दकुन्द आचार्य ने इन पन्द्रह गाथाओं में क्या बताया है?

उत्तर - भगवान आत्मा का शास्त्र, शब्द, गुरु का वचन, दिव्यध्वनि के साथ; किसी प्रकार के आकार के साथ; काला-पीला, नीला, लाल, सफेद रूप के साथ; सुगन्ध-दुर्गन्धरूप गन्ध के साथ; खट्टा-मीठा-कडुआ, चर्परा-कषायलारूप रस के साथ; हल्का -भारी, ठण्डा-गरम, रूखा-चिकना, कड़ा-नरमरूप स्पर्श के साथ;

* इन गाथाओं पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के आध्यात्मिक प्रवचन भेदविज्ञानसार नाम से प्रकाशित हैं, जिनका अध्ययन अत्यन्त उपयोगी है।

आठ कर्मों के साथ, धर्म-अधर्म-आकाश-काल के साथ; कर्म के उदयरूप अध्यवसान के साथ सम्बन्ध नहीं है - ऐसा अनादि से जिनदेव कहते हैं क्योंकि आत्मा निरन्तर जानता है; इसलिए ज्ञायक - ऐसा जीव, ज्ञानवाला है और ज्ञान, ज्ञायक से अभिन्न है - ऐसा जानना चाहिए। यहाँ ज्ञान कहने से आत्मा ही समझना चाहिए। ज्ञानी, ज्ञान को ही सम्यग्दृष्टि, संयम, अङ्ग-पूर्वगत सूत्र, पुण्य -पाप, दीक्षा मानते हैं।

तात्पर्य यह है कि अनादि अज्ञान से होनेवाली शुभाशुभ उपयोगरूप परसमय की प्रवृत्ति को दूर करके, सम्यग्दर्शन-ज्ञान -चारित्र में प्रवृत्तिरूप स्वसमय को प्राप्त करके, उस स्वसमय परिणमनस्वरूप मोक्षमार्ग में अपने को परिणमित करके, जो सम्पूर्ण विज्ञानघनस्वभाव को प्राप्त हुआ है और जिसमें कोई त्याग-ग्रहण नहीं है - ऐसे साक्षात् समयसारस्वरूप परमार्थभूत, निश्चल रहा हुआ, शुद्ध पूर्ण आत्मद्रव्य को देखना चाहिए।

प्रश्न 3- आत्मा क्या करता है ?

उत्तर - आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा, मोहोऽयं व्यवहारिणाम॥

अर्थात्, चेतना आत्मा, चेतनमात्र परिणाम को करता है; अत: आत्मा स्वयं चेतना परिणाममात्रस्वरूप है। आत्मा परभाव का कर्ता है - ऐसा मानना, सो व्यवहारी जीव का मोह (अज्ञान) है।

(श्रीसमयसार, कलश 62)

प्रश्न 4- क्या चेतनपरिणाम से भिन्न, अचेतन-पुद्गल-परिणामरूप कर्म को जीव करता है ?

उत्तर - सर्वथा नहीं करता है। चेतनद्रव्य, ज्ञानावरणादि कर्म को करता है - ऐसा जानना, ऐसा मानना मिथ्यादृष्टि जीवों का

अज्ञान है। ज्ञानावरणीयकर्म का कर्ता, जीव है, सो कहना उपचार है।

[श्रीसमयसार, कलश 210 तथा 214]

प्रश्न 5- आत्मा का कार्य, ज्ञान है; उस ज्ञान का पर से सम्बन्ध नहीं है, इसमें से कितने बोल निकल सकते हैं ?

उत्तर - हजारों बोल निकल सकते हैं परन्तु उन सबका छह बोलों में समावेश करते हैं —

(1) ज्ञान, अरूपी है।

(2) ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र, विघ्न नहीं कर सकता।

(3) ज्ञान, अविकारी है।

(4) ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है।

(5) ज्ञान, पर का कुछ भी नहीं कर सकता है।

(6) ज्ञान, सर्व समाधानकारक है।

प्रश्न 6- ज्ञान, अरूपी है - यह किस प्रकार है ?

उत्तर - भगवान आत्मा, अरूपी है; उसके गुण, अरूपी हैं और उसकी पर्याय भी अरूपी हैं; इसलिए आत्मा का रूपीपदार्थों से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न 7- क्या शास्त्रों से, भगवान की दिव्यध्वनि से, गुरु के वचनों से ज्ञान होता है ?

उत्तर - (1) बिल्कुल नहीं, क्योंकि शास्त्र, दिव्यध्वनि, गुरु का शब्द, पुद्गल की स्कन्धरूप पर्याय हैं, इनमें ज्ञानपना नहीं है; इसलिए जो रूपी हैं और जिनमें ज्ञान नहीं है - ऐसा जो शास्त्र, दिव्यध्वनि, शब्द आदि, अरूपी ज्ञानघन आत्मा को, ज्ञान का कारण बने - ऐसा नहीं हो सकता है; अतः ज्ञान, अरूपी है - ऐसा सिद्ध होता है।

(2) ये शास्त्र हैं, ये स्थूल-स्थूल स्कन्ध हैं। इनमें वजन है।

देखो, हजारों पुस्तकों का वजन उठाया नहीं जा सकता किन्तु हजारों पुस्तकों का ज्ञान होने में जरा भी वजन नहीं लगता। इससे सिद्ध होता कि 'ज्ञान, अरूपी है।'

प्रश्न 8- शास्त्रों से, दिव्यध्वनि से, गुरु के वचनों से, द्रव्यकर्म के क्षयोपशमादि से, और ज्ञेयों से ज्ञान होता है - ऐसा शास्त्रों में क्यों कहा है?

उत्तर - कहने को तो है, वस्तुस्वरूप विचारने पर उसमें कर्ता-कर्मसम्बन्ध नहीं है; व्यवहारदृष्टि से ही जीव इनका कर्ता है। यह कहने के लिए सत्य है, क्योंकि व्याप्य-व्यापकपना एक ही द्रव्य में होता है; दो द्रव्य में कभी भी नहीं होता है। *[कलश 214 से]*

प्रश्न 9- जहाँ दो द्रव्यों का कर्ता-कर्म लिखा हो, वहाँ क्या अर्थ जानना चाहिए?

उत्तर - जहाँ पर दो द्रव्यों का कर्ता-कर्म लिखा हो, वहाँ पर 'व्यवहारनय की मुख्यतासहित व्याख्यान है, उसे ऐसा है नहीं, किन्तु निमित्तादि की अपेक्षा से यह उपचार किया है' - ऐसा जानना चाहिए।

प्रश्न 10- यदि कोई कहे कि हम तो शास्त्रों से, दिव्यध्वनि से, गुरु के वचनों से, कर्म के क्षयादि से और ज्ञेयों से ही ज्ञान मानेंगे, तो उसके लिये जिनवाणी में उसे किस-किस नाम से सम्बोधन किया है?

उत्तर - (1) 'तस्य देशना नास्ति' - वह जिनवाणी सुनने के अयोग्य है। *(पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, गाथा 6)*

(2) वह पद-पद पर धोखा खाता है; *(श्री प्रवचनसार, गाथा 56)*

(3) ज्ञेयों से ज्ञान होता है - ऐसी श्रद्धा को मिथ्यादर्शन, ऐसे ज्ञान को मिथ्याज्ञान और ऐसे आचरण को मिथ्याचारित्र कहा है; *(श्री समयसार, गाथा 270)*

(4) परद्रव्य के कर्तत्व का महा अहंकाररूप अज्ञान अन्धकार है, जिसका सुलटना अत्यन्त दुर्निवार है। *(श्री समयसार, कलश 55)*

प्रश्न 11- 'ज्ञान, अरूपी है' इससे क्या तात्पर्य रहा ?

उत्तर - अरे भाई! जैसे ज्ञान से पर का सम्बन्ध नहीं है; उसी प्रकार सुख के लिए पाँचों इन्द्रियों के विषयों का, सम्यग्दर्शन के लिए दर्शनमोहनीय के उपशमादिक का और चारित्र के लिए बाहरी क्रिया तथा शुभभावों की आवश्यकता नहीं है।

प्रश्न 12- 'ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र, विघ्न नहीं कर सकता है' - यह किस प्रकार है ?

उत्तर - (अ) ज्ञान को कोई काल, विघ्न नहीं कर सकता है। विचारो - पाँच मिनट पहले के समय का ज्ञान करने में पाँच मिनट लगें और पाँच वर्ष पहले के समय का ज्ञान करने में पाँच वर्ष लगें - क्या ऐसा होता है ? नहीं, क्योंकि पाँच मिनट पहले और पाँच वर्ष पहले के समय का ज्ञान करने में समान ही समय लगता है। इससे निर्णय हुआ - 'ज्ञान को कोई काल विघ्न नहीं कर सकता है।'

(आ) ज्ञान को कोई क्षेत्र भी विघ्न नहीं कर सकता है। विचारो - जैसे - हम दिल्ली में बैठे हैं तो दिल्ली का ज्ञान करने में थोड़ा समय लगे और दूर क्षेत्र मुम्बई का ज्ञान करने में ज्यादा समय लगे -क्या ऐसा होता है ? नहीं, क्योंकि क्षेत्र नजदीक हो या दूर हो, दोनों के ज्ञान करने में बराबर ही समय लगता है। इससे यह निर्णय हुआ - 'ज्ञान को कोई क्षेत्र भी विघ्न नहीं कर सकता है।' इसलिए ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र विघ्न नहीं कर सकता है - ऐसा पात्र जीव जानते हैं।

प्रश्न 13- कोई ऐसा कहता है कि जहाँ सीमन्धरभगवान हैं, वहाँ पर चौथा काल और विदेहक्षेत्र है, वहाँ से मोक्ष होता है

और जहाँ पर हम रहते हैं, यहाँ पर पञ्चम काल है, भरतक्षेत्र है, यहाँ से मोक्ष नहीं होता। देखो, मोक्षप्राप्ति के लिए काल और क्षेत्र ने विघ्न डाला; इसलिए आपकी बात झूठी साबित होती है ?

उत्तर – (1) हे भाई! तुम कभी चौथे काल और विदेहक्षेत्र में थे या नहीं ? यदि थे तो हम पूछते है, तुम्हें मोक्ष क्यों नहीं हुआ ?

(2) जम्बूस्वामी आदि पञ्चम काल में ही मोक्ष गये हैं।

(3) पूर्व भव का कोई बैरी देव, विदेहक्षेत्र के भावलिङ्गी मुनि को यहाँ पटक जावे तो वे मुनि उग्र पुरुषार्थ करके यहीं से मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं। यदि काल और क्षेत्र विघ्न करता हो तो उनका मोक्ष नहीं होना चाहिए था। इसलिए याद रक्खो – काल अच्छा हो या खराब हो; क्षेत्र अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, किसी जीव को किसी भी समय क्षेत्र या काल, विघ्न नहीं कर सकता है।

प्रश्न 14– फिर शास्त्रों में क्यों लिखा है कि पञ्चम काल में मोक्ष नहीं होता ?

उत्तर – जो जीव, पञ्चम काल में उत्पन्न होगा, वह जीव इतना तीव्र पुरुषार्थ नहीं कर सकेगा कि वह दृष्टिमोक्ष को छोड़कर, मोहमुक्तमोक्ष, जीवनमुक्तमोक्ष और विदेहमोक्ष को प्राप्त कर सके – ऐसा केवलज्ञानी के ज्ञान में आया है, इस अपेक्षा, अर्थात् तीव्र पुरुषार्थ न कर सकने की अपेक्षा, पञ्चम काल में मोक्ष नहीं होता है, ऐसा शास्त्रों में लिखा है।

प्रश्न 15– क्या मोक्ष भी कई प्रकार के होते हैं ?

उत्तर – हाँ! मोक्ष, पाँच प्रकार के हैं, (1) शक्तिरूप मोक्ष, (2) दृष्टिमोक्ष, (3) मोहमुक्तमोक्ष, (4) जीवनमुक्तमोक्ष, (5) विदेहमोक्ष।

प्रश्न 16- इन पाँच मोक्ष को गुणस्थान की अपेक्षा समझाओ ?

उत्तर - (1) शक्तिरूप मोक्ष तो निगोद से लेकर, सिद्धदशा तक प्रत्येक जीव के पास अनादि अनन्त है।

(2) दृष्टिमोक्ष, शक्तिरूप मोक्ष का आश्रय लेने से, चौथे गुणस्थान में प्रकट होता है।

(3) शक्तिरूप मोक्ष में विशेष एकाग्रता करने से, दृष्टिमोक्ष के पश्चात् बारहवें गुणस्थान में मोहमुक्तमोक्ष प्रकट होता है।

(4) जीवनमुक्तमोक्ष, 13, 14 वें गुणस्थान में प्रकट होता है।

(5) विदेहमोक्ष, 14 वें गुणस्थान से पार सिद्धदशा में प्रकट होता है।

प्रश्न 17- सभी मोक्ष किसके आश्रय से प्रगट होते हैं ?

उत्तर - (1) एकमात्र शक्तिरूप मोक्ष के आश्रय से ही चारों प्रकार के मोक्ष, पर्याय में प्रगट होते हैं; इसलिए शक्तिरूप मोक्ष का आश्रय लिए बिना, दृष्टिमोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।

(2) दृष्टिमोक्ष प्राप्त किये बिना, मोहमुक्तमोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।

(3) मोहमुक्तमोक्ष प्राप्त किये बिना, जीवनमुक्तमोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।

(4) जीवनमुक्तमोक्ष प्राप्त किये बिना, विदेहमोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। यह जिन, जिनवर और जिनवरवृषभों से कथित अनादि-अनन्त नियम है।

प्रश्न 18 - पञ्चम काल में इन पाँच मोक्षों में से कौन -कौन से मोक्ष प्राप्त हो सकते हैं ? ऐसे जीवों के नाम बताओं, जिनको इनकी प्राप्ति हुई हो ?

उत्तर – पञ्चम काल में दृष्टिमोक्ष ही पर्याय में प्रगट हो सकता है – क्योंकि (1) शक्तिरूप मोक्ष तो प्राणीमात्र के पास है। (2) दृष्टिमोक्ष प्राप्त पञ्चम काल में कुन्दकुन्द भगवान, अमृताचन्द्र-आचार्य, समन्तभद्राचार्य, धरसेनचार्य, रविषेणाचार्य, पण्डित टोडरमलजी, राजमलजी, दीपचन्दजी, दौलतरामजी, कानजीस्वामी आदि हो चुके हैं और जीव भी दृष्टिमोक्ष प्राप्त विचरते हैं – ऐसा पात्र भव्य जीव जानते हैं।

प्रश्न 19- पञ्चम काल में दृष्टिमोक्ष की प्राप्ति हो सकती है – ऐसा कहीं शास्त्रों में उल्लेख है ?

उत्तर – (1) भगवान कुन्दकुन्द ने मोक्षपाहुड़, गाथा 77 में कहा है कि 'अभी इस पञ्चम काल में भी जो मुनि, सम्यग्दर्शन-ज्ञान -चारित्र की शुद्धतायुक्त होते हैं, वे आत्मा का ध्यान कर, इन्द्रपद अथवा लौकान्तिकदेवपद को प्राप्त करते हैं और वहाँ से चय कर निर्वाण को प्राप्त होते हैं।'

(2) आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने आठवें अधिकार में लिखा है कि 'यह काल, साक्षात् मोक्ष न होने की अपेक्षा निकृष्ट है, आत्मानुभवनादिक द्वारा सम्यक्त्वादिक होना इस काल में मना नहीं है; इसलिए आत्मानुभनादिक के अर्थ द्रव्यानुयोग का अवश्य अभ्यास करना।'

(3) कार्तिकेयानुप्रेक्षा के धर्मानुपेक्षाभावना में गाथा, 487 की टीका में बताया है कि 'इस काल में शुक्लध्यान तो नहीं हो, किन्तु धर्मध्यान होता है' तथा मोक्षप्राभृत का हवाला दिया है। धर्मध्यान, शुद्धभाव है। यह चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक होता है।

प्रश्न 20- कोई कहे, हमको तो दृष्टिमोक्षवाले जीव भी कहीं दिखायी नहीं देते हैं ?

उत्तर – जैसे—सूर्य का प्रकाश होने पर उल्लू को दिखायी नहीं देता; उसी प्रकार अज्ञानी मूढ़ों को दृष्टिमोक्षवाले जीव नहीं दिखते है, उसमें हम क्या करें ?

प्रश्न 21– बहुत से कहते हैं कि पञ्चम काल में निश्चय –सम्यक्त्व होता ही नहीं – क्या यह बात ठीक है ?

उत्तर – बिल्कुल गलत है, क्योंकि ज्ञानार्णव में लिखा है कि 'इस काल में दो–तीन सत्यपुरुष हैं, अर्थात् थोड़े हैं।' अत: सिद्ध हुआ कि पञ्चम काल में मोक्ष है। इसलिए पात्र–जीवों को जानना चाहिए कि जिनमत में जो मोक्ष का उपाय कहा है, उससे मोक्ष होता ही होता है। इसलिए 'ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र, विघ्न नहीं कर सकता।' – यह सिद्ध हो गया।

प्रश्न 22– 'ज्ञान, अविकारी है' – यह किस प्रकार है ?

उत्तर – ज्ञान, अविकारी है, अर्थात् ज्ञान में विकार नहीं है। जैसे, दस दिन पहले हमारी किसी के साथ लड़ाई हो गयी। लड़ाई के समय हम खूब लाल–पीले हुए। विचारो — वर्तमान समय में लड़ाई का ज्ञान तो कर सकते हैं लेकिन लड़ाई के समय जैसे लाल –पीले हो रहे थे, वैसे अब नहीं हो सकते और ज्ञान करते समय क्रोधादि भी मालूम नहीं पड़ते हैं; इसलिए यदि ज्ञान में विकार हो तो ज्ञान के समय क्रोधादि भी होना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं होता। इससे सिद्ध होता है, ज्ञान में विकार नहीं है।

प्रश्न 23– 'ज्ञान, अविकारी है' इसका कोई दूसरा दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर – आज से पाँच वर्ष पहले हमने किसी को कटुवचन कह दिया हो तो क्या आज ज्ञान करते समय ज्ञान में कटुता आवेगी ? कभी नहीं। इसलिए यह सिद्ध हुआ ज्ञान, अविकारी है।

प्रश्न 24- क्या शुभाशुभ विकारीभाव भी आत्मा से पृथक हैं ?

उत्तर - हाँ पृथक् हैं। उपयोग, उपयोग में है, क्रोधादि में उपयोग नहीं है; क्रोध, क्रोध में ही है; उपयोग में निश्चय से क्रोध नहीं है। *(श्रीसमयसार, गाथा 181)*

प्रश्न 25 - शुभाशुभभाव, आत्मा में नहीं हैं - ऐसा कहीं शास्त्रों में आया है ?

उत्तर - (1) श्री समयसार, गाथा 71 की टीका में 'क्रोधादि के और आत्मा के निश्चय से एक वस्तुत्व नहीं।' तथा ऐसा भी लिखा है कि 'ज्ञान होते समय जैसे ज्ञान होता हुआ मालूम पड़ता है; उसी प्रकार क्रोधादि भी होते हुए मालूम नहीं पड़ते हैं।'

(2) श्री समयसार, गाथा 181 से 183 तक में - जैसे, द्रव्यकर्म-नोकर्म, आत्मा से भिन्न हैं; उसी प्रकार भावकर्म भी आत्मा से भिन्न है। क्रोधादि में और ज्ञान में प्रदेशभेद होने से अत्यन्त भेद है - ऐसा कहा है।

(3) श्री समयसार, गाथा 294 में - रागादि का और आत्मा का निज-निज लक्षण जानकर, अपनी प्रज्ञारूपी छैनी को अपने स्वभावसन्मुख करने से दोनों अलग-अलग हो जाते हैं।* इससे सिद्ध होता है 'ज्ञान, अविकारी है'।

प्रश्न 26- बहुत से जीव, शुभभावों से धर्म की प्राप्ति होती है - ऐसा क्यों कहते हैं ?

उत्तर - (1) शुभभावों से धर्म की प्राप्ति होती है - ऐसा कोई मिथ्यावादी मानता है, किन्तु जैसे लहसुन खाने से कस्तूरी की डकार

* इसके लिए श्रीसमयसार, गाथा 71, 181 से 183 तक 294 की टीका, भावार्थसहित अभ्यास करना चाहिए।

नहीं आती; उसी प्रकार शुभभावों से कभी भी मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं होती।

प्रश्न 27 - शुभभावों को समयसार में क्या-क्या कहा है ?

उत्तर - (1) पुण्यभाव को धर्म का कारण माननेवाले को श्री समयसार, गाथा 154 में 'नपुंसक' कहा है।

(2) गाथा 72 में पुण्यभाव को मल, मैल, अपवित्र, घिनावना, अशुचि, जड़स्वभावी, चैतन्य से अन्य स्वभाववाला, आकुलता को उत्पन्न करनेवाला और दु:ख का कारण कहा है।

(3) गाथा 74 में विरुद्धस्वभावी, अध्रुव, अनित्य, अशरण, वर्तमान में दु:खरूप और भविष्य में भी दु:ख का कारण कहा है।

(4) गाथा 306 में विषकुम्भ कहा है।

(5) श्री समयसार, गाथा 152 में आत्मा का अनुभव हुए बिना, व्रत-तप को बालव्रत और बालतप कहा है।

प्रश्न 28 - शुभभावों को छहढाला में क्या-क्या कहा है ?

उत्तर - (1) पाँचवी ढाल में —

आस्रव दु:खकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे।
जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके।

(2) छठी छाल में 'यह राग-आग दहै सदा' - कहा है।

(3) दूसरी ढाल में 'शुभ-अशुभबन्ध के फल मंझार, रति -अरति करे निजपद विसार' कहा है।

(4) पहली ढाल में 'जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यक्दर्शन बिन दु:ख पाय' कहा है।

प्रश्न 29- प्रवचनसार में शुभभावों को क्या कहा है ?

उत्तर – गाथा 11 की टीका में 'शुभोपयोग को हेय' कहा है। गाथा 77 में 'पुण्य-पाप में जो अन्तर डालता है, वह घोर अपार संसार में भ्रमण करता है' – ऐसा कहा है।

प्रश्न 30– सोलहकारण की पूजा में पुण्यभाव को क्या कहा है?

उत्तर – 'पुण्य-पाप सब नाश के, ज्ञानभानु परकाश' तथा मङ्गल विधान में 'पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि', अर्थात् समस्त पुण्य को एकाग्र चित्त से केवलज्ञानरूप अग्नि में हवन करता हूँ। देव-गुरु-शास्त्र की पूजा में 'शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल' – ऐसा कहा है।'

प्रश्न 31– योगसार में पुण्य को क्या कहा है?

उत्तर – दोहा 71 में – ज्ञानी, पुण्य को पाप जानते हैं – ऐसा कहा है।

प्रश्न 32– पुरुषार्थसिद्धि उपाय में पुण्य को क्या कहा है?

उत्तर – गाथा 220 में शुभोपयोग 'अपराध' ऐसा कहा है।

प्रश्न 33– शुभभाव को नपुंसक, अपराध आदि कहने से तात्पर्य क्या है?

उत्तर – ज्ञान, अर्थात् आत्मा, अविकारी है, उसकी प्राप्ति किसी भी प्रकार के शुभभावों से नहीं हो सकती है; एकमात्र भूतार्थस्वभाव का आश्रय लेकर अपना अनुभव करे तो 'ज्ञान, अविकारी है' – ऐसा माना।

प्रश्न 34– 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है' – यह किस प्रकार है?

उत्तर – केवलज्ञान में त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थों का सम्पूर्ण

स्वरूप प्रत्येक समय में सर्व प्रकार से एक साथ स्पष्ट ज्ञात होता है – ऐसी केवलज्ञान की अचिन्त्य अपार शक्ति है और प्रत्येक आत्मा में शक्तिरूप से ऐसा ही स्वभाव है – यह अरहन्त-सिद्ध भगवान दर्शा रहे हैं। ऐसा जिसने जाना, माना – तब 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कार-स्वरूप है' कहा जावेगा।

प्रश्न 35- 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है' – ऐसा छहढाला में कहीं बताया है ?

उत्तर – सकल द्रव्य के गुण अनन्त, परजाय अनन्ता।
जानै एकै काल, प्रगट केवलि भगवन्ता॥
ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारण।
इहि परमामृत जन्म जरा मृति-रोग निवारन।

इसी कारण से ज्ञान को चैतन्य चमत्कारस्वरूप कहा है।

[श्रीप्रवचनसार, गाथा 200 की टीका]

प्रश्न 36- 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है' जरा इसे स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर – (1) अनेक प्रकार की अलग-अलग चीजें कभी इकट्ठी नहीं हो सकती, परन्तु वे सब वस्तुएँ ज्ञान की एक समय की पर्याय में एक साथ जानी जा सकती हैं; इसलिए 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है' कहा जाता है।

(2) बहुत वस्तुओं को भोगना एक साथ नहीं हो सकता, परन्तु ज्ञान बहुत वस्तुओं का भोग एक समय में एक साथ कर / जान सकता है; इसलिए 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है' कहा जाता है।

(3) एक बड़े कमरे में कुर्सी, मेज, पलंग आदि अनेक चीजें पड़ी हैं; आप उन्हें इकट्ठी नहीं कर सकते परन्तु ज्ञान में एक साथ ले सकते हैं; इसलिए 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है' कहा जाता है।

(4) थाली में 50 चीजों का एक साथ भोग नहीं हो सकता, परन्तु ज्ञान में एक साथ भोग कर सकते हैं; इसलिए 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कारस्वरूप है' कहा जाता है।

प्रश्न 37- जीव को परवस्तु का विस्मय क्यों आता है ?

उत्तर - चारों गतियों में घूमकर निगोद में जाने की तैयारी है; इसलिए अज्ञानियों को परवस्तु का विस्मय आता है।

प्रश्न 38- परवस्तु का विस्मय अज्ञानी किस-किस प्रकार करता है - उसका दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर - (1) किसी के पास भूत-व्यन्तर आवे, उसे सब नमस्कार करने पहुँच जाते हैं क्योंकि अज्ञानी को उसकी महिमा है; इसलिए परवस्तु का विस्मय आता है, आत्मा का विस्मय नहीं आता है।

(2) रूस ने बिना ड्राईवर का राकेट छोड़ा, उसका विस्मय अज्ञानी को आता है परन्तु ज्ञान करनेवाला स्वयं ज्ञानस्वरूप है, उसका (अपनी आत्मा का) विस्मय नहीं आता है, क्योंकि पर की महिमा है।

(3) अज्ञानी 24 घण्टे नौ प्रकार के पक्षों में पागल बन रहा है क्योंकि वह अनादि से एक-एक समय करके, पर के विस्मय में पागल है।

प्रश्न 39- पर का विस्मयपना कैसे मिटे ?

उत्तर - जब तक विस्मय करनेवाले का विस्मय न आवे, तब तक परवस्तु का विस्मयपना नहीं मिटता है; इसलिए पात्र जीव को अपनी आत्मा का विस्मय लाना चाहिए।

प्रश्न 40- अपनी आत्मा का विस्मय लाने का उपाय क्या है ?

उत्तर - जब तक सच्चे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति न हो, अर्थात्

जब तक अपना विस्मय न आवे, तब तक इनको भी अनुक्रम ही से अङ्गीकार करना —

(1) प्रथम तो परीक्षा द्वारा कुदेव, कुगुरु और कुधर्म की मान्यता छोड़कर, अरिहन्त देवादिक का श्रद्धान करना चाहिए क्योंकि उनका श्रद्धान करने से, गृहीतमिथ्यात्व का अभाव होता है।

(2) फिर जिनमत में कहे हुए द्रव्य, सात तत्त्व, हेय-उपादेय -ज्ञेय, त्यागनेयोग्य मिथ्यादर्शनादिक का स्वरूप और ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादिक का स्वरूप, निश्चय-व्यवहार, उपादान, उपादेय, निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध, छह कारक, चार अभाव और छह सामान्यगुण आदि के नाम-लक्षणादि सीखना चाहिए, क्योंकि इस अभ्यास से तत्त्वश्रद्धान की प्राप्ति होती है।

(3) फिर जिनसे स्व-पर का भिन्नत्व भासित हो, वैसे विचार करते रहना चाहिए, क्योंकि इस अभ्यास से भेदज्ञान होता है।

(4) तत्पश्चात् एक स्व में स्वपना मानने के लिये स्वरूप का विचार करते रहना चाहिए, क्योंकि इस अभ्यास से आत्मानुभव की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार अनुक्रम से अङ्गीकार करके, फिर उसी में से किसी समय देवादिक के विचार में; कभी तत्त्वविचार में; कभी स्व-पर के विचार में; तथा कभी आत्माविचार में उपयोग लगाना चाहिए.... जीव, पुरुषार्थ चालू रखे तो उसी क्रम से उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति, अर्थात् अपनी आत्मा का विस्मय आ जाता है।

प्रश्न 41- मोक्षमार्ग में विघ्न करनेवाले कुदेवादिक की क्या पहिचान है ?

उत्तर - (1) शरीर की क्रिया से, कर्म के क्षयादि से, शुभभाव करने से धर्म की प्राप्ति होती है;

(2) निमित्त मिले तो कल्याण हो;

(3) दया-दान, पूजा-यात्रा-अणुव्रत-महाव्रतादिक के शुभभावों से मोक्ष होता है - आदि कथन करनेवाले कुदेवादिक हैं और जो एकमात्र अपनी आत्मा के आश्रय से ही धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है - ऐसा कथन करनेवाले हैं, वही सच्चे देवादिक हैं। इस सच्चे निमित्त से अपना आश्रय ले, तो 'ज्ञान, चैतन्य चमत्कार-स्वरूप है' माना कहलायेगा।

प्रश्न 42- 'ज्ञान, पर का कुछ नहीं कर सकता' - यह किस प्रकार है ?

उत्तर - एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता; उसे परिणमित नहीं कर सकता; प्रेरणा नहीं कर सकता; लाभ-हानि नहीं कर सकता; उस पर प्रभाव नहीं डाल सकता; उसकी सहायता या उपकार नहीं कर सकता; उसे मार-जिला नहीं सकता—ऐसी प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता अनन्त ज्ञानियों ने पुकार -पुकार कर कही है, क्योंकि जगत में छहों द्रव्य, नित्य स्थिर रहकर प्रति समय अपनी अवस्था का उत्पाद-व्यय करते रहते हैं। इस प्रकार अनन्त जड़ और चेतनद्रव्य एक-दूसरे से स्वतन्त्र हैं; इसलिए वास्तव में किसी का नाश नहीं होता, कोई नया उत्पन्न नहीं होता है और न दूसरे उनकी रक्षा कर सकते हैं; इसलिए ज्ञान, पर का कुछ नहीं कर सकता है।

प्रश्न 43- 'ज्ञान, पर का कुछ नहीं कर सकता है' - इस सम्बन्ध में कुछ दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर - (1) शरीर की बाल्य अवस्था के बाद, कुमार अवस्था आती है; कुमार अवस्था के बाद युवा अवस्था; युवा अवस्था के बाद प्रौढ़ अवस्था; प्रौढ़ अवस्था के समय बाल्य अवस्था का, कुमार

अवस्था का, युवा अवस्था का ज्ञान, एक साथ हो सकता है परन्तु आत्मा इन सब अवस्थाओं को एक साथ नहीं ला सकता, क्योंकि 'ज्ञान, पर का कुछ नहीं कर सकता है।'

(2) शरीर की नीरोग अवस्था या शरीर की रोग अवस्था में से एक अवस्था हो, उस समय आत्मा, दूसरी अवस्था का ज्ञान कर सकता है परन्तु दूसरी अवस्था को नहीं ला सकता क्योंकि 'ज्ञान, पर का कुछ नहीं कर सकता।'

(3) एक क्षेत्रावगाहीरूप से रहनेवाले इस शरीर की एक अवस्था के समय, दूसरी अवस्थाओं का ज्ञान, आत्मा कर सकता है परन्तु आत्मा उन अवस्थाओं को ला नहीं सकता, बदल नहीं सकता है। तब अत्यन्त भिन्न परक्षेत्र में रहनेवाले पदार्थों की कोई भी अवस्था आत्मा ला सके, बदल सके - ऐसा त्रिकाल में नहीं हो सकता, क्योंकि 'ज्ञान, पर का कुछ नहीं कर सकता है।'

(4) बुखार आया, खाँसी हुई; क्षयरोग हुआ; बुढ़ापा आया; बाल सफेद हो गए; मुँह साँपों जैसा भट्टा बन गया, दस्त लग जाते हैं; फोड़ा हो जाता है; लड़का मर जाता है; माल चोरी हो जाता है; आग लग जाती है - आत्मा इन सबका ज्ञान कर सकता है परन्तु इनमें जरा भी हेर-फेर नहीं कर सकता है।

प्रश्न 44- आप कहते हो कि जीव, शरीर आदि परद्रव्यों का कुछ नहीं कर सकता लेकिन हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि हमने भाव किया तो हाथ उठा; हमने चलने का भाव किया तो चले; हमने भाव किए - तो शब्द निकला, यह बात कैसे है?

उत्तर - अज्ञानी को मिथ्यात्वरूपी पीलिया रोग हो गया है; इसलिए उसे जिनेन्द्रभगवान से विरुद्ध ही दिखता है। अच्छा भाई! तुम्हारे विचार में जीव, शरीरादि पर का कार्य कर सकता है - तो हम

तुमसे पूछते हैं-देखो! यह हाथ सीधा था, अब टेढ़ा हो गया, यह हमने किया। अब तुम इस हाथ को, पीछे की तरफ लगा दो। तब वह कहता है कि ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि शरीर का ऐसा स्वभाव नहीं है - तो याद रखो! हाथ टेढ़ा भी अपने स्वभाव से ही हुआ है, जीव से नहीं।

(1) बाल, सफेद है, आप तो नहीं चाहते - तो कर दो काले।

(2) शरीर का रङ्ग काला है, आप तो नहीं चाहते, तो कर दो गोरा।

(3) शरीर में बुखार है, आप तो नहीं चाहते - तो कर दो दूर।

(4) बहरा है; वह तो नहीं चाहता - तो कर दो ठीक।

(5) अन्धा है, वह तो नहीं चाहता - कर दो ठीक।

(6) जुखाम-खाँसी हो गया, आप तो नहीं चाहते - कर दो ठीक।

(7) फोड़ा हो गया, आप तो नहीं चाहते - कर दो ठीक।

(8) बुखार हो गया, आप तो नहीं चाहते - कर दो ठीक।

(9) बुढ़ापा आ गया, आप तो नहीं चाहते - कर दो ठीक।

(10) धन सब चाहते हैं, क्यों नहीं होता - ला दो तुम।

(11) माल खाया जाता है, बनता है बिष्टा; आप तो खून चाहते हैं - बना दो।

(12) टाँग कट गयी, आप तो नहीं चाहते - जोड़ दो।

याद रखो — शरीर में जुकाम, खाँसी, फोड़ा-फुन्सी, काला -गोरा, यह पुद्गल का स्वतन्त्र परिणमन है, यह अपने स्वभाव से ही स्वयं बदलता है क्योंकि प्रत्येक द्रव्य कायम रहता हुआ, अपना प्रयोजनभूत कार्य करता हुआ, स्वयं बदलता है—ऐसा वस्तुस्वभाव है।

(अ) अनादि काल से आज तक अनन्त शरीर धारण किए, लेकिन एक रजकण भी अपना नहीं बना।

(आ) केवलीभगवान को अनन्त चतुष्टय प्रगट हुआ है, वे उसी समय चार अघातिकर्म और औदारिकशरीर का अभाव नहीं कर सकते हैं। उनका भक्त कहलानेवाला कहे, हम कर सकते हैं, यह आश्चर्य है।

(इ) अज्ञानी को, शरीरादि का कार्य मैं कर सकता हूँ - ऐसा दिखता है। जैसे—चलती रेल में बैठ कर बाहर देखें, तो पेड़ चलते दिखते हैं।

प्रश्न 45- आत्मा, पर का कुछ नहीं कर सकता, ऐसा कहीं समयसार में लिखा है ?

उत्तर - (1)

नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः पर द्रव्यात्मत्वयोः।
कर्तृकर्मत्व सम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः ॥200॥

अर्थात्, परद्रव्य और आत्मतत्त्व का (कोई भी) सम्बन्ध नहीं है, तब फिर उनमें कर्ता-कर्मसम्बन्ध कैसे हो सकता है ? इस प्रकार जहाँ कर्ता-कर्मसम्बन्ध नहीं है, वहाँ आत्मा के परद्रव्य का कर्तृत्व कैसे हो सकता है ? कभी भी नहीं हो सकता है।

(2) कलश 199 में 'जो अज्ञान अन्धकार से आच्छादित होकर आत्मा को पर का कर्ता मानते हैं, वे चाहे मोक्ष के इच्छुक हो, तो भी लौकिकजनों की तरह उनको भी मोक्ष नहीं होता।' तथा कलश 201 में 'जो व्यवहार से मोहित होकर परद्रव्य का कर्तापना मानते हैं, वे लौकिकजन हों या मुनिजन हों — मिथ्यादृष्टि ही हैं।'

(3) श्री समयसार, गाथा 308 से 311 तक में बताया है कि 'समस्त द्रव्यों के परिणाम जुदे-जुदे, सभी द्रव्य अपने-अपने परिणामों के कर्ता हैं। निश्चय से किसी का, किसी के साथ कर्ता-कर्मसम्बन्ध नहीं है; इसलिए जीव अपने परिणाम का ही कर्ता, अपना परिणाम,

कर्म है। इसी तरह अजीव अपने परिणाम का ही कर्ता है, अपना परिणाम, कर्म है। इस प्रकार जीव, दूसरे के परिणामों का अकर्ता है।'

(4) अज्ञानीजन ही व्यवहार विमूढ़ होने से, परद्रव्य को ऐसा देखते मानते हैं कि 'यह मेरा है।'

(श्रीसमयसार, गाथा 324 से 327 की टीका से)।

(5) इस जगत में अज्ञानीजीवों का 'परद्रव्य का मैं करता हूँ' ऐसा परद्रव्य के कर्तृत्व का महा अहंकाररूप अज्ञान अन्धकार जो अत्यन्त दुर्निवार है, वह अनादि संसार में चला आ रहा है।'

(श्रीसमयसार, कलश 55)

(6) दो द्रव्य की क्रियाओं को, एक द्रव्य करता है – ऐसा मानना जिनेन्द्रभगवान का मत नहीं है। *(श्रीसमयसार, गाथा 85 का भावार्थ)*

(7) श्रीसमयसार, कलश 51 से 55 तक यही कहा है –

अर्थ – जो परिणमित होता है, वह कर्ता है, (परिणमित होनेवाले का) जो परिणाम है, वह कर्म है और जो परिणति है, वह क्रिया है; यह तीनों ही, वस्तुरूप से भिन्न नहीं हैं ॥51॥

वस्तु एक ही सदा परिणमित होती है, एक का ही सदा परिणाम होता है (अर्थात् एक अवस्था से अन्य अवस्था एक की ही होती है) और एक की ही परिणति-क्रिया होती है; क्योंकि अनेकरूप होने पर भी एक ही वस्तु है, भेद नहीं है ॥52॥

दो द्रव्य एक होकर परिणमित नहीं होते, दो द्रव्यों का एक परिणाम नहीं होता और दो द्रव्यों की एक परिणति-क्रिया नहीं होती; क्योंकि जो अनेक द्रव्य हैं, वह सदा अनेक ही हैं, वे बदलकर एक नहीं हो जाते ॥53॥

एक द्रव्य के दो कर्ता नहीं होते, और एक द्रव्य के दो कर्म नहीं होते तथा एक द्रव्य की दो क्रियाएँ नहीं होती; क्योंकि एक द्रव्य अनेक द्रव्यरूप नहीं होता ॥54॥

इस जगत् में मोही (अज्ञानी) जीवों का 'परद्रव्य को मैं जानता हूँ' ऐसा परद्रव्य के कर्तृत्व का महा अहंकाररूप अज्ञानान्धकार – जो अत्यन्त दुर्निवार है वह अनादि संसार से चला आ रहा है। आचार्य कहते हैं कि अहो! परमार्थनय का अर्थात् शुद्धद्रव्यार्थिक अभेदनय का ग्रहण करने से यदि वह एक बार भी नाश को प्राप्त हो तो ज्ञानघन आत्मा को पुनः बन्धन कैसे हो सकता है? (जीव ज्ञानघन है, इसलिए यथार्थ ज्ञान होने के बाद ज्ञान कहाँ जा सकता है? नहीं जाता और जब ज्ञान नहीं जाता तब फिर अज्ञान से बन्ध कैसे हो सकता है? कभी नहीं होता।) ॥55॥

(8) इस लोक में एक वस्तु का, अन्य वस्तु के साथ समस्त सम्बन्ध ही निषेध किया गया है। भिन्न-भिन्न वस्तुओं में कर्ता-कर्म की घटना नहीं होती; इसलिए ऐसा श्रद्धान करो कि कोई किसी का कर्त्ता नहीं है। परद्रव्य, पर का अकर्ता ही है।

प्रश्न 46- एक द्रव्य, दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता, ऐसा कहीं मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है?

उत्तर – 'अनादिनिधन वस्तुएँ, भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादासहित परिणमित होती हैं, कोई किसी के आधीन नहीं है, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती। उन्हें परिणमित कराना चाहे, वह कोई उपाय नहीं है, वह तो मिथ्यादर्शन ही है।'

(मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52)

प्रश्न 47- 'ज्ञान पर का कुछ नहीं कर सकता है' – इसका रहस्य क्या है?

उत्तर – हे आत्मा! तेरा कार्य, मात्र ज्ञाता-दृष्टा है; तू पर में जरा भी हेर-फेर नहीं कर सकता है – ऐसा जाने-माने तो दृष्टि अपने स्वभाव पर होती है और पर्याय में भगवान बन जाता है; इस प्रकार धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 48- 'ज्ञान, सर्व समाधानकारक है' यह किस प्रकार है ?

उत्तर - जैसे—किसी जगह एक पागल बैठा था। वहाँ अन्य स्थान से आकर मनुष्य, घोड़ा और धनादिक उतरे, उन सबको वह पागल अपना मानने लगा, किन्तु वे सब अपने-अपने आधीन हैं; अतः इसमें कोई आवे, कोई जाए और कोई अनेकरूप से परिणमन करता है। इस प्रकार सब की क्रिया अपने-अपने आधीन है, तथापि वह पागल उसे अपने आधीन मानकर पागल होता और उस पागल को किसी भले आदमी ने कहा - तू तो अलग है और यह सब अलग हैं, इनसे तेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। उस पागल के दिमाग में यह बात आते ही बड़ा आनन्दित हुआ; उसी प्रकार यह जीव, जहाँ शरीर धारण करता है, वहाँ किसी अन्य स्थान से आकर पुत्र, घोड़ा, धनादिक स्वयं प्राप्त होते हैं, यह जीव उन सबको अपना जानता है परन्तु ये सभी अपने-अपने आधीन होने से कोई आते, कोई जाते और कोई अनेक अवस्थारूप से परिणमते है। क्या यह उसके आधीन हैं ? वास्तव में उसके अधीन नहीं हैं तो भी अज्ञानी जीव उन्हें अपने आधीन मान कर, खेद खिन्न होता है। ऐसे समय में सद्गुरुदेव ने कहा - तू तो अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारक, अनादि-निधन, वस्तु है तथा शरीर, मूर्तिक पुद्गलद्रव्यों का पिण्ड, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों से रहित, नवीन ही जिसका संयोग हुआ है, ऐसे यह शरीरादि पुद्गल जो कि तेरे पर से हैं, इनसे तेरा सम्बन्ध नहीं है। इतना सुनते ही सर्व समाधान हो गया, अर्थात् शान्ति की प्राप्ति हो गयी। इसलिए 'ज्ञान, सर्व समाधानकारक हैं' कहा जाता है।

प्रश्न 49- 'ज्ञान, सर्व समाधानकारक है' इसे जरा स्पष्ट कीजिए ?

उत्तर - अज्ञानी जीव तो रागादिभावों के द्वारा सर्व द्रव्यों को

अन्य प्रकार से परिणमाने की इच्छा करता है, किन्तु ये सब द्रव्य, जीव की इच्छा के आधीन नहीं परिणमते; इसलिए अज्ञानी को आकुलता होती है। यदि जीव की इच्छानुसार सब ही कार्य हों, अन्यथा न हों तो ही निराकुलता रहे। तब सद्गुरुदेव ने कहा – ऐसा तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि किसी द्रव्य का परिणमन, किसी द्रव्य के आधीन नहीं है; इसलिए सम्यक् अभिप्राय द्वारा स्वसन्मुख होने से ही रागादिभाव दूर होकर निराकुलता होती है। ऐसा सुनते ही सर्व समाधान हो गए और पर में कर्ता–भोक्ता की खोटी बुद्धि का अभाव हो गया। इसलिए कहा जाता है 'ज्ञान, सर्व समाधानकारक है।'

प्रश्न 50– किसी लौकिक दृष्टान्त से 'ज्ञान, सर्व समाधान-कारक है' इसे समझाइए?

उत्तर – एक सेठजी थे। उनकी उम्र 80 वर्ष की थी। उनका इकलौता पुत्र श्यामसुन्दर था। उनके पास 10 लाख रुपये नकद थे। सेठजी ने श्यामसुन्दर को बुलाकर कहा – देखो बेटा श्यामसुन्दर! हमारे पास 10 लाख रुपया नकद है, बाकी जेवर–दुकान–मकान है ही। तुम पूरी उम्र कुछ न करो तो भी यह रुपया समाप्त नहीं होगा। इसका बैंक ब्याज ही इतना आता है कि तुम रुपये–पैसों की तरफ से दु:खी नहीं रहोगे, लेकिन याद रखना कि तुम किसी भी प्रकार का व्यापार मत करना। लड़के ने पिताजी के सामने तो हाँ करली, लेकिन बाद में उसने विचार किया कि यह रुपया तो पिताजी का कमाया हुआ है, मुझे स्वयं भी कुछ कमाना चाहिए। ऐसा विचार कर सट्टे का काम किया। उसमें जल्दी ही 5 लाख रुपया का घाटा हो गया। अब रुपया देने को चाहिए, यदि ना दिया जावे तो सात दिन बाद दिवाला करार दे दिया जाता था। चार दिन तो जैसे–तैसे बीत गये। पाँचवें दिन श्यामसुन्दर ने अपने पिताजी के मित्र से कहा – चाचाजी! मैंने पिताजी के मना करने पर भी सट्टे का काम किया,

उसमें 5 लाख रुपया का घाटा हो गया। पिताजी को पता चलेगा तो वे मुझे मारेंगे और घर से बाहर निकाल देंगे। अब आप किसी प्रकार कृपा करके पिताजी से यह रुपया दिलवाओ। वह मित्र उसके पिताजी के पास गया और कहा, कि श्यामसुन्दर ने सट्टे में 5 लाख रुपया का घाटा दे दिया है। यह सुनते ही सेठजी आपे से बाहर हो गये और कहा – मैंने तो उसे व्यापार करने की मनाही की थी। उसने व्यापार क्यों किया? मैं 5 लाख रुपया नहीं दूँगा, चाहे वह पकड़ा जावे—मर जावे। मैं तो अब उसका मुँह भी देखना नहीं चाहता।

मित्र ने कहा – कल 12 बजे तक 5 लाख रुपया नहीं दोगे तो श्यामसुन्दर जहर खाकर मर जावेगा; समझाते हुए उसने फिर कहा – जरा विचारो! तुम्हारी उम्र 80 वर्ष की हो गयी है। अब दो-चार साल ही जीना है। परलोक में रुपया साथ जावेगा नहीं। सब रुपया आपको उसी को दे देना ही तो था। उसने 5 लाख रुपया खो दिया तो उसमें तुम्हारा क्या गया? उसी का गया। सेठजी को यह बात जँच गयी। उनको सर्व समाधान हो गया और आकुलता मिट गयी। इससे सिद्ध हुआ 'ज्ञान, सर्व समाधानकारक है।'

प्रश्न 51- इन छह बोलों से क्या तात्पर्य रहा?

उत्तर – शरीर, धन, सुख-दुःख अथवा शत्रु-मित्रजन (यह सब कुछ) जीव के ध्रुव नहीं हैं; ध्रुव तो ज्ञानात्मक, दर्शनरूप; इन्द्रियों के बिना सबको जाननेवाला महापदार्थ; ज्ञेय-पर्यायों का ग्रहण-त्याग न करने से अचल और ज्ञेय-परद्रव्यों का आलम्बन न लेने से निरालम्ब है; इसलिए भगवान आत्मा एक है, एक होने से शुद्ध है, शुद्ध होने से ध्रुव है; ध्रुव होने से एकमात्र वही उपलब्ध करने योग्य है – ऐसा श्रद्धान-ज्ञान-अनुभव होना, यह ज्ञान के छह बोलों के जानने का तात्पर्य है। *(श्रीप्रवचनसार, गाथा 192 से 196 तक का सार)*

4

श्रीसमयसार, गाथा 14 तथा कलश 10 का रहस्य

शुद्धनय का स्वरूप

प्रश्न 1- शुद्धनय क्या है ?

उत्तर - आदि अन्त पूरन-सुभाव-संयुक्त है।
पर-स्वरूप पर-जोग कल्पना मुक्त है॥
सदा एक रस प्रगट कही है जैन में।
शुद्धनयातम वस्तु विराजै बैन में॥

अर्थात्, जीव, निगोद से लगाकर सिद्धदशा तक परिपूर्ण स्वभाव से संयुक्त है और परद्रव्यों की कल्पना से रहित है। सदैव एक चैतन्यरस से सम्पन्न है - ऐसा शुद्धनय की अपेक्षा जिनवाणी में कहा है। ऐसे त्रिकाली एकरूप का अनुभव हुआ, तब शुद्धनय का पता चलता है। अपने आपका अनुभव हुए बिना, शुद्धनय का ज्ञान, अज्ञान है।

(1) बुधजनजी कहते हैं कि 'जो निगोद में सो ही मुझ में, सो ही मोक्ष मंझार; निश्चय भेद कुछ भी नाहीं, भेद गिनै संसार॥

(2) इसी बात को श्रीनियमसार में कहा है कि जैसे, सिद्ध आत्मा है; वैसे ही संसारी जीव हैं, जिससे (वे संसारी जीव, सिद्धात्माओं की भाँति) जन्म-जरा-मरण से रहित और आठ गुणो से अलंकृत हैं। *(गाथा, 47)*

जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धभगवन्त अशरीरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा है; उसी प्रकार संसार में (सर्व) जीव जानना। *(गाथा, 48)*

प्रश्न 2- दशवें कलश में 'शुद्धनय' को कैसा बताया है ?

उत्तर -

आत्मस्वभावं परभावभिन्नमापूर्णमाद्यंत विमुक्तमेकम्।
विलोनसंकल्प-विकल्पजालं प्रकाशयन् शुद्ध नयोऽम्युदेति ॥10॥

अर्थात्, शुद्धनय, आत्मस्वभाव को प्रगट करता हुआ उदयरूप हुआ है।

(1) वह शुद्धनय कैसा है ? (परभाव भिन्नम्) परद्रव्यों और परभावों से भिन्न है।

(2) और कैसा है ? (आपूर्णम्) आत्मस्वभाव समस्तरूप से पूर्ण है।

(3) और कैसा है ? (आद्यन्त विमुक्तं) आदि और अन्त से रहित, अर्थात अनादि-अनन्त है।

(4) और कैसा है ? (एकं)एक है।

(5) और कैसा है ? (विलीन सङ्कल्प विकल्प जालं) सङ्कल्प और विकल्पों से रहित है।

प्रश्न 3- समयसार, गाथा 14 में इन पाँचों बोलों को किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उत्तर -

अनबद्ध स्पृष्ट अनन्य अरु जो नियत देखे आत्म को।
अविशेष अनसंयुक्त उसको शुद्धनय तू जान जो ॥14॥

अर्थात्, (1) [अबद्धस्पृष्टम्] बन्धरहित और पर के स्पर्श से रहित।

(2) [अनन्य] अन्य-अन्यपने से रहित।

(3) [नियतम्] चलाचलरहित।

(4) [अविशेषम्] विशेषरहित, अर्थात् भेदरहित।

(5) [असंयुक्तं] अन्य के संयोग से रहित – ऐसा बताया है।

प्रश्न 4– दशवें कलश और गाथा 14 में जो पाँच-पाँच बोल हैं, वह किस-किस अपेक्षा से हैं ?

उत्तर – (1) [द्रव्य अपेक्षा] परद्रव्य और परभावों से भिन्न। अबद्धस्पृष्ट, अर्थात् बन्धरहित, पर के स्पर्श से रहित – ऐसा शुद्धनय है।

(2) [क्षेत्र अपेक्षा] आपूर्ण, अर्थात् समस्तरूप से पूर्ण। अनन्य, अर्थात् अन्य-अन्यपने से रहित – ऐसा शुद्धनय है।

(3) [काल अपेक्षा] अनादि-अनन्त। नियत, अर्थात् चलाचलता रहित – ऐसा शुद्धनय है।

(4) [भाव अपेक्षा] एक, अर्थात् अभेद। अविशेष, अर्थात् विशेषरहित – ऐसा शुद्धनय है।

(5) [भव अपेक्षा] सङ्कल्प-विकल्प जालों से रहित। असंयुक्त, अर्थात् अन्य के संयोगरहित – ऐसा शुद्धनय है।

जो भव्यजीव ऐसे पाँच भावरूप से एक अपने आत्मा को देखता है, वह मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाता है।

प्रश्न 5– द्रव्य अपेक्षा से आत्मा अबद्ध-अस्पृष्ट, एवं परद्रव्य और परभावों से भिन्न है – इसका क्या रहस्य है, दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर – जैसे – कमलिनी का पत्र, जल में डूबा हुआ है। उसका जल से स्पर्शितरूप अवस्था से अनुभव किये जाने पर, जल से स्पर्शरूप अवस्था भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय कमलिनीपत्र के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर, जल से स्पर्शरूपदशा

अभूतार्थ है–असत्यार्थ है; उसी प्रकार–आत्मा का अनादि पुद्गलकर्म से बद्ध–स्पर्शरूप अवस्था से अनुभव किये जाने पर, बद्ध–स्पर्शपना भूतार्थ है–सत्यार्थ है; उसी समय पुद्गल से किञ्चितमात्र भी बद्ध–स्पर्श न होने योग्य आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर, बद्ध–स्पर्शता अभूतार्थ है–असत्यार्थ है।

तात्पर्य यह है कि आत्मा, कर्मों से बँधा हुआ–स्पर्शा हुआ है, उसी समय स्वभाव की अपेक्षा से देखने पर, कर्मों से बँधा और स्पर्शा हुआ नहीं है – ऐसा जानकर अपने स्वभाव की दृष्टि करे, तो आठों कर्मों का अभाव होकर 'स हि मुक्त एव' बन जाता है।

प्रश्न 6– क्या कर्मों से सम्बन्ध होते हुए भी अबद्ध–स्पृष्ट आत्मा का अनुभव हो सकता है और उसका क्या फल है?

उत्तर – हाँ, हो सकता है, क्योंकि कर्मों का सम्बन्ध, अभूतार्थ है और भगवान आत्मा, भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने यही बात इसमें बतलायी है और इसका फल (आत्मा के अनुभव का फल) आठों कर्मों का अभाव बताया है।

प्रश्न 7– सम्यग्दर्शन होते ही आठों कर्मों का अभाव कैसे हो जाता है?

उत्तर – (1) जीव, अज्ञानदशा में अपने स्वरूप की असावधानी रखना था, उसमें मोहनीयकर्म का उदय निमित्त होता था; अब अपना अनुभव होने पर, अपने स्वरूप की सावधानी रखता है, इससे मोहनीयकर्म का अभाव हो गया ।

(2) स्वरूप की असावधानी होने से अज्ञानी जीव, अपना ज्ञान पर की ओर मोड़ता था, उसमें ज्ञानावरणीयकर्म निमित्त होता था; अब अपना ज्ञान अपनी ओर लगाने से ज्ञानावरणीयकर्म का अभाव हो गया।

(3) स्वरूप की असावधानी होने से अज्ञानी जीव, अपना

दर्शन पर की ओर मोड़ता था, उसमें दर्शनावरणीयकर्म निमित्त होता था; अब अपना दर्शन अपनी ओर लगाने से दर्शनावरणीयकर्म का अभाव हो गया।

(4) स्वरूप की असावधानी होने से अज्ञानी जीव, अपना वीर्य पर की ओर मोड़ता था, उसमें अन्तरायकर्म निमित्त होता था; अब अपना वीर्य अपनी ओर लगाने से अन्तरायकर्म का अभाव हो गया।

(5) पर की ओर झुकाव से अज्ञानी जीव को पर का संयोग होता था, इसमें नामकर्म का उदय निमित्त होता था; अब पर की ओर झुकाव न होने से, अपनी ओर झुकाव होने से नामकर्म का अभाव हो गया।

(6) जहाँ शरीर हो, वहाँ ऊच-नीचकुल में उत्पत्ति होती थी, उसमें गौत्रकर्म का उदय निमित्त होता था; अब ऊँच-नीचपना से रहित ज्ञायकस्वभाव की ओर झुकाव होने से गोत्रकर्म का अभाव हो गया।

(7) जहाँ शरीर होता है, वहाँ बाहर की अनुकूलता-प्रतिकूलता रोग-निरोग आदि होते थे, उसमें वेदनीयकर्म का उदय निमित्त होता था; अब शरीर की अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि का भाव न होने की अपेक्षा वेदनीयकर्म का अभाव हो गया।

(8) अज्ञानदशा में भव के भाव, जीव ने किये होने से आयु का बन्ध होता था; अब भव के भाव का अभाव होने से आयु का अभाव हो गया।

इस अपेक्षा से सम्यग्दर्शन होते ही आठों कर्मों का अभाव हो जाता है; इसलिए अबद्धस्पृष्टादि रूप अपने एक भगवान का आश्रय लेकर शान्ति की प्राप्ति करना, भव्य जीव का परम कर्तव्य है।

प्रश्न 8- क्षेत्र अपेक्षा से आत्मा, अनन्य एवं समस्त प्रकार

से पूर्ण है - इसका क्या रहस्य है, दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर - मिट्टी का ढक्कन, घड़ा, झारी इत्यादि पर्यायों से अनुभव करने पर अन्यत्व, भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय सर्व पर्यायभेदों से किञ्चित्मात्र भी भेदरूप न होनेवाले, एक मिट्टी के स्वभाव के समीप अनुभव करने पर अन्यत्व, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; उसी प्रकार आत्मा का नारक आदि पर्यायों के अन्य-अन्यरूप से अन्यत्व, भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय सर्व पर्यायभेदों से किञ्चित् -मात्र भेदरूप न होनेवाले एक चैतन्याकार असंख्यात प्रदेशी आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि गतिसम्बन्धी शरीर होने पर, शरीर सम्बन्धी नामकर्मादि का उदयादि होने पर और गतिसम्बन्धी भाव होने पर भी, गतिरहित स्वभाव एकरूप पड़ा है; उसकी ओर दृष्टि करते ही चारों गतियों का अभाव होकर पञ्चम गति की प्राप्ति होती है।

प्रश्न 9- क्या शरीर, कर्मादि और भावकर्म होने पर भी, आत्मा का अनुभव हो सकता है और उसका फल क्या है ?

उत्तर - हाँ, हो सकता है, क्योंकि गतिसम्बन्धी शरीर, कर्म का उदय और गतिसम्बन्धी भाव, अभूतार्थ है और भगवान आत्मा का गतिरहित स्वभाव, भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने यही बात दूसरे बोल में समझायी है और इसका फल, चारों गतियों के अभावरूप मोक्ष की प्राप्ति बताया है; इसलिए शरीर, कर्म और शरीरसम्बन्धी भावों से रहित, अगतिस्वभाव पर दृष्टि करके पात्र जीवों को अपना कल्याण तुरन्त कर लेना चाहिए।

प्रश्न 10- क्या आत्मा का अनुभव होते ही चारों गतियों के अभावरूप मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ?

उत्तर - हाँ, हो जाती है। जैसे - लड़की का रिश्ता पक्का करने

पर सगाई, विवाह न होने पर भी विवाह हो गया, कहा जाता है; उसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर, एक-दो भव होने पर भी, ज्ञानी की दृष्टि, अगतिस्वभाव होने से चारों गति के अभावरूप मोक्ष की प्राप्ति कही जाती है। वास्तव में जब तक सम्यग्दर्शन नहीं है; तब तक चार गतिरूप निगोद है और सम्यग्दर्शन होते ही चार गति के अभावरूप मोक्ष है क्योंकि चार गतियों के भाव का फल अन्त में निगोद है और अगतिरूप स्वभाव के लक्ष्य से मोक्ष है।

प्रश्न 11- मोक्ष कितने प्रकार का है ?

उत्तर - पाँच प्रकार का है - (1) शक्तिरूप मोक्ष, (2) दृष्टिमोक्ष, (3) मोहमुक्त मोक्ष, (4) जीवनमुक्त मोक्ष, (5) विदेहमोक्ष।

याद रखना चाहिए —

(अ) शक्तिरूप मोक्ष के आश्रय से ही दृष्टिमोक्ष की प्राप्ति होती है।

(आ) दृष्टिमोक्ष प्राप्त होने पर, मोहमुक्त मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(इ) मोहमुक्त मोक्ष प्राप्त होने पर, जीवनमुक्त मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(ई) जीवनमुक्त मोक्ष प्राप्त होने पर ही विदेहमोक्ष की प्राप्ति होती है। यही अनादि-अनन्त नियम है।

प्रश्न 12- काल अपेक्षा से आत्मा नियत, अनादि-अनन्त है — इसका रहस्य क्या है, दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर - जैसे - समुद्र का वृद्धि-हानिरूप अवस्था से अनुभव करने पर अनियमितता, भूतार्थ-सत्यार्थ है; उसी समय नित्य / स्थिर समुद्रस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर, अनियतता, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; उसी प्रकार आत्मा का वृद्धि-हानिरूप पर्याय-भेदों

से अनुभव करने पर अनियतता, भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय नित्य / स्थिर आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि आत्मा की पर्याय में हानि-वृद्धि होने पर भी, हानि-वृद्धिरहित एकरूप स्वभाव पृथक् पड़ा है; उसकी ओर दृष्टि करे तो पञ्च परावर्तनरूप संसार का अभाव हो जाता है।

प्रश्न 13- क्या पर्याय में हानि-वृद्धि होने पर भी पञ्च परावर्तनरूप संसार का अभाव हो सकता है और उसका फल क्या है?

उत्तर - हाँ हो सकता है, क्योंकि पर्याय में हानि-वृद्धिपना अभूतार्थ है और स्वभाव, भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने तीसरे बोल में यही बात बतलायी है और हानि-वृद्धिरहित स्वभाव के आश्रय का फल, पञ्च परावर्तन का अभाव बताया है।

प्रश्न 14- पञ्च परावर्तन का स्वरूप, संक्षेप में क्या है?

उत्तर - (1) जीव का विकारी अवस्था में कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलों के साथ जो सम्बन्ध होता है, उसे द्रव्यपरावर्तन कहते हैं। इस जीव ने लोकाकाश में जितने पुद्गल हैं, उनका अनन्त बार ग्रहण किया और छोड़ा, परन्तु मैं भगवान आत्मा हूँ - ऐसा नहीं समझा; अतः द्रव्यपरावर्तन करना पड़ा।

(2) जीव की विकारी अवस्था में आकाश के क्षेत्र के साथ होनेवाले सम्बन्ध को क्षेत्रपरावर्तन कहते हैं। यह जीव सम्पूर्ण लोकाकाश में क्षेत्रों में अनन्त बार जन्मा और मरा, परन्तु मैं भगवान आत्मा हूँ - ऐसा अनुभव नहीं किया; अतः क्षेत्रपरावर्तन करना पड़ा।

(3) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में ऐसा कोई काल नहीं, जब यह जीव अनन्त बार जन्मा और मरा ना हो परन्तु मैं

भगवान आत्मा हूँ – ऐसा अनुभव नहीं किया; अतः कालपरावर्तन करना पड़ा

(4) मिथ्यात्व के संसर्गसहित नरकादि की जघन्य आयुवाले भव से लेकर नववे ग्रैवेयक तक भवों की स्थिति को इस जीव ने अनन्त बार प्राप्त की और छोड़ी परन्तु मैं भगवान आत्मा हूँ – ऐसा अनुभव नहीं किया; अतः भवपरावर्तन करना पड़ा।

(5) अशुभभाव से लेकर शुक्ललेश्या तक के भाव इस जीव ने अनन्त बार किये और छोड़े परन्तु मैं भगवान आत्मा हूँ – ऐसा अनुभव नहीं किया; अतः भावपरावर्तन करना पड़ा। यदि एक बार हानि-वृद्धिरहित स्वभाव की दृष्टि कर ले तो उसी समय पञ्च परवर्तन का अभाव हो जाता है।

प्रश्न 15- पञ्च परावर्तन के विषय में परमात्मप्रकाश, गाथा 77 में क्या बताया है ?

उत्तर – यह जीव, मिथ्यात्वपरिणाम से शुद्धात्मा के अनुभव से परांमुख अनेक तरह के कर्मों को बाँधता है, जिनसे कि द्रव्य-क्षेत्र -काल-भव और भावरूपी पाँच प्रकार के संसार में भटकता है।

(1) द्रव्यपरावर्तन – ऐसा कोई शरीर नहीं, जो इसने न धारण किया हो।

(2) क्षेत्रपरावर्तन – ऐसा कोई क्षेत्र नहीं, जहाँ जन्म-मरण न किया हो।

(3) कालपरावर्तन – ऐसा कोई काल नहीं कि जिसमें इसने जन्म-मरण न किये हों।

(4) भवपरावर्तन – ऐसा कोई भव नहीं है, जो इसने न पाया हो।

(5) भावपरावर्तन – ऐसे अशुद्धभाव नहीं है, जो इसके न हुए हों; इस तरह अनन्त परावर्तन इसे किये हैं – ऐसा बताया है।

प्रश्न 16– यदि मनुष्यभव में जहाँ सच्चे देव-गुरु-धर्म का सम्बन्ध मिला, वहाँ जीव अपना कल्याण न करे, व्यर्थ के कोलाहल में लगा रहे तो क्या होगा ?

उत्तर – चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद में चला जाएगा।

प्रश्न 17– 'मनुष्यभव में दिगम्बरधर्म मिलने पर भी, यदि व्रतादिक में ही लाभ मानता रहा तो निगोद जाना पड़ेगा' – यह कहाँ लिखा है ?

उत्तर – (1) जब तक लोहा गरम है, तब तक उसे पीट लो; गढ़ लो; इस कहावत के अनुसार इसी मनुष्यभव में जल्दी आत्मस्वरूप को समझ लो, अन्यथा थोड़े ही समय में त्रसकाल पूरा हो जाएगा और एकेन्द्रिय निगोदपर्याय प्राप्त होगी और उसमें अनन्त काल तक रहना होगा; इसलिए इस मनुष्यभव में ही पात्र जीवों को आत्मा का सच्चा स्वरूप समझ कर, सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति कर लेना चाहिए, क्योंकि आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने कहा है कि 'यदि इस अवसर में भी तत्त्वनिर्णय करने का पुरुषार्थ न करे, प्रमाद से काल गँवाये – या तो मन्दरागादिसहित विषय-कषायों के कार्यों में ही प्रवर्ते या व्यवहारधर्म कार्यों में प्रवर्ते, तब अवसर चला जावेगा और संसार में ही भ्रमण होगा। .....'ऐसे समय में मोक्षमार्ग में प्रवर्तन नहीं करे, तो किञ्चित विशुद्धता पाकर फिर तीव्र उदय आने पर निगोदादि पर्याय को प्राप्त करेगा; इसलिए अवसर चूकना योग्य नहीं है। अब सर्व प्रकार से अवसर आया है – ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है, इसलिए श्रीगुरु दयालु होकर मोक्षमार्ग का उपदेश दे रहे हैं, उसमें भव्य जीवों को प्रवृत्ति करना योग्य है।'

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक]

प्रश्न 18- भाव अपेक्षा से आत्मा, अविशेष-एक है - इसका क्या रहस्य है, दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर - जैसे-सोने का चिकनापन, पीलापन, भारीपन इत्यादि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता, भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं - ऐसे स्वर्णस्वभाव के समीप आकर अनुभव करने पर विशेषता, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; उसी प्रकार आत्मा का ज्ञान-दर्शन आदि गुणरूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता, भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय जिसमें सब विशेष विलय हो गये हैं-ऐसे आत्मस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषता, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि आत्मा में गुणभेद संज्ञा, संख्या, लक्षण, प्रयोजन आदि की अपेक्षा से है; प्रदेशभेद नहीं है। आत्मा में गुणभेद होने पर भी, तू अभेद भगवान ज्ञायकस्वभावी है - ऐसा जानकर, अभेदस्वभावी का आश्रय ले तो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग का अभाव होकर शान्ति की प्राप्ति हो जाएगी।

प्रश्न 19- क्या गुणभेद होने पर भी, संसार के पाँच कारणों को अभाव हो सकता है और उसका फल क्या है ?

उत्तर - हाँ, हो सकता है क्योंकि गुणभेद, अभूतार्थ है और भगवान आत्मा, अभेद भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने चौथे बोल में यही बात समझायी है कि तू अभेदस्वभाव की दृष्टि करे तो संसार के कारणों का अभाव होकर, सिद्धदशा की प्राप्ति हो जाएगी।

प्रश्न 20- संसार के पाँच कारण कौन-कौन से है, जिनसे संसार परिभ्रमण होता है ?

उत्तर - मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, और योग - ये संसार परिभ्रमण के पाँच कारण हैं।

प्रश्न 21- मिथ्यात्व क्या है ?

उत्तर - मिथ्यात्व—अनादि से एक-एक समय करके अज्ञानी की मिथ्यात्वदशा है। सम्पूर्ण दु:खों का मूलकारण मिथ्यात्व ही है। जीव के जैसा श्रद्धान है, वैसा पदार्थ स्वरूप न हो और जैसा पदार्थ का स्वरूप हो, वैसा यह न माने, यह मिथ्यादर्शन है। अज्ञानी जीव, स्व और शरीर को एक मानता है; किसी समय अपने को पतला, मोटा, बुखारवाला, कड़ा, नरम, गोरा आदि मानता है, यह मिथ्यादर्शन है।

प्रश्न 22- मिथ्यादर्शन को समझाने के लिए आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने क्या दृष्टान्त और सिद्धान्त समझाया है ?

उत्तर - [अ] (1) जैसे-पागल को किसी ने वस्त्र पहिना दिया। वह पागल उस वस्त्र को अपना अङ्ग जानकर, अपने को और वस्त्र को एक मानता है; उसी प्रकार इस जीव को कर्मोदय ने शरीर सम्बन्ध कराया। यह जीव, इस शरीर को अपना अङ्ग जानकर, अपने को और शरीर को एक मानता है।

(2) जैसे-वह वस्त्र, पहिनानेवाले के आधीन होने से कभी वह फाड़ता है, कभी जोड़ता है, कभी खोंसता है, कभी नया पहिनाता है - इत्यादि चरित्र करता है; उसी प्रकार वह शरीर, कर्म के आधीन (निमित्त से) कभी कृष होता है - कभी स्थूल होता है, कभी नष्ट होता है, कभी नवीन उत्पन्न होता है-इत्यादि चरित्र होते हैं।

(3) जैसे-वह पागल उसे अपने आधीन मानता है; उसकी पराधीनक्रिया होती है, उससे वह महा खेदखिन्न होता है; उसी प्रकार यह जीव, उसे अपने आधीन मानता है, उसकी पराधीनक्रिया होती है, इससे वह महा खेदखिन्न होता है।

[आ](3) जैसे-जहाँ वह पागल ठहरा था, वहाँ अन्य स्थान से आकर, मनुष्य, घोड़ा और धनादिक उतरे। उन सबको वह पागल

अपना मानने लगा, किन्तु वे सभी अपने-अपने आधीन हैं; अतः इसमें कोई आवे, कोई जावे और कोई अनेक अवस्थारूप से परिणमन करता है; इस प्रकार सबकी क्रिया अपने-अपने आधीन है, तथापि वह पागल, उसे अपने आधीन मानकर खेदखिन्न होता है; उसी प्रकार यह जीव, जहाँ शरीर धारण करता है, वहाँ किसी अन्य स्थान से आकर पुत्र, घोड़ा और धनादिक स्वयं प्राप्त होते हैं। यह जीव उन सबको अपना जानता है परन्तु ये सभी अपने-अपने आधीन होने से कोई आते हैं, कोई जाते हैं और अनेक अवस्थारूप से परिणमते हैं। क्या ये उसके आधीन हैं? ये जीव के आधीन नहीं हैं तो भी यह जीव, उन्हें अपने आधीन मानकर खेदखिन्न होता है, यह सब मिथ्यादर्शन है। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ ..... के आधार से]*

प्रश्न 23- यह जीव स्वयं जिस प्रकार है, उसी प्रकार अपने को नहीं मानता और किन्तु जैसा नहीं है, वैसा मानता है; यह मिथ्यादर्शन है-इसे जरा स्पष्टरूप से समझाइये?

उत्तर - जीव स्वयं (1) अमूर्तिक प्रदेशों का पुञ्ज, (2) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारक, (3) अनादि निधन, (4) वस्तु स्व है तथा (1) शरीर, मूर्तिक पुद्गलद्रव्यों का पिण्ड (2) प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों से रहित, (3) नवीन ही जिनका संयोग हुआ है, (4) ऐसे यह शरीरादिक पुद्गल पर हैं। इन दोनों के संयोगरूप मनुष्य, तिर्यञ्चादि अनेकर प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं; मूढ़ जीव इनमें अपनापना मानता है। स्व और पर का विवेक न होने से यह मिथ्यादर्शन है।

प्रश्न 24- मिथ्यादर्शन की कुछ पहिचान बताईए?

उत्तर - (1) नौ प्रकार के पक्षों में अपनेपने की बुद्धि;

(2) स्व-पर की एकत्वबुद्धि;

(3) शुभभावों से धर्म होता है - ऐसी बुद्धि;

(4) ज्ञेय से ज्ञान होना मानना;

(5) शुभाशुभभावों का ग्रहण-त्यागरूप बुद्धि;

(6) अपने को नरकादिरूप मानने की बुद्धि;

(7) पर में इष्ट-अनिष्ट की बुद्धि;

(8) मनुष्य-तिर्यञ्चों के प्रति करुणाभाव आदि मान्यताएँ; मिथ्यादर्शन के चिह्न हैं।

प्रश्न 25- मिथ्यात्व की पहिचान क्यों बतायी है ?

उत्तर - मिथ्यात्व का स्वरूप जानकर, भव्य जीवों को मिथ्यात्व छोड़ देना चाहिए क्योंकि सब प्रकार के बन्ध का मूलकारण मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व नष्ट हुए बिना अविरति आदि दूर नहीं होते; इसलिए प्रथम मिथ्यात्व को छोड़ना चाहिए।

प्रश्न 26- अविरति किसे कहते हैं ?

उत्तर - (1) चारित्रसम्बन्धी निर्विकार स्वसंवेदन से विपरीत, अव्रत परिणामरूप विकार को अविरति कहते हैं।

(2) पाँच इन्द्रिय और मन के विषय एवं पाँच स्थावर और त्रस हिंसा, इन बारह प्रकार के त्यागरूप भाव का न होना, वह बारह प्रकार की अविरति है। अविरति को असंयम भी कहते हैं।

प्रश्न 27- प्रमाद किसे कहते हैं ?

उत्तर - उत्तम क्षमादि दश धर्मों में उत्साह न रखना, यह प्रमाद है।

प्रश्न 28- कषाय किसे कहते हैं ?

उत्तर - (1) मिथ्यात्व तथा क्रोधादिरूप आत्मा की अशुद्ध परिणति को कषाय कहते हैं।

(2) कष् = संसार। आय = लाभ। जिस भाव से संसार का लाभ हो, वह कषाय है, अर्थात् जो आत्मा को दु:ख दे, उसे कषाय कहते हैं। कषाये पच्चीस होती हैं।

प्रश्न 29- योग किसे कहते हैं ?

उत्तर - (1) मन-वचन-काय के निमित्त से आत्मप्रदेशों के परिस्पंदन को योग कहते हैं।

(2) आत्मा के प्रदेशों का सकम्प होना, सो योग है। योग के पन्द्रह भेद, निमित्त को अपेक्षा से हैं। आत्मा में योग नाम का गुण है, इसमें शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकार का परिणमन है।

प्रश्न 30- क्या सम्यग्दर्शन होते ही संसार के पाँच कारणों का अभाव हो जाता है ?

उत्तर - (1) जैसे, किसी को 99999 रुपया देना है। वह यदि 90000 रुपया दे दे तो 9999 रुपया बाकी रहता है; 90000 दे दिया तो बाकी आ ही जाता है। उसी प्रकार मिथ्यात्व का अभाव होना 90000 देने के बराबर है। जहाँ मिथ्यात्व का अभाव हो गया, वहाँ अविरति, प्रमाद, कषाय और योग का अभाव अल्प काल में हो ही जाता है; इसलिए सम्यक्त्व होते ही संसार के पाँच कारणों का अभाव हो जाता है।

(2) अनन्त संसार का कारण तो मिथ्यात्व है। उसका अभाव हो जाने पर, अन्य बन्ध की गणना कौन करता है ? जैसे, वृक्ष की जड़ कट जाने पर, फिर हरे पत्ते की अवधि कितनी रहती है ? इसलिए सम्यग्दर्शन होने पर जो कुछ कमी होती है, वह सहज मिट ही जाती है; अत: मिथ्यात्व का अभाव होते ही संसार के पाँच कारणों का अभाव हो जाता है।

प्रश्न 31- भव अपेक्षा से आत्मा असंयुक्त, सङ्कल्प-विकल्पजालों से रहित है - इसका क्या रहस्य है, जरा दृष्टान्त देकर समझाइए ?

उत्तर - जैसे-जल का, अग्नि जिसका निमित्त है - ऐसी उष्णता के साथ संयुक्तारूप अवस्था से अनुभव करने पर (जल का) उष्णतारूप संयुक्तता, भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय एकान्त शीतलतारूप जलस्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर (उष्णता के साथ) संयुक्तता, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; उसी प्रकार आत्मा का] कर्म जिसका निमित्त है - ऐसे मोह के साथ संयुक्तारूप अवस्था से अनुभव करने पर संयुक्तता, भूतार्थ है-सत्यार्थ है; उसी समय जो स्वयं एकान्त ज्ञायक जीवस्वभाव (पर के, निमित्त के, भेद से रहित, स्वाश्रितरूप से स्थायी ज्ञानस्वभाव) है, उसके (चैतन्यस्वभाव) के समीप जाकर अनुभव करने पर संयुक्तता, अभूतार्थ है-असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि आत्मा का, पर्याय में मोह-राग-द्वेष होने पर, कर्म का निमित्त होने पर भी आत्मा का परमपारिणामिकभाव एकरूप पड़ा है; उसकी ओर दृष्टि करे तो औदयिकभावों के अभावरूप औपशमिकभाव तथा धर्म का क्षयोपशमपना प्रगट होकर, क्रम से पूर्ण क्षायिकपना प्रगट होता है। ऐसा जानकर अपने पारिणामिकभाव का आश्रय लेकर क्षायिकदशा प्रगट करना, पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

प्रश्न 32- क्या पर्याय में मोह-राग-द्वेष होने पर, कर्म का निमित्त होने पर भी, औदयिकभावों का अभाव हो सकता है, और उसका फल क्या है ?

उत्तर - हाँ, हो सकता है क्योंकि पर्याय में मोह-राग-द्वेषभाव, अभूतार्थ है और भगवान आत्मा, भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य

ने यही बात इस पाँचवें बोल में समझायी है कि तेरी पर्याय में मोह –राग–द्वेष होने पर भी, तू अपने परमपारिणामिकभाव की दृष्टि करे तो पूर्ण क्षायिकदशा प्रगट होती है।

प्रश्न 33– श्रीसमयसार, कलश 10 तथा गाथा 14 में, 'जो आत्मा को अबद्धस्पृष्ट आदि पाँच भावरूप से देखता है, उसे तू शुद्धनय जान' – इसको समझाने से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – पाँचरूप से नहीं, परन्तु एकरूप से जानता–अनुभवता और स्थिरता करता है, उसने शुद्धनय को जाना। वास्तव में इस गाथा में पाँच प्रकार से कथन किया है। आचार्य भगवान को पात्र भव्य जीवों के प्रति करुणा है कि किसी भी प्रकार इस अज्ञानी जीव का अज्ञान मिटकर, धर्म की प्राप्ति हो। वास्तव में प्रथम बोल के समझने से ही कल्याण हो जाना चाहिए; जो इतने से नहीं समझा, उसे दूसरे बोल से; फिर तीसरे बोल से; फिर चौथे बोल से और फिर पाँचवें बोल से समझाया है। यदि पात्र जीव समझ जावे तो स्वयं भगवान बन जाता है और यदि न समझे तो चारों गतियों में घूमकर निगोद चला जाता है। अबद्धस्पृष्टादि को समझने से मोक्ष का पथिक बने, यह तात्पर्य पाँच बोलो से है।

प्रश्न 34– जो शुद्धनय को जान जाता है, उसका फल अनादि से जिन, जिनवर और जिनवर वृषभों ने क्या–क्या बताया है ?

उत्तर – (1) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग – इन संसार परिभ्रमण के पाँच कारणों का अभाव होकर, मोक्ष का पथिक बन जाता है।

(2) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पाँच परावर्तन का अभाव होकर, क्रम से सिद्धदशा को प्राप्ति इसका फल है।

(3) पञ्च परमेष्ठियों में उसकी गिनती होने लगती है।

(4) चारों गतियों का अभाव होकर, पञ्चम गति / मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

(5) औदायिकादिभावों से दृष्टि हटकर, परमपारिणामिकभाव का महत्त्व आ जाता है।

(6) आठों कर्मों का अभाव हो जाता है।

(7) गुणस्थान, मार्गणा और जीवसमास से दृष्टि हटकर, अपने भगवान का पता चल जाता है।

(8) श्रीसमयसार, गाथा 50 से 55 तक कहे 29 बोलों से दृष्टि हटकर, अपने भगवान का पता चल जाता है।

(9) मैं ज्ञायक और लोकालोक ज्ञेय है - ऐसा पता चल जाता है।

(10) शुद्धनय का पता चलते ही (अ) सिद्धभगवान क्या करते हैं और सिद्धदशा क्या है? (आ) अरहन्तभगवान क्या करते हैं और अरहन्तदशा क्या है? (इ) आचार्य, उपाध्याय और साधु क्या करते हैं और आचार्य, उपाध्याय और साधुपना क्या है? (ई) श्रावकपना, सम्यग्दृष्टिपना क्या है और श्रावक, सम्यग्दृष्टि क्या करते हैं? (उ) अनादि से मिथ्यादृष्टि क्या करते हैं और मिथ्यादृष्टि क्या है? - आदि सब बातों का पता चल जाता है।

(11) समस्त जिनशासन का पता चल जाता है।

(12) देव-गुरु-शास्त्र क्या है - इसका पता भी शुद्धनय के जानने पर ही होता है।

इसलिए हे जीव! तू एक बार अनादि-अनन्त अपने शुद्धनय का आश्रय ले तो सादि-सान्तदशा प्रगट होकर, सादि-अनन्त दशा को प्राप्ति हो जाती है। यह 10 वें कलश तथा गाथा 14 का रहस्य है।

5

श्रीसमयसार, गाथा 349 से 382 तक का रहस्य

ज्ञान और ज्ञेय की भिन्नता

प्रश्न 1- 'ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।' इस विषय में नाटक - समयसार, सर्वविशुद्ध द्वार-काव्य 53 में क्या बताया है?

उत्तर -

ज्ञेयाकार ग्यान की परिणति, पै वह ग्यान ज्ञेय नहिं होइ।
ज्ञेयरूप षट दरव भिन्न पद, ग्यानरूप आतमपद सोइ॥
जानै भेदभाउ सु विचचछन, गुन लच्छन सम्यक् द्रिग जोइ।
मूरख कहै ग्यानमय आकृति, प्रगट कलंक लखै नहि कोई॥

विशेष अर्थ - जीवपदार्थ, ज्ञायक है; ज्ञान, उसका गुण है। वह अपने ज्ञानगुण से जगत के छहों द्रव्यों को जानता है और अपने को भी जानता है; इसलिए जगत के सब जीव-अजीव पदार्थ और स्वयं आत्मा ज्ञेय और आत्मा स्व-पर को जानने से ज्ञायक है। भाव यह है आत्मा, ज्ञेय भी है, और ज्ञायक भी है। आत्मा के सिवाय सब पदार्थ, ज्ञेय हैं। जब कोई ज्ञेयपदार्थ, ज्ञान में प्रतिभासित होता है, तब ज्ञान की ज्ञेयाकार परिणति होती है। परन्तु ज्ञान, ज्ञान ही रहता है; ज्ञेय नहीं हो जाता और ज्ञेय, ज्ञेय ही रहता है, ज्ञान नहीं हो जाता; कोई किसी में नहीं मिलता है। ज्ञेय का स्वचतुष्टय जुदा रहता है और ज्ञायक का स्वचतुष्टय जुदा रहता है परन्तु विवेकशून्य वैशैषिक आदि ज्ञान में

ज्ञेय की आकृति देखकर, ज्ञान में अशुद्धता ठहराते हैं, यह मिथ्या मान्यता है।

प्रश्न 2- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ अनुसार ज्ञेय जाना जाता है - इस विषय में श्रीसमयसार, गाथा 373 से 382 तथा कलश 222 का क्या रहस्य है ?

उत्तर - जैसे, दीपक का स्वभाव, घट-पटादि को प्रकाशित करने का है; उसी प्रकार ज्ञान का स्वभाव, ज्ञेय को जानने का है, ऐसा वस्तुस्वभाव है।

(2) ज्ञेय को जाननेमात्र से ज्ञान में विकार नहीं होता। ज्ञेयों को जानकर, उन्हें अच्छ-बुरा मानकर, आत्मा, रागी-द्वेषी-विकारी होता है, जो कि अज्ञान है।

(3) इसलिए आचार्यदेव ने सोच किया है कि वस्तु का स्वभाव तो ऐसा है, फिर भी यह आत्मा, अज्ञानी होकर राग-द्वेषरूप क्यों परिणामित होता है ? अपनी स्वभाविक उदासीन अवस्थारूप क्यों नहीं रहता ?

(4) इस प्रकार आचार्यदेव ने जो सोच किया है, सो उचित ही है क्योंकि ज्ञानियों को जब तक शुभराग है, तब तक प्राणियों को अज्ञान से दु:खी देखकर करुणा उत्पन्न होती है और उससे सोच भी होता है।

प्रश्न 3- श्रीसमयसार, गाथा 356 से 365 तक का सार क्या है ?

उत्तर - (1) जिसे सम्यग्ज्ञान हो जाता है, वह जानता है कि आत्मा वास्तव में अपने ज्ञान की पर्याय को जानता है और परज्ञेय तो ज्ञान का निमित्तमात्र है। 'परज्ञेय को जाना' - ऐसा कथन व्यवहार है।

(2) यदि परमार्थदृष्टि से देखा जावे तो आत्मा, पर को जानता

है, सो मिथ्या है क्योंकि ऐसा होने पर आत्मा और ज्ञेय (ज्ञान और ज्ञेय) दोनों ही एक जावेंगे। 'जिसका जो होता है, वह वही होता है' यह कानून है; इसलिए वास्तव में यदि यह कहा जावे कि 'पुद्गल का ज्ञान है' तो ज्ञान, पुद्गलरूप-ज्ञेयरूप हो जावेगा; अत: यह समझना चाहिए कि निमित्तसम्बन्धी अपने ज्ञान की पर्याय को आत्मा जानता है।

(3) आत्मा, आत्मा को जानता है, यह भी स्व-स्वामी अंश है; ऐसे भेद से भी धर्म की प्राप्ति नहीं होगी क्योंकि लक्षण से लक्ष्य का ज्ञान कराना, यह भी भेद है। जब तक भेद में पड़ा रहेगा, तब तक सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति नहीं होगी; अत: 'ज्ञायक, ज्ञायक ही है'— यह निश्चय है।

प्रश्न 4- श्रीसमयसार, गाथा 356 से 365 की टीका में श्री अमृतचन्द्राचार्यजी ने छह बार क्या बात बतलायी है ?

उत्तर - 'एक द्रव्य का, अन्य द्रव्यरूप में संक्रमण होने का निषेध किया है।' इस बात को टीका में छह बार बताया है।

प्रश्न 5- श्रीसमयसार, कलश 214 का सार क्या है ?

उत्तर - कोई आशंका करता है कि जैन सिद्धान्त में भी ऐसा कहा है कि जीव, ज्ञानावरणादि पुद्गलकर्म को करता है-भोगता है। उसका समाधान किया है कि झूठे व्यवहार से कहने को है। द्रव्य के स्वरूप का विचार करने पर, परद्रव्य का कर्ता जीव नहीं है, इससे यह समझना चाहिए परद्रव्यरूप ज्ञेयपदार्थ अपने भाव से परिणमित होते हैं और ज्ञायक आत्मा अपने भावरूप परिणमन करता है। वे एक दूसरे का परस्पर कुछ नहीं कर सकते; इसलिए वह व्यवहार से ही कहा जाता है कि 'ज्ञायक, परद्रव्यों को जानता है;' निश्चय से ज्ञायक तो बस ज्ञायक ही है।

प्रश्न 6- इस विषय पर श्रीप्रवचनसार, गाथा 173-174 में क्या बताया है ?

उत्तर - उन दोनों गाथाओं में प्रश्न और उत्तर हैं।

प्रश्न- आत्मा अमूर्तिक होने पर भी, वह मूर्तिक कर्म-पुद्गलों के साथ कैसे बँधता है ?

उत्तर *- आत्मा, अमूर्तिक होने पर भी, वह मूर्तिक पदार्थों को कैसे जानता है ? जैसे, वह मूर्तिक पदार्थों को जानता है; उसी प्रकार मूर्तिक कर्मपुद्गलों के साथ बँधता है।*

प्रश्न- शास्त्रों में आता है कि 'वास्तव में अरूपी आत्मा का, रूपी पदार्थों के साथ कोई सम्बन्ध न होने पर भी, अरूपी आत्मा का रूपी के साथ सम्बन्ध होने का व्यवहार भी विरोध को प्राप्त नहीं होता है', इसे स्पष्ट करके समझाइए' ?

उत्तर *- (अ) जहाँ यह कहा जाता है कि 'आत्मा, मूर्तिक पदार्थों को जानता है' वहाँ परमार्थतः अमूर्तिक आत्मा का मूर्तिक पदार्थों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, उसका तो मात्र उस मूर्तिक पदार्थ के आकाररूप होनेवाले ज्ञान के साथ ही सम्बन्ध है और उस पदार्थ के ज्ञान के साथ के सम्बन्ध के कारण ही 'अमूर्तिक आत्मा, मूर्तिक पदार्थ को जानता है' - ऐसा अमूर्तिक-मूर्तिक का सम्बन्धरूप व्यवहार सिद्ध होता है; उसी प्रकार जहाँ यह कहा जाता है कि 'अमूक आत्मा का मूर्तिक कर्मपुद्गलों के साथ बन्ध है' वहाँ परमार्थतः अमूर्तिक आत्मा का, मूर्तिक कर्मपुद्गलों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा का तो कर्मपुद्गल जिसमें निमित्त हैं, ऐसे राग-द्वेषादिभावों के साथ ही सम्बन्ध (बन्ध) है और उन कर्म-निमित्तक राग-द्वेषादिभावों के साथ सम्बन्ध होने से ही 'इस आत्मा का मूर्तिक कर्म-पुद्गलों के साथ बन्ध है' - ऐसा अमूर्तिक-मूर्तिक का बन्धरूप व्यवहार सिद्ध होता है।*

(आ) मनुष्य को स्त्री-पुत्र-धनादिक के साथ वास्तव में कोई सम्बन्ध नहीं है, वे उस मनुष्य से सर्वथा भिन्न हैं, तथापि स्त्री-पुत्र -धनादिक के प्रति राग करनेवाले मनुष्य को राग का बन्धन होने से और उस राग में स्त्री-पुत्र-धनादिक के निमित्त होने से, व्यवहार से यह अवश्य कहा जाता है कि 'इस मनुष्य को स्त्री-पुत्र-धनादिक का बन्धन है; उसी प्रकार आत्मा का कर्म-पुद्गलों के साथ वास्तव में कोई सम्बन्ध नहीं है, वे आत्मा से सर्वथा भिन्न हैं, तथापि राग -द्वेषादिभाव करनेवाले आत्मा को, राग-द्वेषादिभावों का बन्धन होने से, और उन भावों में कर्मपुद्गल निमित्त होने से, व्यवहार से यह अवश्य कहा जा सकता है कि 'इस आत्मा को कर्मपुद्गलों का बन्धन है।' *[श्रीप्रवचनसार, गाथा 174 के भावार्थ से]*

प्रश्न 7- इस निश्चय-व्यवहार के बताने से क्या लाभ रहा ?

उत्तर - (1) आत्मा का ज्ञानपर्याय के साथ सम्बन्ध है; ज्ञेय पदार्थों के साथ सम्बन्ध नहीं है-यह बात यथार्थ है।

(2) अज्ञानी आत्मा का भी राग-द्वेषादिभावों से सम्बन्ध है; द्रव्यकर्म-नोकर्म के साथ सर्वथा सम्बन्ध नहीं है-यह बात यथार्थ है।

(3) सुख-दु:ख का सम्बन्ध, सुख-दु:ख पर्याय से है; पदार्थों के साथ सम्बन्ध नहीं है-यह बात यथार्थ है।

(4) सम्यग्दर्शन का सम्बन्ध, आत्मा के श्रद्धागुण से है; देव-गुरु-शास्त्र से, दर्शनमोहनीय उपशमादि से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है-यह बात यथार्थ है।

(5) केवलज्ञान का सम्बन्ध, ज्ञानगुण से है; बज्रवृषभनाराच-संहनन, चौथा काल, ज्ञानावरणीय के अभाव से सर्वथा सम्बन्ध नहीं है-यह बात यथार्थ है।

तात्पर्य है कि 'निश्चय से पर के साथ आत्मा का कारकता का सम्बन्ध नहीं है कि जिससे शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति के लिए बाह्य सामग्री ढूँढने की व्यग्रता से जीव व्यर्थ ही परतन्त्र-दु:खी होकर आकुलित होते हैं।' *[श्रीप्रवचनसार, गाथा 16 की टीका से]*

प्रश्न 8- शास्त्रों में आता है कि जीव, ज्ञानावरणीय आदि कर्मरूप पुद्गलपिण्ड का कर्ता है - सो वहाँ क्या समझना चाहिए ?

उत्तर - कहने को तो है; वस्तुस्वरूप विचारने पर कर्ता नहीं है क्योंकि व्यवहारदृष्टि से ही कहने के लिए सत्य है, वस्तुस्वरूप का विचार करने पर झूठा है।

प्रश्न 9- शास्त्रों में व्यवहारकथन किस प्रकार से होते हैं, उनके लिए जिनवाणी में क्या दृष्टान्त दिए हैं ?

उत्तर - (1) जैसे, हाथी के दाँत बाहर देखने के अलग हैं तथा भीतर चबाने-खाने के अलग हैं; वैसे ही जैन ऋषि, मुनि और आचार्यों के रचे हुए सिद्धान्तशास्त्र, सूत्र और पुराणादि हैं, वे तो हाथी के बाहर के दाँतो समान समझना तथा भीतर का यथार्थ आशय जिसका जो वही जानता है। यह दृष्टान्त ऐसा सूचित करता है कि शास्त्रों में अनेक उपचारकथन है, उनका आशय पकड़कर परमार्थ अर्थ समझना। यदि शब्दों को पकड़ा जावेगा तो शास्त्र का आशय समझ में नहीं आवेगा।

(2) एक साहूकार ने अपने पुत्र को परदेश भेजा। कितने ही दिन क बाद बेटे की बहू बोली, 'मैं तो विधवा हो गयी।' तब सेठ ने अपने पुत्र के नाम पत्र भेजा - उसमें ऐसा लिखा कि 'बेटा! तेरी बहू तो विधवा हो गयी है।' तब वह सेठ का पुत्र उस पत्र को पढ़कर शोक करने लगा। किसी ने पूछा — 'तुम शोक क्यों करते हो ?'

उसने कहा 'हमारी स्त्री विधवा हो गयी है।' यह सुनकर वह बोला – 'तुम तो प्रत्यक्ष जीवित / मौजूद हो, फिर तुम्हारी स्त्री विधवा कैसे हो गयी?' तब वह सेठ का पुत्र बोला – 'तुमने कहा, वह तो सच है परन्तु मेरे दादाजी का लिखा हुआ पत्र आया है, उसे झूठा कैसे मानूँ?'

यह दृष्टान्त ऐसा सूचित करता है कि अज्ञानी, शास्त्र का आशय जानते नहीं और आशय समझे बिना ही कहते हैं कि 'शास्त्र में कर्म के उदय से / निमित्त से लाभ-हानि होती हैं – ऐसा लिखा है, वह क्या झूठ है?' ज्ञानी कहते हैं 'भाई! शास्त्राकार का आशय तो यह है कि आत्मा स्वयं मौजूद है और उसकी परिणति, कर्म के उदय से या निमित्त से होती है – ऐसा मानना तो 'मेरी मौजूदगी में मेरी स्त्री विधवा हो गयी' — ऐसा कहकर जोर-जोर से रोने जैसा है। शास्त्र के वे कथन तो उपचारमात्र कर्म की अवस्था का तथा निमित्त का ज्ञान कराने के लिए है।

(3) व्यवहार अभूतार्थ है, सत्य स्वरूप का निरूपण नहीं करता; किसी अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है तथा शुद्धनय जो निश्चय है, वह भूतार्थ है, जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा निरूपण करता है; इसलिए निश्चयनय से जो निरूपण किया हो, उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अङ्गीकार करना और व्यवहारनय से जो निरूपण किया हो, उसे असत्यार्थ मानकर, उसका श्रद्धान छोड़ना – ऐसा शास्त्रों में बताया है।

प्रश्न 10- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है – इसे दृष्टान्त से समझाइए?

उत्तर – एक शिकारी था। उसकी तीन पत्नियाँ थी। एक ने कहा – 'मुझे प्यास लगी है, पानी लाओ'। दूसरी ने कहा 'बिछाने के लिए मृगचर्म लाओ', तीसरी ने कहा 'मुझे गायन सुनाओ।' शिकारी

ने तीनों को एक ही उत्तर दिया। 'सरो नात्थी' यह प्राकृत का शब्द है; इस शब्द से तीनों का मतलब हल हो गया। पहली ने समझा 'सर: न अस्ति' तालाब नहीं है, पानी कहाँ से लाऊँ? दूसरी ने समझा 'शरो न अस्ति' बाण नहीं है, मृगचर्म कहाँ से लाऊँ? तीसरी ने समझा 'स्वर न अस्ति' मेरा स्वर ठीक नहीं है, गायन कैसे सुनाऊँ? विचारिए! क्या शब्द से ज्ञान हुआ? नहीं, परन्तु तीनों को अपने-अपने ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञान हुआ। यदि शब्द से ज्ञान होता तो तीनों को एक-सा ही ज्ञान होना चाहिए था, सो हुआ नहीं। इससे सिद्ध हुआ कि शब्द से ज्ञान नहीं; ज्ञान, ज्ञान से आता है; इसलिए ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता है परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 11- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है - इसके लिए दूसरा दृष्टान्त देकर समझाइये?

उत्तर - तीर्थङ्कर भगवान को ओं गर्जनारूप दिव्यध्वनि खिरती है; समवसरण में बारह प्रकार की सभा होती हैं। क्या सब जीवों को एक-सा ज्ञान होता है? नहीं; वास्तव में जिस जीव को जितना उघाड़ होता है, उतना-उतना भगवान की दिव्यध्वनि पर आरोप आता है; इसलिए यह सिद्ध हुआ कि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 12- भगवान महावीर की वाणी सुनकर गौतम गणधर ने अन्तर्मुहूर्त में बारह अङ्ग की रचना की और आप कहते हैं कि ज्ञेय से ज्ञान नहीं होता है?

उत्तर - गौतम गणधर को मति, श्रुति, अवधि और मन:पर्यय ज्ञान था, वह दिव्यध्वनि से नहीं हुआ, क्योंकि यदि दिव्यध्वनि से

ज्ञान होता तो वहाँ सब जीवों को होना चाहिए था, सो हुआ नहीं; इसलिए ज्ञेय से ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 13- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञेय जाना जाता है, इसका तीसरा उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर - हमारे सामने आम रखा है, उसमें स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण चारों एक साथ हैं। जिस समय हम रङ्ग का ज्ञान करते हैं, उस स्पर्श -रसादि का ज्ञान नहीं है। जिस समय रस का ज्ञान करते हैं, उस समय स्पर्श-गन्धादि का ज्ञान नहीं है। यदि आम से ज्ञान होता तो स्पर्शादि चारों का ज्ञान एक साथ होना चाहिए, सो होता नहीं। इससे सिद्ध हुआ, ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 14- क्या पाँच इन्द्रियाँ एवं मन से भी ज्ञान नहीं होता है ?

उत्तर - बिल्कुल नहीं, क्योंकि यह सब पुद्गल स्कन्धों की पर्यायें हैं, इनमें ज्ञान नहीं है। जिसमें स्वयं ज्ञान नहीं, वह ज्ञान का कारण कैसे बन सकते हैं ? कभी भी नहीं। इससे सिद्ध हुआ - संयोग के अनुसार ज्ञान नहीं, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार संयोग जाना जाता है।

प्रश्न 15- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है - चौथा उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर - सामने अमरूद का बाग है। बाग में पानी दिया। देखो पेड़ के ज्ञान का उघाड़, मात्र स्पर्श का ही है। पानी में स्पर्श-रस-

गन्ध-वर्णादि सब हैं, लेकिन पेड़ को रस-गन्ध-वर्णादि का ज्ञान नहीं है। इससे सिद्ध होता है, ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 16- सामने लोकालोक है, हमें ज्ञान क्यों नहीं होता और केवली को क्यों होता है ?

उत्तर - केवली को अपने ज्ञान के उघाड़ के कारण ही ज्ञान होता है; लोकालोक के कारण नहीं। यदि लोकालोक के कारण ज्ञान होता तो हमें भी उसका ज्ञान होना चाहिए; अत: सिद्ध हुआ कि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 17- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञेय जाना जाता है-पाँचवाँ उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर - सामने आदमी सो रहा है। उसे देखकर दूसरा आदमी कहता है कि देखो! इसके सिर पर कितने मच्छर उड़ रहे हैं। वे उसके लम्बे-लम्बे बाल हैं और ज्ञान किया मच्छरों का। यदि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता है तो बालों का ज्ञान होना चाहिए था, मच्छरों का नहीं; अत: सिद्ध हुआ कि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 18- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है—छठा उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर - रात्रि के समय में अन्धेरे में जा रहे हैं, लकड़ी के ठूँठ को भूत मान लिया और डर के मारे दु:खी हो रहे हैं। यदि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता तो लकड़ी के ठूँठ को भूत न मानता। इससे सिद्ध

हुआ ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 19- ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञेय जाना जाता है - कोई और उदाहरण देकर समझाइये ?

उत्तर - कॉलिज में प्रोफेसर बहुत से विद्यार्थियों को एक साथ एक-सा पाठ पढ़ाता है। क्या सब विद्यार्थियों को एक-सा ज्ञान होता है ? कभी भी नहीं। अत: यह सिद्ध हुआ कि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्रश्न 20- इस सिद्धान्त में क्या रहस्य है ?

उत्तर - जैसे, आत्मा में अनन्त गुण हैं। उस प्रत्येक गुण का उसकी पर्याय से तो सम्बन्ध कहो, परन्तु पर से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है क्योंकि विश्व में जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म, आकाश एक-एक और लोकप्रमाण असंख्यात काल हैं। प्रत्येक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं। प्रत्येक गुण अनादि-अनन्त कायम रहता हुआ, अपनी-अपनी प्रयोजनभूत क्रिया करता हुआ, स्वयं बदलता रहता है - ऐसा वस्तुस्वभाव है। यह बात जिसके ज्ञान में आ जावे तो अनन्त संसार का अभाव होकर मोक्षलक्ष्मी का नाथ बन जावे। ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है - यह उसका रहस्य है।

प्रश्न 21- ज्ञेय-ज्ञायक के सम्बन्ध में श्रीसमयसार, कलश 216 का भाव क्या है ?

उत्तर - वास्तव में किसी द्रव्य का स्वभाव, किसी अन्य द्रव्यरूप नहीं होता। जैसे-चाँदनी, पृथ्वी को उज्ज्वल करती है, किन्तु पृथ्वी

चाँदनी की किञ्चित्मात्र भी नहीं होती; उसी प्रकार ज्ञान, ज्ञेय को जानता है, किन्तु ज्ञेय, ज्ञान का किञ्चित्मात्र भी नहीं होता। आत्मा का ज्ञानस्वभाव है; इसलिए ज्ञान की स्वच्छता में ज्ञेय स्वयमेव झलकता है, किन्तु ज्ञान में ज्ञेयों का प्रवेश नहीं होता है।

प्रश्न 22- ज्ञेय-ज्ञायक के सम्बन्ध में श्रीसमयसार, कलश 215 में क्या बताया है ?

उत्तर - जिसने शुद्धद्रव्य के भाव में बुद्धि को लगाया है और जो तत्त्व का अनुभव करता है, उस पुरुष को एक द्रव्य के भीतर कोई भी अन्य द्रव्य रहता हुआ कदापि भासित नहीं होता। ज्ञान, ज्ञेय को जानता है, सो तो यह ज्ञान से शुद्धस्वभाव का उदय है। जबकि ऐसा है, तब फिर लोग, ज्ञान को अन्य ज्ञेय के साथ स्पर्श नहीं होने की मान्यता से आकुलबुद्धिवाले होते हुए शुद्धस्वरूप से क्यों च्युत होते हैं ? अर्थात्, आत्मा ने द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म को छुआ ही नहीं, तब मैं पर का कर्ता-भोक्ता हूँ-यह बुद्धि कहाँ से आयी ? अज्ञान से आयी है। इसलिए हे भव्य! तेरा तेरे से बाहर कुछ नहीं है। जरा अपने अन्दर देख, अपूर्व शान्ति का वेदन होगा। तात्पर्य यह है कि जीव समस्त ज्ञेय को जानता है, तथापि समस्त ज्ञेय से भिन्न है - ऐसा चौथे गुणस्थान से लेकर सिद्धदशा तक सब जानते हैं।

प्रश्न 23- ज्ञेय-ज्ञायकसम्बन्ध को समझने के लिए किस शास्त्र की, कौन-कौनसी गाथाएँ-टीकाएँ देखना चाहिए ?

उत्तर - (1) श्रीसमयसार, गाथा 356 से 365 तक तथा गाथा 373 से 382 तक टीकासहित और कलश 214 से 222 तक देखना चाहिए।

(2) श्रीप्रवचनसार, गाथा 173 से 174 तक टीकासहित देखना चाहिए।

प्रश्न 24- ज्ञेय-ज्ञायक के दोहे सुनाओ ?

उत्तर -

सकल वस्तु जग में असहाई। वस्तु वस्तु सों मिलै न काई॥
जीव वस्तु जानै जग जेती। सोऊ भिन्न रहे सब सेती॥

सुद्ध दरब अनुभव करे, शुद्ध दृष्टि घट माँहि।
तातैं समकितवंत नर, सहज उच्छेदक नाँहि॥

तथा

सकल ज्ञेय-ज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित, अरि रज रहस विहीन॥

— — — —

जिनवाणी-श्रवण की पात्रता

चौरासी लाख योनियों का भ्रमण छुड़ानेवाली, त्रिलोकीनाथ की वाणी सुनने आये, उसे देव-शास्त्र-गुरु की कितनी विनय चाहिए? स्वर्ग से आकर इन्द्रादि देव, भगवान की वाणी कितनी विनय, भक्ति और नम्रता से सुनते हैं! जिनवाणी का श्रवण करते समय शास्त्र की विनय और बहुमान करना चाहिए, शास्त्र को नीचे नहीं रखा जाता, उस पर कुहनी नहीं टेकी जाती, पैर पर पैर चढ़ाकर शास्त्र श्रवण के लिये नहीं बैठा जाता, रूमाल या पन्ने आदि से हवा नहीं की जाती, जम्हाइयाँ नहीं ली जाती, प्रमाद से बैठा नहीं जाता आदि कितनी विनय-बहुमान-भक्ति हो, तब तो जिनवाणी-श्रवण की पात्रता है। व्यवहार-पात्रता जैसी है, वैसी जानना चाहिए।

—पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

6

श्रीसमयसार, गाथा 31 तक का रहस्य

तीर्थङ्करदेव की निश्चयस्तुति

प्रश्न 1- जितेन्द्रिय किसे कहते हैं ?

उत्तर - श्रीसमयसार, गाथा 31 में कहा है कि -

कर इन्द्रियजय ज्ञान स्वभाव रु, अधिक जाने आत्म को।
निश्चय विषे स्थित साधुजन, भाषै जितेन्द्रिय उन्हीं को॥३१॥

अर्थात्, जो इन्द्रियों को जीतकर, ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक (भिन्न) आत्मा को जानते हैं, (अनुभवते हैं), उन्हें जो निश्चयनय में स्थित साधु हैं, वे वास्तव में जितेन्द्रिय कहते हैं।

प्रश्न 2- तीर्थङ्कर की निश्चयस्तुति क्या है ?

उत्तर - जिससे तिरा जाता है, ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, यह तीर्थ अपने में ही हैं। 'कर' अर्थात् प्रगट करे। सम्यग्दर्शन -ज्ञान-चारित्र अपनी आत्मा में प्रगट होवे, वह तीर्थङ्कर की निश्चय स्तुति है।

प्रश्न 3- निश्चयस्तुति की शुरुआत कब से होती है ?

उत्तर - चौथे गुणस्थान से निश्चयस्तुति की शुरुआत होती है।

प्रश्न 4- निश्चयस्तुति कितने प्रकार की है और वह किस जीव को होती है तथा उसका फल क्या है ?

उत्तर - तीन प्रकार की है। (1) चौथे, पाँचवें, छठवें गुणस्थान में जघन्य निश्चयस्तुति होती है।

(2) सातवें गुणस्थान से ग्यारहवें गुणस्थान तक मध्यम निश्चयस्तुति होती है।

(3) सातवें से बारहवें गुणस्थान तक उत्तम निश्चयस्तुति होती है और तेरहवाँ-चौदहवाँ गुणस्थान तथा सिद्धदशा, निश्चयस्तुति का फल है।

प्रश्न 5- हम मन्दिर में स्तुति बोलते हैं; अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजा करते हैं - क्या यह हमारी निश्चयस्तुति नहीं है ?

उत्तर - अपनी आत्मा का अनुभव किए बिना, चाहे वह द्रव्यलिङ्गी मुनि हो, किसी को भी निश्चयस्तुति नहीं हो सकती है क्योंकि स्तुति का उच्चारण, भाषावर्गणा का कार्य है; हाथ जोड़ना, सामग्री चढ़ाना आदि सब जड़ का कार्य है, इसमें स्तुति की बात नहीं है परन्तु जो जीव यह मानता है कि मैं पाठ बोलता हूँ, सामग्री चढ़ाता हूँ, यह पर में अपनेपने की बुद्धि, मिथ्यात्वभाव हैं। उस समय जितनी मन्दकषाय है, वह पापानुबन्धी पुण्य है। जैसे - बहु का गाना गाने से बताशा मिलता है, बहु नहीं मिलती है; उसी प्रकार पुण्य से संयोग मिलता है, मोक्षमार्ग और मोक्ष नहीं मिलता है। अज्ञानी, पुण्य के संयोग में पागल बना रहता है, वह परम्परा निगोद का कारण है। वास्तव में अज्ञानी की स्तुति-पूजा आदि सब राग की स्तुति-पूजा है, मोहभजन है, जो संसार के लिए कार्यकारी है।

प्रश्न 6- अज्ञानी के स्तुति-पूजा आदि मोहभजन है, संसार के लिए कार्यकारी है; मोक्ष और मोक्षमार्ग के लिए कार्यकारी नहीं है - ऐसा कहाँ लिखा है ?

उत्तर -

वो धर्म को श्रद्धे प्रतीत, रुचि स्पर्शन करे।
वो भोग हेतु धर्म को, नहिं कर्म के क्षय के हेतु को ॥275॥

टीका – अभव्यजीव, नित्य कर्मफलचेतनारूप वस्तु की श्रद्धा करता है किन्तु नित्य ज्ञानचेतनामात्र वस्तु की श्रद्धा नहीं करता, क्योंकि वह सदा (स्व-पर के) भेदविज्ञान के अयोग्य है। इसलिए वह कर्मों से छूटने के निमित्तरूप, ज्ञानमात्र भूतार्थ (सत्यार्थ) धर्म की श्रद्धा नहीं करता, (किन्तु) भोग के निमित्तरूप, शुभकर्ममात्र अभूतार्थधर्म की ही श्रद्धा करता है; इसलिए वह अभूतार्थधर्म की ही श्रद्धा, प्रतीत, रुचि और स्पर्शन से ऊपर के ग्रैवेयक तक के भोगमात्र को प्राप्त होता है किन्तु कभी भी कर्मों से मुक्त नहीं होता; इसलिए उसे भूतार्थधर्म के श्रद्धान का अभाव होने से (यथार्थ) श्रद्धान भी नहीं है। ऐसा चारों अनुयोगों में बताया है। *[श्रीसमयसार, गाथा 275]*

प्रश्न 7- निश्चयस्तुति कैसे प्रगट होवे ?

उत्तर – जिनेन्द्रभगवान के कहे अनुसार तत्त्व का अभ्यास करके सम्यग्दर्शन प्रगट करे, तब निश्चयस्तुति प्रगट होती है।

प्रश्न 8- वर्तमान में जितने दिगम्बरधर्मी आत्मा के अनुभव बिना स्तुति, पूजा, सामायिक करते हैं और उसे करते-करते मोक्षमार्ग प्रगट हो जावेगा – ऐसा मानते हैं – क्या वे सब पागल ही हैं ?

उत्तर – जैसे – कोई दिल्ली जाने के लिए कलकत्ता की सड़क पर चले तो कभी भी दिल्ली नहीं पहुँच सकता है; उसी प्रकार अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना स्तुति, पूजा, सामायिक, महाव्रतादि करके मर भी जावे तो भी उससे मोक्षमार्ग कभी प्रगट नहीं होगा, परन्तु मोक्षमार्ग के बदले चारों गतियों की हवा खाता हुआ, निगोद पहुँच जावेगा। जैसे – एक के अङ्क बिना, बिन्दियों की कीमत नहीं होती; उसी प्रकार आत्मा के अनुभव हुए बिना, दिगम्बर धर्मियों के पूजा, स्तुति आदि सब अरण्यरुदन है; इसलिए आत्मा को समझे

बिना व्रतादि करनेवाले सब पागल ही हैं क्योंकि कुन्दकुन्दभगवान ने श्रीसमयसार, गाथा 153 में कहा है — व्रत और नियमों को धारणा करते हुए भी, तथा शील, तप करते हुए जो परमार्थ से बाह्य हैं, अर्थात् आत्म-अनुभव-ज्ञान से रहित हैं, वे निर्वाण को प्राप्त नहीं होते हैं।

प्रश्न 9- श्रीकुन्दकुन्दभगवान ने श्रीसमयसार, गाथा 31 में निश्चयस्तुति किसे कहा है ?

उत्तर - मूल गाथा में, इन्द्रियों को जीतकर ज्ञानस्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक (जुदा) आत्मा को जानते हैं, (अनुभवते हैं) उन्हें जो निश्चयनय में स्थित साधु हैं, वे वास्तव में जितेन्द्रिय (निश्चयस्तुति) कहते हैं।

प्रश्न 10- अपनी आत्मा को अन्य द्रव्यों से अधिक (जुदा) जानता है, इस पर से कितने बोल निकलते हैं ?

उत्तर - चार बोल निकलते हैं - (1) जब अपनी आत्मा को द्रव्य कहा, तब अन्य सब, अद्रव्य हैं।

(2) जब अपनी आत्मा को जीव कहा, तब अन्य सब, अजीव हैं।

(3) जब अपनी आत्मा को अतीन्द्रिय कहा, तब अन्य सब, इन्द्रिय हैं।

(4) जब अपनी आत्मा को ज्ञायक कहा, तब अन्य सब ज्ञेय हैं, अर्थात् अपनी आत्मा को जब द्रव्य, जीव, अतीन्द्रिय और ज्ञायक कहा, तब उसकी अपेक्षा अन्य सब द्रव्य-अद्रव्य, अजीव, इन्द्रिय और ज्ञेय हैं।

प्रश्न 11- इन्द्रिय शब्द से भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने कितने बोल निकाले हैं ?

उत्तर – तीन बोल निकाले हैं – (1) द्रव्येन्द्रियाँ, (2) भावेन्द्रियाँ (खण्डखण्ड ज्ञान), (3) इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थ (शास्त्र पढ़ना, दिव्यध्वनि सुनना, पूजा–पाठ आदि।)

प्रश्न 12– भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने द्रव्येन्द्रियों का जीतना किसे कहा है ?

उत्तर – (1) अन्तरङ्ग में; (2) प्रगट अति सूक्ष्म; (3) चैतन्य–स्वभावी निज भगवान आत्मा को; (4) बहिरङ्ग में; (5) प्रगट अति स्थूल; (6) जड़स्वभावी जड़इन्द्रियों से; (7) निर्मल; (8) भेदाभ्यास की; (9) प्रवीणता के द्वारा सर्वथा अलग किया, उसे द्रव्येन्द्रियों को जीतना कहा है। इस प्रकार नौ बोल आए हैं। जड़–इन्द्रियों से ज्ञायक को भिन्नरूप से अनुभव करना, द्रव्येन्द्रियों का जीतना है।

प्रश्न 13– अज्ञानी, द्रव्येन्द्रियों का जीतना किसे कहता है ?

उत्तर – आँख फोड़ लो, कान में डट्ठे ठोक लो, मुँह को बन्द कर लो, आदि को द्रव्येन्द्रियों को जीतना कहता है। यह सब जड़ की क्रिया है, इसे अपनी मानना, अनन्त संसार का कारण है।

प्रश्न 14– भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने 'भावेन्द्रियों' का जीतना किसे कहा है ?

उत्तर – कर्णभावेन्द्रिय, शब्द को जानती है; उसी प्रकार एक –एक इन्द्रिय अपने–अपने विषय द्वारा ज्ञान को खण्ड–खण्डरूप जानती है, वह भावेन्द्रिय = खण्ड–खण्ड ज्ञान, क्षायोपशमिकरूप है। भावेन्द्रियों के सामने अपना अखण्ड ज्ञायकस्वभाव है। पात्र जीव ऐसा जाने कि क्षायौपशमिक खण्ड–खण्डज्ञान जितना मेरा स्वभाव नहीं है परन्तु अखण्ड ज्ञान, मेरा स्वभाव है – ऐसा अनुभव–ज्ञान –आचरण करे तो यह भावेन्द्रियों को जीतना कहा है। अखण्ड

ज्ञायकस्वभाव द्वारा भावेन्द्रियों को सर्वथा अपने से भिन्न अनुभव करना, वह भावेन्द्रिय का जीतना है।

प्रश्न 15- राग-द्वेषवाले में और भगवान में क्या अन्तर है ?

उत्तर - (1) राग-द्वेषवाले की वाणी, खण्ड-खण्डरूप होती है; भगवान की वाणी, अखण्ड होती है।

(2) राग-द्वेषवाला क्रम से जानता है; भगवान युगपत् परिपूर्ण जानते हैं।

(3) राग-द्वेषवाला मन द्वारा विचारता है; भगवान का ज्ञान परिपूर्ण होने से उनको विचार नहीं करना पड़ता है।

(4) राग-द्वेषवाले का पैर आगे-पीछे पड़ता है; भगवान के डग नहीं भरते हैं।

(5) राग-द्वेषवाले को अल्प क्षायोपशमिकज्ञान है; भगवान के पूर्ण क्षायिकज्ञान है।

(6) राग-द्वेषवाले को क्षायोपशमिकज्ञान में पूर्ण ज्ञेय नहीं आता है; भगवान को सम्पूर्ण लोकालोक ज्ञेय हैं।

(7) राग-द्वेषवाले की आँखें निमेष (पलक) मारती है; भगवान की आँखें निमेष (पलक) नहीं मारती हैं।

प्रश्न 16- 'भावेन्द्रियों का जीतना' कौन से गुणस्थान से शुरु हो जाता है ?

उत्तर - चौथे गुणस्थान में अपना ज्ञायक अखण्डस्वभाव अनुभव में आ जाता है, तब से खण्ड-खण्ड क्षायोपशमिकज्ञान समाप्त हो जाता है क्योंकि अखण्डस्वभाव पर दृष्टि आने से उसके ज्ञान को भी अखण्ड कहा जाता है।

प्रश्न 17- भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने 'इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों का जीतना' किसे कहा है' ?

उत्तर – भगवान की वाणी, शास्त्रादि भावेन्द्रिय द्वारा ग्रहण करने में आवें, वे इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थ हैं, वे सङ्गरूप हैं और भगवान आत्मा असङ्गस्वभावी है। पात्र जीव ऐसा जाने कि इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थ तो सङ्गरूप हैं, परन्तु मेरा असङ्गस्वभाव एकरूप है – ऐसा जानकर, असङ्गस्वभाव का आश्रय-ज्ञान-आचरण वर्ते, उसे इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों का जीतना कहा है।

प्रश्न 18- इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों का ग्राह्य-ग्राहक के ज्ञान का असङ्गपना कब कहा जा सकता है?

उत्तर – (1) जो कोई इन्द्रियों के विषय हैं तथा रागादि हैं, वे सब जानने योग्य पर ज्ञेय हैं। वे (परज्ञेय) ग्राह्य हैं और इन सबको जाननेवाली ज्ञानपर्याय, वह ग्राहक है। वास्तव में परज्ञेय और ज्ञान की पर्याय सर्वथा भिन्न हैं परन्तु जहाँ तक ग्राहक – ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, परज्ञेयों को ग्राह्य बनाती है, वहाँ तक अज्ञानी को दोनों का (परज्ञेय और ज्ञानपर्याय का) एकपना अनुभव में आता है।

(2) जब ग्राहक ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, परज्ञेयों की तरफ से हटकर स्वज्ञेय ऐसा जो निज चैतन्यतत्त्व, उसे ग्राह्य बनाती है, तब अपनी चैतन्यशक्ति का असङ्गपना अनुभव में आता है। यह ही इन्द्रियों के विषयों का जीतना है; इसलिए ज्ञान की पर्याय जो ग्राहक है, वह (ज्ञान की पर्याय, ग्राहक) अपने पारिणामिकभाव को ग्राह्य बनाती हैं, तब सच्चा ग्राहक-ग्राह्यपने का असङ्गपना दृष्टि में आता है।

प्रश्न 19- ज्ञान का स्वभाव कैसा है?

उत्तर – ज्ञान, समस्त पदार्थों को जानने पर भी उसरूप नहीं होता है और उन सब पदार्थों से भिन्न ही रहता है। समस्त विश्व को जानने पर भी, उनसे अलिप्त रहता हुआ, विश्व के ऊपर तैरते हुआ रहना, यह ज्ञान का स्वभाव है।

प्रश्न 20- द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थ, इन तीनों में से प्रथम किसे जीतना चाहिए ?

उत्तर - अन्तरङ्ग में प्रगट अति सूक्ष्म चैतन्यस्वभावी, अखण्ड, असङ्ग आत्मा का आश्रय लेते ही तीनों एक साथ जीते जाते हैं, कथन करने में क्रम पड़ता है। अरे भाई! एक बार अपने स्वभाव का आश्रय ले तो सब झगड़ा समाप्त जावेगा और अपने भगवान का पता चल जावेगा। अपने आपका अनुभव हुए बिना, तीन काल-तीन लोक में 'इनको जीतने' का उपचार भी नहीं आ सकता है।

प्रश्न 21- स्तुति कितने प्रकार की है ?

उत्तर - स्तुति तो एक ही प्रकार की है परन्तु उसका कथन पाँच प्रकार से है। जिस जीव ने अपने शक्तिरूप चैतन्यस्वभाव जो 'शक्तिरूप स्तुति' हैं, उसका आश्रय लिया तो एकदेश भावस्तुति जो संवर -निर्जरारूप है, उसकी प्राप्ति होती है। पूर्णभाव स्तुति की प्राप्ति न होने से, भूमिका के अनुसार जो अस्थिरता का राग है, वह द्रव्यस्तुति है और द्रव्यस्तुति का जड़स्तुति के साथ निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है।

प्रश्न 22- तीर्थङ्कर की निश्चयस्तुति में (1) सात तत्त्व / नौ पदार्थ; (2) चार काल; (3) औपशमिकादिक पाँच भाव; (4) देव-गुरु-धर्म; (5) हेय-उपादेय-ज्ञेय; (6) सुखदायक-दुःखदायक; (7) संयोगादि पाँच बोल लगाकर बताओ, जिसस स्पष्टरूप से समझ में आवे ?

उत्तर - शक्तिरूपस्तुति - (1) जीव तत्त्व / पदार्थ; (2) अनादि -अनन्त काल; (3) परमपारिणामिकभाव; (4) धर्मस्वरूप शुद्धात्मा; (5) आश्रययोग्य परम उपादेय; (6) परम सुखदायक, एवं (7) स्वभाव त्रिकाली है।

एकदेशभाव स्तुति - (1) संवर-निर्जरातत्त्व / पदार्थ;

(2) सादि-सान्त काल; (3) औपशमिक, धर्म का क्षयोपशमिक एवं सम्यग्दर्शन की अपेक्षा क्षायिकभाव; (4) गुरु; (5) प्रगट करनेयोग्य एकदेश उपादेय; (6) सुखदायक, एवं (7) स्वभाव का साधन है।

द्रव्यस्तुति - (1) आस्रवबन्ध, पुण्य-पापतत्त्व / पदार्थ; (2) अनादि-सान्त काल; (3) औदयिकभाव; (4) देव-गुरु-धर्म में से कोई नहीं; (5) हेय; (6) दुःखदायक, एवं (7) संयोगीभाव है।

जड़स्तुति - (1) अजीवतत्त्व / पदार्थ; (2) अनादि-अनन्त काल; (3) औपशमिक आदि पाँच भावों में से कोई भाव नहीं; (4) देव-गुरु-धर्म में से कोई नहीं; (5) ज्ञेय; (6) न सुखदायक, न दुःखदायक, और (7) संयोग है।

पूर्ण भावस्तुति - (1) मोक्षतत्त्व / पदार्थ; (2) सादि-सान्त काल; (3) क्षायिकभाव; (4) देव; (5) पूर्ण प्रगट करनेयोग्य उपादेय; (6) पूर्ण सुखदायक, और (7) सिद्धत्व है।

प्रश्न 23- क्या अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना, स्तुति हो सकती है ?

उत्तर - कभी नहीं हो सकती हैं। जैसे - जिसे हीरे-जवाहरात की पहिचान हो और लेना देना जानता हो, वही हीरे-जवाहरात की दुकान पर बैठ सकता है; उसी प्रकार जिनको अपनी आत्मा का अनुभव-ज्ञान-आचरण वर्तता हो, वही भगवान की स्तुति कर सकता है; अज्ञानी मिथ्यादृष्टि, स्तुति नहीं कर सकता है।

प्रश्न 24- जो जीव, सांसारिक प्रयोजन के लिए भक्ति-पूजादि करते हैं - क्या वह कुछ कार्यकारी है ?

उत्तर - (1) भक्ति-पूजादि, संसारभ्रमण के लिए कार्यकारी

है। आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है कि 'जो जीव, कपटकरि अजीविका के अर्थि वा बड़ाई के अर्थि वा किछु विषय-कषाय सम्बन्धी प्रयोजन विचारि जैनी होते हैं, वे तो पापी ही हैं। अति तीव्र कषाय भये ऐसी बुद्धि आवै है। उनका सुलझना भी कठिन है क्योंकि जैनधर्म, संसार का नाश के अर्थि सेइए है ताकर जो सांसारिक प्रयोजन साध्या चाहैं, सो बड़ा अन्याय करै है। तातै ते तो मिथ्यादृष्टि हैं ही। इसलिए सांसारिक प्रयोजन लिए जो धर्म साधै हैं, ते पापी भी हैं और मिथ्यादृष्टि तो हैं ही।'

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 219]

प्रश्न 25- भक्ति आदि शुभभावों के विषय में मोक्षमार्ग - प्रकाशक में क्या-क्या बताया है ?

उत्तर - (1) जो जीव, प्रथम से ही सांसारिक प्रयोजनसहित भक्ति करता है, उसके तो पाप का ही आभिप्राय हुआ।

....परन्तु भक्ति तो रागरूप है और राग से बन्ध है; इसलिए मोक्ष का कारण नहीं है।

यथार्थता की अपेक्षा तो ज्ञानी के सच्ची भक्ति है; अज्ञानी के नहीं है। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 222]*

(2) सांसारिक प्रयोजन के हेतु अरहन्तादिक की भक्ति करने से तो तीव्रकषाय होने के कारण, पापबन्ध ही होता है।

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 8]

(3) कितने ही पुरुषों ने पुत्रादिक की प्राप्ति के लिये अथवा रोग-कष्टादि दूर करने के लिये चैत्याल्य, पूजनादि कार्य किये, स्तोत्रादि किये, नमस्कारमन्त्र का स्मरण किया, परन्तु ऐसा करने से तो नि:काँक्षित गुण का अभाव होता है; निदानबन्ध नामक आर्त्तध्यान होता है, पाप का ही प्रयोजन अन्तरङ्ग में हैं; इसलिए पाप का ही बन्ध होता है। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 274]*

(4) ....बाह्य में अणुव्रत-महाव्रतादि साधते है परन्तु अन्तरङ्ग परिणाम नहीं हैं और स्वार्गादिक की बाँछा से साधते हैं, सो इस प्रकार साधने से तो पापबन्ध होता है; इसलिए पात्र जीवों को सांसारिक प्रयोजन का अर्थी होना योग्य नहीं है।

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 242]

प्रश्न 26- भावस्तुति, द्रव्यस्तुति और जड़स्तुति क्या है?

उत्तर - (1)भावस्तुति, निर्विकल्पदशा है; (2) द्रव्यस्तुति, पुण्यबन्ध का कारण है; और जड़स्तुति, पुण्य-पाप या धर्म का कारण नहीं है; मात्र ज्ञान का ज्ञेय है।

————

7

मुनिराज का स्वरूप

प्रश्न 1- जिनागम में मुनिराज का स्वरूप क्या बताया है ?

उत्तर - श्रीनियमसार में कहा है कि -

निर्ग्रन्थ हैं, निर्मोह है, व्यापार से प्रविमुक्त हैं।
हैं साधु, चउ आराधना में, जो सदा अनुरक्त हैं॥75॥

अर्थात्, समस्त व्यापार से रहित, ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तपरूप चार आरधाना में सदा रक्त, निर्ग्रन्थ और निर्मोह ऐसे साधु होते हैं।

श्रीरत्नकरण्डश्रावकाचार में कहा है कि -

विषयाशावशाातीतो निरारम्भोऽपरिग्रहः।
ज्ञान ध्यान तपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते॥10॥

अर्थात्, पाँच इन्द्रियों के विषयों की आशा से रहित, आरम्भ -परिग्रहरहित, ज्ञान-ध्यान-तप में लीन, वह साधु प्रशंसायोग्य है।

इसी ग्रन्थ के 111 वें श्लोक में लिखा है कैसे हैं दिगम्बर यति ? समयग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र इत्यादि गुणनिका निधान हैं। और कैसे हैं ? नहीं हैं अन्तरङ्ग-बहिरङ्ग परिग्रह जिनके। ऐसे मठ-मकान -उपासरा-आश्रमादि रहित, एकाकी अथवा गुरुजनों की चरणों के साथ कभी वन में, कभी पर्वत की निर्जन गुफा में, कभी घोर वन में, कभी नदी किनारे में नियमरहित है नित्य बिहार जिनका, असंयमी गृहस्थों के संगमरहित, आत्मा की विशुद्धता जो परमवीतराग का साधन करता हुआ और लौकिकजनकृत पूजा-स्तवन-प्रशंसादि को

नहीं चाहता, परलोक में देवलोकादिक के भोगों को तथा इन्द्र, अहमिन्द्र ऐश्वर्य को रागरूप अंगारे तप्त, महान आताप उपजावनेवाली तृष्णा के बाँधनेवाले जानकर, परम अतीन्द्रिय आकुलतारहित आत्मिकसुख को सुख जानकर, देहादिक में ममत्वरहित आत्मकार्य साधे हैं।

प्रश्न 2- आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने सामान्यरूप से साधु का स्वरूप क्या बताया है?

उत्तर - जो विरागी होकर, समस्त परिग्रह का त्याग करके, शुद्धोपयोगरूप मुनिधर्म अङ्गीकार करके, अन्तरङ्ग में तो शुद्धोपयोग के द्वारा अपने को आपरूप अनुभव करते हैं; अपने उपयोग को बहुत नहीं भ्रमाते हैं। जिनके कदाचित् मन्दराग के उदय में शुभोपयोग भी होता है, परन्तु उसे भी हेय मानते हैं। तीव्र कषाय का अभाव होने से अशुभोगयोग का तो अस्तित्व ही नहीं रहता, ऐसे मुनिराज ही सच्चे साधु हैं। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 3]*

प्रश्न 3- मुनिराज किसके भोक्ता होते हैं?

उत्तर - मुनिराज अतीन्द्रिय आनन्द के ही भोक्ता होते हैं।

प्रश्न 4- मुनि, नग्न ही क्यों होना चाहिए?

उत्तर - अनादि काल से आज तक कोई भी संसारी जीव, स्पर्शनइन्द्रिय के बिना नहीं रहा। विचारिये, एक तरफ स्पर्शनइन्द्रिय है, दूसरी तरफ अतीन्द्रिय आत्मा है। स्पर्शनइन्द्रिय को जीते बिना, अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती; अत: स्पर्शनइन्द्रिय को जीतना चाहिए। इसको जीते बिना, मुनि नहीं हो सकता; इसलिए मुनि नग्न ही होना चाहिए।

प्रश्न 5- अखण्ड आत्मा की प्राप्तिवाले मुनि को नग्न क्यों होना चाहिए?

उत्तर - रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण, ये चार इन्द्रियाँ, खण्ड-

खण्डरूप हैं। देखो! सुनना हो तो कान से होता है; देखना हो तो आँख से होता है; सूँघना हो तो नाक से होता है; और चखना हो तो रसना से होता है; इसलिए ये चार इन्द्रियाँ खण्ड-खण्डरूप हैं और स्पर्शनइन्द्रिय सम्पूर्ण शरीर में अखण्ड है; अतः अखण्ड स्पर्शनइन्द्रिय को जीते बिना, अखण्ड आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती; इसलिए अखण्ड आत्मा की प्राप्ति करनेवाले मुनि नग्न ही होते हैं।

प्रश्न 6- लोक में ऐसा क्यों कहा जाता है कि रसनाइन्द्रिय को जीतना कठिन है, जब तक लोकोत्तरमार्ग में कहा जाता है कि स्पर्शनइन्द्रिय को जीतना मुश्किल है - ऐसा क्यों ?

उत्तर - कान दो, काम एक सुनना होता है; आँख, दो काम एक देखना होता है; नाक के छेद दो, काम एक सूँघना होता है; जीभ एक, काम दो होते हैं, एक बोलना दूसरा चखना। इस प्रकार कर्ण, चक्षु, और घ्राण दो-दो हैं और काम एक-एक है, किन्तु रसना एक, काम दो है; इस प्रकार जीभ का चार गुना काम हुआ; इसलिए लौकिक में कहा जाता है कि जीभ को जीतना मुश्किल है।

नग्न शरीरवाले को विकार होने पर सबको पता चल जाता है; इसलिए विकार को जीतनेवाला मुनि, नग्न ही होना चाहिए; इसीलिए लोकोत्तरमार्ग में स्पर्शनइन्द्रिय को जीतना कठिन कहा गया है।

प्रश्न 7- जीभ हमें क्या शिक्षा देती है ?

उत्तर - जीभ अन्दर अन्धेरी गुफा में पड़ी, इसके ऊपर बत्तीस पैने दाँत पुलिस जैसे खड़े हैं, ऊपर दो होंठ किवाड़ सरीखे हैं - जीभ ऐसी प्रतिकूल अवस्था में पड़ी है तो भी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ती और चखनेयोग्य पदार्थ, कटु हों या स्वादिष्ट हों तो भी वह उसका स्वाद ले लेती है। उसी प्रकार हे आत्मा! तुझे भी जीभ की तरह, अपने ज्ञाता-दृष्टास्वभाव को प्रतिकूल या अनुकूल संयोग

मिलने पर भी नहीं छोड़ना चाहिए, जीभ से पात्र जीव को यह शिक्षा मिलती है।

प्रश्न 8- विशेषरूप से बन्ध का निमित्तकारण कौन है ?

उत्तर - पुद्गल में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, ये चार विशेषगुण हैं। इनमें से रस की पाँच पर्यायें, गन्ध की दो पर्यायें, वर्ण की पाँच पर्यायें और स्पर्श की आठ पर्यायें हैं। इन आठ में से स्निग्ध और रुक्ष को छोड़कर, बाकी छह पर्यायों के कारण तो स्कन्धरूप बन्ध होता ही नहीं; मात्र स्निग्ध और रुक्षपर्याय के कारण परमाणुओं में परस्पर बन्ध होता है; उसी प्रकार आठ कर्मों में से चार अघातिकर्म तो बन्ध के कारण नहीं है। ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अन्तराय का जितना उघाड़ है, वह भी बन्ध का कारण नहीं है; मात्र मोहनीयकर्म ही बन्ध का निमित्तकारण है और मोहनीयकर्म में भी विशेषरूप से दर्शनमोहनीयकर्म, बन्ध का मुख्य निमित्तकारण है।

प्रश्न 9- मात्र मोहनीयकर्म, बन्ध का निमित्तकारण है - इसमें आप क्या बताना चाहते हैं ?

उत्तर - जैसे, परमाणुओं में स्निग्ध-रुक्ष के कारण बन्ध होता है; उसी प्रकार आत्मा में भी राग-द्वेष ही बन्ध का कारण है। राग -द्वेष को जीतना तभी बनेगा, जबकि स्पर्शनइन्द्रिय को जीता जावे। इसलिए मुनि नग्न ही होना चाहिए।

प्रश्न 10- दीपक क्या शिक्षा देता है ?

उत्तर - जैसे, जब तक दीपक में तेल रहता है, तब तक वह जलता रहता है; उसी प्रकार जब तक जीव से मोह रहेगा, तब तक वह कोल्हू के बैल की तरह चारों गतियों में जन्म-मरण के दुःख उठाता रहेगा; अतः मुनि, राग-द्वेष-मोहरहित होते हैं; इसलिए मुनि नग्न ही होना चाहिए।

प्रश्न 11- जीभ हमें और क्या शिक्षा देती है ?

उत्तर - जैसे, हाथ पर चिकनाहट लग जावे तो हम हाथों को साबुन-पानी से धोते हैं तथा जीभ कितने ही चिकने पदार्थ खावे, उस को साबुन और पानी की आवश्यकता नहीं है क्योंकि जीव का स्वभाव लूखा है। जीभ अपने लूखे स्वभाव के कारण चिकनाई को तोड़े बिना नहीं रहती है; उसी प्रकार जो जीव अपने त्रिकाली ज्ञायक भगवान का आश्रय लेता है, उसको राग-द्वेष उत्पन्न ही नहीं होता। तब व्यवहार से कहा जाता है कि इसने राग-द्वेष को छोड़ा है। मुनि को अपना आश्रय ही वर्तता है; इसलिए वीतरागी मुनि नग्न ही होते हैं।

प्रश्न 12- क्या मुनि को नग्न देखने से विकार उत्पन्न होता है ?

उत्तर - बिल्कुल नहीं। जैसे, छोटा बच्चा है, नग्न है। यदि वह राजमहल में चला जावे, तो रानियाँ उसे प्यार करती है और बच्चे में नग्न देखने में किसी को भी विकार उत्पन्न नहीं होता। यदि जवान विषयासक्त पुरुष महल में चला जावे, तो उसका सिर काट दिया जाता है; उसी प्रकार मुनि को स्वयं को विकार उत्पन्न नहीं होता; इतना ही नहीं, बल्कि वीतरागी मुनि को देखकर किसी को भी विकार उत्पन्न नहीं होता है क्योंकि मुनि की नग्नता निर्दोषता का सूचक है; इसलिए वीतरागी मुनि नग्न ही होते हैं।

प्रश्न 13- वीतरागी साधु को भूमिकानुसार कैसा-कैसा राग, हेयबुद्धि होता है, स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर - साधु को अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान सम्बन्धी क्रोधादि के अभावरूप शुद्धि तो निरन्तर वर्तती है; जो शुद्धि है, वह वीतरागरूप है, उसे सकलचारित्र कहते हैं। छठवें गुणस्थान में आने पर हेयबुद्धि से अट्ठाईस मूलगुणों का पालन, बाईस परीषहों का

सहन, बारह प्रकार के तप, कदाचित अध्ययनादिक बाह्य धर्मक्रियाओं में प्रवर्तते हैं, कदाचित आहार-विहारादि क्रियाएँ होती हैं। उनकी दृष्टि तो एकमात्र अपने त्रिकाली भगवान पर होती हैं; अप्रमत्तदशा और प्रमत्तदशा पर भी उनकी दृष्टि नहीं है। वन खण्डादि में वास करते हैं; उद्दिष्ट आहारादिक का ग्रहण उनके नहीं होता है। मुनिपद है, वह यथाजातरूप सदृश है। जैसा, जन्म होते हुए था, वैसा नग्न है। पीछी-कमण्डल के अलावा उनके पास तिलतुषमात्र भी परिग्रह नहीं होता। ऐसे जैनमुनि को तीन चौकड़ी कषाय के अभावरूप शुद्धि के साथ राग, हेयबुद्धि से होता है, वे उसे करते नहीं हैं।

प्रश्न 14- क्या भावलिङ्गी मुनि को छठवें गुणस्थान में उद्दिष्ट आहारादि का विकल्प भी नहीं आता? - यह बात दृष्टान्तपूर्वक समझाईए।

उत्तर - (1) रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीता ने जङ्गल में अपने हाथ से बने मिट्टी के बर्तनों में आहार बनाया। दूसरी तरफ मुनि आहार के निमित्त नियम लेकर चलते हैं कि राजकुमार हों; जङ्गल में हों; अपने हाथ से मिट्टी के बर्तन बनाए हों और स्वयं आहार बनाया हो तो हम आहार लेंगे। आहार बनाने के बाद रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीता आहार के निमित्त विचारते हैं। आकाशमार्ग से मुनि को आते देखकर हे स्वामी! तिष्ठो-तिष्ठो! हमने मिट्टी के बर्तनों में स्वयं आहार बनाया है। देखो! ऐसा सहज ही स्वत: निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध होता है।

(2) एक मुनि दो महीनों के उपवास के बाद आहार के निमित्त नियम लेकर निकले कि केले का साग हो, इसमें नमक, मिर्चादि न हो तो हम आहार लें। दूसरी तरफ एक गरीब श्राविका एक बाग में गयी, वहाँ के माली ने कहा अम्मा! ले, यह केले का गुच्छा है। श्राविका ने घर पर आकर केले का साग बनाया। बनने के बाद

सामने से मुनिराज आते देखे, तो पड़गाने को खड़ी हो गयी। हे स्वामी! तिष्ठो-तिष्ठो! मैंने केले का साग बनाया है, न नमक है, न मिर्च है देखो, आहार हो गया। श्रावक अपने निमित्त शुद्ध आहार बनावे, तब मुनियों के आने का योग हो तो सहजरूप से स्वयं स्वत: निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध बन जाता है; बनाना नहीं पड़ता है।

मुनि, आहार के निमित्त पधारे और उन्हें यह संशय हो जावे कि इस श्रावक ने हमारे लिए आहार बनाया है तो वह आहार नहीं लेंगे, वापस चले जावेंगे क्योंकि मुनि के उद्दिष्ट आहार का त्याग है। यदि उद्दिष्ट आहार लेने का विकल्प आ जावे तो वह मुनि ही नहीं है।

प्रश्न 15- भावलिङ्गी मुनि को कैसा भाव आ जावे तो मुनिपना नहीं रहेगा ?

उत्तर - (1) भावलिङ्गी मुनि को अष्ट द्रव्य से पूजन का भाव आ जावे तो मुनिपना नहीं रहेगा।

(2) एक मुनि रास्ते में जा रहे थे। रास्ते में प्यास से मरते हुए आदमी को देखा। देखकर मुनि ने विचारा 'मैं इसको पानी दे देता, तो यह बच जाता, लेकिन भगवान की आज्ञा नहीं है' - ऐसा भाव मुनि को आने पर जिनवाणी में आया है कि वह मुनि नहीं है, गुलाममार्गी है क्योंकि मुनि स्वयं इस प्रकार पानी लेते नहीं, तब देने का विचार भी भावलिङ्गी मुनि को नहीं आता है, लेकिन श्रावक को पानी देने का भाव न आवे तो वह श्रावक नहीं है।

(3) दो मुनि हैं, एक ध्यान में बैठे हैं, दूसरे आहार के निमित्त जा रहे हैं। सामने से एक भयंकर सिंह ध्यानस्थ मुनि पर हमला करता है। आहार के निमित्त जानेवाले मुनि में इतनी ताकत है कि उस सिंह का कान पकड़ कर बैठा दें, तो भी भावलिङ्गी मुनि को उन्हें बचाने का भाव नहीं आवेगा। यदि बचाने का भाव आ जावे तो मुनिपना नष्ट हो जावेगा।

(4) मुनि के पास पीछी-कमण्डल के अलावा कुछ नहीं होता है। शास्त्र भी किसी श्रावक ने दिया तो पढ़कर वहीं छोड़ देते हैं। मुनि को किसी ने शास्त्र दिया, वह शास्त्र, मुनि ने पढ़ा भी नहीं है; - ऐसे समय में कोई श्रावक उनसे माँगे तो भावलिङ्गी मुनि तुरन्त दे देंगे। यदि मना कर दें या देने का भाव न आवे तो मुनिपना नष्ट हो जावेगा।

(5) पीछी-कमण्डल के अलावा तिलतुषमात्र भी परिग्रह, मुनि नहीं रखते हैं; यदि रखें तो निगोद जाता है।

प्रश्न 16- श्रीब्रह्मविलास, पृष्ठ 278 में ऐसा क्या कहा है कि - 'भरतक्षेत्र पञ्चम समय, साधु परिग्रह वंत, कोटि सात अरू अर्ध सब, नरकहिं जाय परन्त'॥28॥

उत्तर - मुनि नाम रखाकर ग्रन्थमाला चलावे; मन्दिर बनवाने का तथा मन्दिरों को प्रतिष्ठा कराने का कार्य; चेला-चेलियों से अपने को बड़ा माने; हीटर लगावे; घड़ी, चश्मा आदि अपने पास रक्खे; शहरों में रहे; श्रावकों को बैल की तरह हाँके; दातार की स्तुति करके दानादि ग्रहण करे; वस्त्रों में आसक्त हो; परिग्रह ग्रहण करनेवाला हो; याचनासहित हो; अध:कर्म दोषों में रत हो; यन्त्र-मन्त्र तन्त्रादि करते हों; गृहस्थों के बालकों को प्रसन्न करना, समाचार कहना, मन्त्र -औषधि ज्योतिषादि कार्य बतलाना तथा किया-कराया-अनुमोदित भोजन लेना आदि कार्यों में रत रहते हों तथा शुभभावों से मोक्षमार्ग और मोक्ष होता है; निमित्त से उपादान में कार्य होता है; व्यवहार के कथन को सच्चा कथन मानने और अनुमोदना करनेवाले हों - ऐसे भरतक्षेत्र से पञ्चम काल में साढ़े सात करोड़ मुनि, नरक जावेंगे - ऐसा ब्रह्मविलास का तात्पर्य है क्योंकि शास्त्रों में कृत-कारित -अनुमोदना का एक सा फल कहा है।

प्रश्न 17- जैसा ब्रह्म विलास में कहा है - ऐसा क्या कहीं और आचार्यों ने भी कहा है ?

उत्तर - 'धरये पञ्चमकाला, जिनवर लिङ्ग धार सव्वेसि।
साढ़े सात करोड़म्, जाइये निगोद मज्झमी।'

मारोठ से प्रकाशित शुद्ध श्रावकधर्मप्रकाश, पृष्ठ 358 में यह श्लोक संकलित है।

प्रश्न 18- क्या आजकल सच्चे मुनि-क्षुल्लक देखने में नहीं आते हैं ?

उत्तर - हाँ भाई! पञ्चम काल में अभी भावलिङ्गी मुनिश्वर -अर्जिका, क्षुल्लक का समागम देखने में नहीं आता है।

प्रश्न 19- पञ्चम काल में अभी भावलिङ्गी मुनि आदि का समागम देखने में नहीं आता है - ऐसा कहाँ लिखा है ?

उत्तर - श्रीरत्नकरण्ड श्रावकाचार, श्लोक 117 के अर्थ में लिखा है कि 'और इस पञ्चम काल में वीतरागी भावलिङ्गी साधु ही कोई विरला देशान्तर में तिष्ठै है, तिनका पावना होय नाहीं। पात्र का लाभ होना चतुर्थ काल में ही बड़े भाग्य ते होय था। परन्तु इस क्षेत्र में पात्र तो बहुत थे। अब इस दु:खम काल में यथावत धर्म के धारक पात्र कही नहीं देखने में आवें। धर्मरहित अज्ञानी लोभी बहुत विचरै हैं, सो अपात्र हैं। इस काल में धर्म पाय करिकै गृहस्थ जिनधर्म के धारक श्रद्धानी कोई कहीं-कहीं पाइए हैं। जे वीतराग धर्म कूँ श्रवण करि, कुधर्म की आराधना दूर ही तै त्याग करि, नित्य ही अहिंसा धर्म के धरनेवाले, जिन वचनामृत पान करनेवाले, शीलवान सन्तोषी तपस्वी ही पात्र हैं। अन्य भेषधारी बहुत विचरै हैं, जिनमें मुनि -श्रावकधर्म का, सत्य सम्यग्दर्शनादिक का ज्ञान ही नाहीं, ते कैसे पात्रपना पावै ? मिथ्यादर्शन के भावकरि आत्मज्ञानरहित लोभी भये,

जगत में धनादिकनि का, मिष्ट आहारदान का इच्छुक भये, बहुत विचरै हैं, ते अपात्र हैं। तातैं पात्रदान होना अति दुर्लभ है। यहाँ ऐसा विशेष जानना, जो कलिकाल में भावलिङ्गी मुनीश्वर तथा अर्जिका, क्षुल्लक का समागम तो है ही नाहीं।'

प्रश्न 20- पीछी-कमण्डल के अलावा तिलतुषमात्र भी परिग्रह रखे तो वह निगोद जाता है - ऐसा कहीं आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है ?

उत्तर - श्रीसूत्रपाहुड, श्लोक 18 में कहा है कि -

जय जाय रूव सरियो तिलतुसमित्तणं गहदि अत्थेसु।
जह लेह अप्प-बहुयं, तोत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ॥17॥

अर्थात्, मुनिपद है, वह यथाजातरूप सदृश है; जैसा जन्म होते हुए था, वैसा नग्न है। सो वह मुनि, अर्थ यानि धन-वस्त्रादिक वस्तुओं में तिल के तुषमात्र भी ग्रहण नहीं करता। यदि कदाचित् अल्प व बहुत वस्तु ग्रहण करे तो उससे निगोद जाता है।

प्रश्न 21- श्रीसूत्रपाहुड़, गाथा 18 का भावार्थ क्या है ?

उत्तर - गृहस्थपने में बहुत परिग्रह रखकर कुछ प्रमाण करे, तो भी स्वर्ग-मोक्ष का अधिकारी होता है और मुनिपने से किञ्चित् परिग्रह अङ्गीकार करने पर भी निगोदगामी होता है; इसलिए ऊँचा नाम रखाकर नीची प्रवृत्ति युक्त नहीं है। देखो, हुण्डावसर्पिणीकाल में यह कलिकाल चल रहा है। इसके दोष से जिनमत में मुनि का स्वरूप तो ऐसा है, जहाँ बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का लगाव नहीं है; केवल अपने आत्मा का आपरूप अनुभव करते हुए, शुभाशुभभावों से उदासीन रहते हैं और अब विषय-कषायसक्त जीव, मुनिपद धारण करते हैं; वहाँ सर्व सावद्य के त्यागी होकर पञ्च महाव्रतादिक अङ्गीकार करते हैं; भोजनादि में लोलुपी रहते हैं; अपनी पद्धति

बढ़ाने के उद्यमी होते हैं व कितने ही धनादि भी रखते हैं, हिंसादिक करते हैं व नाना आरम्भ करते हैं परन्तु अल्प परिग्रह रखने का फल निगोद कहा हैं, तब ऐसे पापों का फल तो अनन्त संसार होगा ही होगा। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 179]*

प्रश्न 22- जो मुनि ऐसा करते हैं, क्या उन्हें मुनि नहीं मानना चाहिए ?

उत्तर - लोगों की अज्ञानता देखो, कोई एक छोटी सी प्रतिज्ञा भङ्ग करे, उसे तो पापी कहते हैं और बड़ी प्रतिज्ञा भङ्ग करते देखकर भी उन्हें गुरु मानते हैं, उनका मुनिवत्, सम्मानादि करते हैं। सो शास्त्र में कृत-कारित-अनुमोदना का एक फल कहा है; इसलिए वे सब निगोद के पात्र हैं। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 179]*

प्रश्न 23- मुनिपद लेने का क्रम क्या है ?

उत्तर - पहले तत्त्वज्ञान हो, पश्चात् उदासीन (शुद्ध) परिणाम होते हैं, परीषहादि सहने की शक्ति होती है, तब वह स्वयमेव मुनि होना चाहता है और तब श्रीगुरु मुनिधर्म अङ्गीकार कराते हैं।

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 179]

प्रश्न 24- वर्तमान में कैसी विपरीतता है ?

उत्तर - तत्त्वज्ञानरहित विषय-कषायसक्त जीवों को माया से व लोभ दिखाकर मुनिपद देना, अन्यथा प्रवृत्ति कराना, सो बड़ा अन्याय है। सो हाय हाय! यह जगत, राजा से रहित है, कोई अन्य पूछनेवाला नहीं है। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 179 तथा 181]*

प्रश्न 25- जैन शास्त्रों में वर्तमान में केवली का तो अभाव कहा है, मुनि का तो अभाव नहीं कहा है ?

उत्तर - ऐसा तो कहा नहीं है कि इन देशों में सद्भाव रहेगा परन्तु भरतक्षेत्र में कहते हैं, सो भरतक्षेत्र तो बहुत बड़ा है; कहीं

सद्भाव होगा; इसलिए अभाव नहीं कहा है। यदि जहाँ तुम रहते हो, उसी क्षेत्र में सद्भाव मानोगे; तो जहाँ ऐसे भी गुरु नहीं मिलेंगे, वहाँ जावोगे, तब किसको गुरु मानोगे? जिस प्रकार हंसों का सद्भाव वर्तमान में कहा है, परन्तु हंस दिखायी नहीं देते तो और पक्षियों को हंस नहीं माना जाता है; उसी प्रकार वर्तमान में मुनियों का सद्भाव कहा है परन्तु मुनि दिखायी नहीं देते, तो औरों को तो मुनि माना नहीं जा सकता। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 184 से]*

प्रश्न 26- अब श्रावक भी तो जैसे सम्भव है, वैसे नहीं हैं; इसलिए जैसे श्रावक, वैसे मुनि?

उत्तर - श्रावक संज्ञा तो शास्त्र में सर्व गृहस्थ जैनियों को है। श्रेणिक भी असंयमी था, उसे उत्तरपुराण में श्रावकोत्सव कहा है। बारह सभाओं में श्रावक कहे, वहाँ सर्व व्रतधारी नहीं थे। यदि सर्व व्रतधारी होते तो असंयत मनुष्यों की अलग संख्या कही जाती, सो कही नहीं है; इसलिए गृहस्थ जैन, श्रावक नाम प्राप्त करता है और मुनि संज्ञा तो निर्ग्रन्थ के सिवाय कहीं नहीं कही है। श्रावक के आठ मूलगुण कहे हैं; इसलिए मद्य, माँस, मधु, पाँच उदम्बरादि फलों का भक्षण श्रावकों के नहीं; इसलिए किसी प्रकार से श्रावकपना तो सम्भावित भी है परन्तु मुनि के अट्ठाईस मूलगुण हैं, सो वेषियों के दिखायी ही नहीं देते है; इसलिए मुनिपना किसी प्रकार सम्भव नहीं है। *[श्रीमोक्षमार्गप्राकशक, पृष्ठ 186]*

प्रश्न 27- जिनलिङ्गी होकर अन्यथा प्रवर्ते तो क्या होगा?

उत्तर - अदिनाथजी के साथ चार हजार राजा, दीक्षा लेकर पुनः भ्रष्ट हुए, तब उनसे देव कहने लगे — 'जिनलिङ्गी होकर अन्यथा प्रवतोगे तो हम दण्ड देंगे। जिनलिङ्ग छोड़कर जो तुम्हारी इच्छा हो, सो तुम जानो', इसलिए जिनलिङ्गी कहलाकर अन्यथा प्रवर्तें तो वे

दण्डयोग्य हैं; वन्दनादि योग्य कैसे होंगे ? अब, अधिक क्या कहें, जिनमत में कुवेष धारण करते हैं, वे महापाप करते हैं; अन्य जीव जो उनकी सेवा-सुश्रुषा आदि करते हैं, वे भी पापी होते हैं, क्योंकि पद्मपुराण में लिखा है कि 'श्रेष्ठी धर्मात्मा ने चारण मुनियों को भ्रम से भ्रष्ट जानकर आहार नहीं दिया; अब जो प्रत्यक्ष भ्रष्ट हैं, उन्हें दानादि देना कैसे सम्भव है ? अर्थात्, कभी भी नहीं।'

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 186]

प्रश्न 28- हमारे अन्तरङ्ग में श्रद्धान तो सत्य है परन्तु बाह्य लज्जादि से शिष्टाचार करते हैं, सो फल तो अन्तरङ्ग का होगा ?

उत्तर - श्रीदर्शनपाहुड़, श्लोक 13 में लज्जादि से वन्दनादिक का निषेध बतलाया है। कोई जबरदस्ती मस्तक झुकाकर हाथ जुड़वाये तो यह सम्भव है कि हमारा अन्तरङ्ग नहीं था परन्तु आप ही मानादिक से नमस्कारादि करे, वहाँ अन्तरङ्ग कैसे ना कहें ? जैसे— कोई अन्तरङ्ग में तो माँस को बुरा जाने, परन्तु राजादिक को भला मनवाने को माँस भक्षण करे तो उसे व्रती कैसे माने ? उसी प्रकार अन्तरङ्ग में कुगुरु सेवन को बुरा जाने, परन्तु उनको व लोगों को भला मनवाने के लिए सेवन करे, उसे श्रद्धानी कैसे कहें ? इसलिए बाह्य त्याग करने पर ही अन्तरङ्ग त्याग सम्भव है। इसलिए जो श्रद्धानी जीव है, उन्हें किसी प्रकार से भी कुगुरुओं की सेवा सुश्रुषा आदि करना योग्य नहीं है। *[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 187]*

प्रश्न 29- जिस प्रकार राजादिक को करता है, उसी प्रकार इनको भी करें तो क्या नुकसान है ?

उत्तर - राजादिक, धर्मपद्धति में नहीं हैं; गुरु का सेवन धर्मपद्धति में है। राजादिक का सेवन, लोभादिक से होता है; वहाँ चारित्र -मोहनीय का ही उदय सम्भव है परन्तु गुरु के स्थान पर, कुगुरु का

सेवन किया, वहाँ तत्त्वश्रद्धान के निमित्तकारण गुरु थे, उनसे यह प्रतिकूल हुआ। सो लज्जादिक से जिसने निमित्तकारण में विपरीतता उत्पन्न की, उसके उपादानकार्यभूत तत्त्वश्रद्धान में दृढ़ता कैसे सम्भव है ? इसलिए कुगुरु के सेवन में दर्शनमोह का उदय है। इसलिए पात्र जीवों को मुनि का लक्षण जानकर ही उनको मानना चाहिए।

[श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 187]

प्रश्न 30- 'मुनि' शब्द किस-किस को लागू पड़ता है ?

उत्तर - 'मुनि' शब्द चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें गुणस्थान तक लागू होता है, अर्थात् चौथे से बारहवें गुणस्थान तक सर्व 'मुनि' नाम से सम्बोधन किये जा सकते हैं।

प्रश्न 31- 'मुनि' का अर्थ असंयत सम्यदृष्टि आदि आपने कहाँ से कर दिया है ?

उत्तर - अरे भाई! (1) श्रीसमयसार कलशटीका में कलश 104 में **'एते तत्र निरताः अमृतं विंदन्ति' (एते)** विद्यमान जो सम्यक्दृष्टि मुनीश्वर **(तत्र)** शुद्धस्वरूप के अनुभव में **(निरताः)** मग्न हैं, वे **(परमं अमृतं)** सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रियसुख को **(बिदन्ती)** आस्वादते हैं।

(2) कलश 152 में **'ततमुनि कर्मणा नो बध्यते' (तत्)** तिस कारण से **(मुनिः)** शुद्धस्वरूप अनुभव विराजमान सम्यग्दृष्टि जीव **(कर्मणा)** ज्ञानावरणादिकर्म से **(ना बध्यते)** नहीं बँधता है।

(3) कलश 186 में **'अनपराधः मुनि न बध्येत' (अनपराधः)** कर्म के उदय के भाव को आत्मा का जानकर नहीं अनुभवता है, ऐसा है जो **(मुनिः)** परद्रव्य से विरक्त समयग्दृष्टि जीव **(न बध्येत)** ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड के द्वारा नहीं बाँधा जाता है।

(4) कलश 190 में **'अतः मुनि परम शुद्धता ब्रजति च अचिरात मुचयते' (अतः)** इस कारण से **(मुनिः)** सम्यग्दृष्टि

जीव **(परम शुद्धता ब्रजति)** शुद्धोपयोगपरिणतिरूपी परिणमता हैं। **(च)** ऐसा होता हुआ **(अचिरात्-मूच्यते)** उसी काल कर्मबन्ध से मुक्त होता है।

इन चार कलशों में सम्यग्दृष्टि को 'मुनि' कहा है; अतः चौथे गुणस्थान से लेकर बारहवें तक सब मुनि कहलाते हैं परन्तु सातवें से बारहवें गुणस्थान तक वाले उत्तममुनि; पाँचवें, छठे गुणस्थानी मध्यममुनि, और चौथे गुणस्थानी असंयत सम्यग्दृष्टि, जघन्यमुनि कहलाते हैं।

प्रश्न 32- मुनि, अप्रमत्त और प्रमत्तदशा से गिर जावे तो क्या होता है, जरा दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर - जैसे, सर्कस में दो झूला होते हैं। उन पर एक लड़की कभी इस झूले पर और कभी उस झूले पर तेजी से आती-जाती है। उसके नीचे सर्कसवाले जाली लगाते हैं, जिससे यदि कदाचित् गिर जावे तो चोट न लगे। प्रथम तो वह गिरती ही नहीं है, यदि गिर जावे तो ताल ठोककर फिर तत्काल झूले पर चढ़ जाती है और यदि वह जाली पर पड़ी रहे तो उसे सर्कस से बाहर कर देते हैं; उसी प्रकार भावलिङ्गी मुनीश्वर, छठवें-सातवें गुणस्थान में झूला झूलते हैं। प्रथम तो गिरते नहीं है और अपने परिपूर्ण स्वभाव का आश्रय बढ़ाकर सिद्धदशा को प्राप्त कर लेते हैं और यदि गिर जावे तो उग्र पुरुषार्थ बढ़ाकर फिर चढ़ जाते हैं। यदि गिर जावे तो कोई पाँचवें, कोई चौथे गुणस्थान में और कोई मिथ्यादृष्टि तक हो जाते हैं।

प्रश्न 33- मुनि गिर जावे तो बहुत से मुनि, सर्वार्थसिद्धि में तैंतीस सागर की आयुपर्यन्त रहते हैं, वह तो ठीक है ना ?

उत्तर - जैसे, एक रिश्वतखोर हैडमास्टर ने एक चौथी कक्षा के लड़के से रिश्वत लेकर उसे सातवीं कक्षा में कर दिया। रिश्वत ना

लेनेवाले स्कूल इन्स्पेक्टर ने उसकी परीक्षा ली तो उसने सातवीं कक्षा का प्रश्न पूछा, वह न बात सका; फिर छठी कक्षा का प्रश्न पूछा, वह न बता सका; फिर पाँचवी कक्षा का प्रश्न पूछा, वह ना बता सका; फिर चौथी कक्षा का प्रश्न पूछा, तो उसने बता दिया। तब इन्स्पेक्टर ने दण्डस्वरूप दस वर्ष तक उसे चौथी कक्षा में रहने का हुक्म दिया। क्या वह लड़का दस वर्ष तक उस कक्षा में रहता हुआ आनन्द मानेगा? कभी नहीं। उसी प्रकार भावलिङ्गी मुनीश्वर सातवें गुणस्थान में आनन्द की लहर का अतीन्द्रिय रस पीते हैं और उनकी आयुष्य पूर्ण होने पर विग्रहगति में चौथा गुणस्थान आ जाता है और फिर सर्वार्थसिद्धि में तैतीस सागर पर्यन्त चौथे गुणस्थान में रहना होता है – क्या वे आनन्द मानते होंगे? कभी नहीं।

प्रश्न 34– सच्चे और झूठे मुनि के स्वरूप को जानने के लिए हम किस शास्त्र को देखें, जिससे सब बात सुगमता से समझ में आ जावे?

उत्तर – श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, छठवें अधिकार में गुरु के वर्णन में आचार्यकल्प पण्डित टोडरमलजी ने बहुत स्पष्ट किया है, वहाँ से अच्छी तरह पढ़कर जान लेवें।

प्रश्न 35– श्री कुन्दकुन्दभगवान ने श्री नियमसार में क्या आदेश दिया है?

उत्तर – श्रीनियमसार में कहा है कि –

जो कर सको तो ध्यानमय प्रतिक्रमण आदिक कीजिये।
यदि शक्ति हो नहि तो अरे श्रद्धान निश्चय कीजिये॥154॥

है जीव नाना, कर्म नाना, लब्धि नाना विधि कही।
अतएव ही निज-पर समय सह वाद परिहर्तव्य है॥156॥

निधि पा...मनुज तत्फल वतन में गुप्त रह ज्यो भोगता।
त्यो छोड़ परजन-संग ज्ञानी ज्ञान निधि को भोगता॥157॥

अर्थात्, यदि किया जा सके तो अहो। ध्यानमय प्रतिक्रमणादि कर; यदि तू शक्ति विहीन हो तो तब तक श्रद्धान ही कर्तव्य है॥154॥

नाना प्रकार के जीव है; नाना प्रकार का कर्म हैं; नाना प्रकार की लब्धि हैं; इसलिए स्वसमयों तथा परसमयों के साथ (स्वधर्मियों तथा परधर्मियों के साथ) वचन विवाद वर्जनयोग्य है॥156॥

जैसे, कोई एक (दरिद्र मनुष्य) निधि को पाकर अपने वतन में (गुप्तरूप से) रहकर उसके फल को भोगता है; उसी प्रकार ज्ञानी, परजनों समूह को छोड़कर ज्ञाननिधि को भोगता है॥157॥

————

8

श्रीसमयसार गाथा 160 का रहस्य

धर्म प्राप्ति के लिये....

प्रश्न 1- श्रीसमयसार, पुण्य-पाप अधिकार की गाथा 160 में, 'तेरा सर्वज्ञ-सर्वदर्शी स्वभाव है' - यह कहने का क्या प्रयोजन है ?

उत्तर -

यह सर्वज्ञानी दर्शि भी, निजकर्म रज आच्छाद से।
संसार प्राप्त न जानता, वो सर्व को सब रीत से॥60॥

अर्थात्, वह आत्मा, स्वभाव से सर्व को देखने-जाननेवाला है, तथापि अपने कर्ममल से लिप्त होता हुआ / व्याप्त होता हुआ, संसार को प्राप्त हुआ, वह सब प्रकार से सर्व को नहीं जानता।

प्रश्न 2- पुण्य-पाप अधिकार में सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की बात क्यों की ?

उत्तर - (1) जब तक जीव को पुण्य-पाप की रुचि रहेगी, तब तक उसे सम्यग्दर्शन नहीं होगा; और

(2) पर्याय में जब तक पुण्यभाव रहेगा, तब तक सर्वज्ञ -सर्वदर्शी नहीं बन सकता है - यह बताने के लिये पुण्य-पाप अधिकार में सर्वज्ञ-सर्वदर्शी की बात की है।

प्रश्न 3- किस जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी ?

उत्तर - (1) जो जीव मानता है कि दया-दान-पूजा-अणुव्रत -महाव्रतादि विकारीभावों से धर्म की प्राप्ति होती है;

(2) संसार अवस्था में शुभभाव कुछ तो मदद करता ही है;

(3) शुभभाव करते-करते धर्म की प्राप्ति हो जावेगी - आदि मान्यतावाला, अर्थात् पुण्य की रुचिवाला है, उसे कभी भी सम्यग्दर्शन होने का अवकाश नहीं है।

प्रश्न 4- गाथा 160 में से दो बोल कौन से निकलते हैं ?

उत्तर - (1) जब तक जीव को परलक्ष्यी ज्ञान और पुण्य की मिठास रहेगी, तब तक उसे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की श्रद्धा नहीं हो सकती, अर्थात् जब तक जीव को परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की रुचि, पुण्यभाव, पुण्यकर्म और पुण्य की सामग्री की रुचि रहेगी, तब तक उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी, और

(2) जब तक पर्याय में पुण्य-पाप का भाव रहेगा, तब तक सर्वज्ञ और सर्वदर्शी नहीं बन सकता।

प्रश्न 5- क्या आत्महित साधने के लिए मोक्षमार्ग में पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की किञ्चित्मात्र भी कीमत नहीं है ?

उत्तर - वास्तव में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए; श्रेणी माँडने के लिए; सिद्धदशा प्राप्त करने के लिए पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की किञ्चितमात्र आवश्यकता नहीं है; एकमात्र मैं अखण्ड त्रिकाली परमपारिणामिक -भावरूप हूँ - ऐसे अनुभव और ज्ञान की ही आवश्यकता है।

प्रश्न 6- क्या सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्षी ज्ञान के उघाड़ की किञ्चित जरूरत नहीं है ?

उत्तर - नहीं है, विचारो! चार गति के चार जीव हैं।

(1) सातवें नरक का नारकी, जहाँ पर प्रतिकूल संयोग भरा पड़ा है;

(2) नव ग्रैवेयक का मिथ्यादृष्टि देव, जहाँ पर अनुकूल संयोग भरा पड़ा है;

(3) स्वयंभूरमणसमुद्र का मगरमच्छ / तिर्यञ्च, जो जल में पड़ा है;

(4) बड़ा महाराजा / मनुष्य, जो हीरों के सिंहासन पर बैठा है।

इस प्रकार चारों गतियों के जीवों को पुण्य-पाप के संयोगों में बड़ा अन्तर है। नारकी-देव को कुमति आदि तीन ज्ञान का उघाड़ है और मनुष्य-तिर्यञ्च को कुमति आदि दो ज्ञान का उघाड़ है।

चारों गतियों के चारों जीवों को मानो मोटेरूप से आठ बजकर एक मिनट पर सम्यग्दर्शन होना है तो आठ बजे सम्यग्दर्शन के योग्य आत्मसन्मुखतारूप शुभभाव समान होते हैं क्योंकि जब जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, तब करणलब्धि का तीसरा भेद अनिवृत्तिकरण का अभाव होकर ही होती है; इस प्रकार चारों गतियों के जीवों के संयोगों में व ज्ञान के उघाड़ में बड़ा अन्तर होने पर भी, आत्मसन्मुखतारूप परिणाम समान होते हैं; अतः सम्यक्त्व की प्राप्ति में बाह्य संयोग, बाधक-साधक नहीं होते हैं। जीव एकमात्र अपने त्रिकालीस्वभाव का आश्रय ले, तो तुरन्त सम्यगदर्शन की प्राप्ति होती है - ऐसा जानकर संयोग और संयोगीभावों की रुचि का त्याग करके, सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए।

प्रश्न 7- क्या श्रेणी माँडने के लिए भी पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की किञ्चित् जरूरत नहीं है?

उत्तर - नहीं है। विचारिये! चार भावलिङ्गी मुनि हैं।

(1) एक मुनि को मति-श्रुतज्ञान का अल्प उघाड़ है और मुनि पदवी है;

(2) दूसरे मुनि को मति-श्रुत-अवधिज्ञान का उघाड़ है और उपाध्याय पदवी है;

(3) तीसरे मुनि को मति-श्रुत-मन:पर्ययज्ञान का उघाड़ है और कोई पदवी नहीं है;

(4) चौथे मुनि को मति-श्रुत-अविध-मन:पर्ययज्ञान का उघाड़ है और आचार्य पदवी है।

विचारिये — चारों भावलिङ्गी मुनि हैं; ज्ञान का उघाड़ कम -ज्यादा होने पर भी, यह चारों मुनि एक ही साथ श्रेणी माँडे वो नौवें गुणस्थान में शुद्धि चारों मुनियों को समान ही होती है तो वह ज्ञान का उघाड़ और पदवी क्या कार्यकारी रहा? कुछ भी नहीं। एकमात्र अपने त्रिकाली स्वभाव की एकाग्रता ही श्रेणी के लिए कार्यकारी है।

[अ] जैसे—शिवभूति मुनि को ज्ञान का अल्प उघाड़ होने पर भी, आत्मा में स्थिरता करके अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान की प्राप्ति हुई।

[आ] दूसरी तरफ अवधिज्ञान-मन:पर्ययज्ञान में उपयोग हो तो श्रेणी नहीं माँड सकता है। इससे सिद्ध हुआ श्रेणी माँडने में भी परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की, पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री की किञ्चित्मात्र आवश्यकता नहीं है; एकमात्र आत्मा में एकाग्रता की ही आवश्यकता है।

प्रश्न 8- क्या सिद्धदशा प्राप्त करने के लिए भी पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की किञ्चित्मात्र आवश्यकता नहीं है?

उत्तर - नहीं है - विचारिये! सिद्धशिला 45 लाख योजन की है; उसके नीचे 25 लाख योजन जमीन है और 20 लाख योजन पानी

ही है। भगवान की वाणी में आया है कि सिद्धशिला में कोई जगह सुई की नोंक के बराबर भी खाली नहीं है, जहाँ पर अनन्त सिद्ध विराजमान न हों।

यहाँ शङ्का होती है कि जहाँ पर जमीन है, वहाँ पर तो अनन्त सिद्ध समश्रेणी से लोकाग्र में विराजमान हैं, यह बात समझ में आती है परन्तु जहाँ अनादि-अनन्त पानी है, वहाँ पर भी अनन्त सिद्ध विराजमान हैं, यह बात समझ में नहीं आती क्योंकि जीव, मोक्ष में जाता है, वह समश्रेणी से ही जाता है; जहाँ पानी ही पानी है, वहाँ से मोक्ष कैसे होगा?

समाधान इस प्रकार है - कोई पूर्व भव का बैरी देव, भावलिङ्गी मुनि को उठाकर, जैसे धोबी कपड़े पछाड़ता है, वैसे उठाकर समुद्र में पछाड़े, वे वहाँ पर ही केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में चले जाते हैं।

देखो! बाहर का संयोग कैसा है! इसलिए सिद्धदशा प्राप्त करने के लिए भी पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री और परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की जरूरत नहीं है।

हे भव्य! तू अनादि-अनन्त भगवानरूप शक्ति का पिण्ड है। उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शनादि, श्रेणी और सिद्धदशा की प्राप्ति होती है; परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ से, पुण्यभाव, पुण्यकर्म और पुण्य की पदवी से नहीं। ऐसा जानकर एक बार अपनी ओर दृष्टि करे तो तुझे पता चलेगा; किसी से भी पूछना नहीं पड़ेगा।

प्रश्न 9- फिर अपने हित के लिए क्या करें?

उत्तर - अपने कल्याण के लिए पुण्यकर्म, पुण्यभाव, पुण्य की सामग्री तथा परलक्ष्यी ज्ञान के उघाड़ की रुचि छोड़कर, अपने त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का आश्रय ले तो तभी आत्मा में धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता हो जाएगी।

9

श्रीप्रवचनसार 93 वीं गाथा का रहस्य

दिव्यध्वनि का सार

प्रश्न 1- 'अर्थ' का मतलब क्या है ?

उत्तर - (1) अर्थ, अर्थात् प्रयोजन। दु:ख का अभाव और सुख की प्राप्ति - यह ही प्रत्येक जीव का प्रयोजन है; और कुछ नहीं है।

(2) प्रकृष्टरूप से अपनी आत्मा में जुड़ान करना, उसका नाम प्रयोजन है।

प्रश्न 2- अपनी आत्मा में प्रकृष्टरूप से जुड़ान करने से क्या होता है ?

उत्तर - अपनी आत्मा में प्रकृष्टरूप से जुड़ान करने से अनादि काल से जो समय-समय भावमरण हो रहा था, उसका अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर, क्रमश: मोक्ष होता है।

प्रश्न 3- अर्थ का दूसरा अर्थ क्या है ?

उत्तर - श्रीप्रवचनसार, गाथा 93 में लिखा है कि-

'अत्थो खलु दव्वमओ, दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।
तेहिं पुणों पज्जाया, पज्जयमूढ़ा परसमया॥93॥

है अर्थ द्रव्य स्वरूप, गुणात्मक कहा है द्रव्य को।
अरू द्रव्य-गुणों से पर्यायों, पर्ययमूढ़ परसमय है॥93॥

अर्थात्, अर्थ, द्रव्यस्वरूप है; द्रव्यों को गुणरूप कहा गया है;

द्रव्य और गुणों से पर्यायें होती हैं; पर्यायमूढ़जीव परसमय है। देखो! यहाँ अर्थ को, द्रव्यस्वरूप है – ऐसा कहा है।

प्रश्न 4– क्या द्रव्य ही अर्थ है?

उत्तर – श्रीप्रवचनसार, गाथा 87 में द्रव्य–गुण और पर्याय – तीनों को अर्थ नाम से कहा है।

प्रश्न 5– श्री प्रवचनसार में द्रव्य को अर्थ क्यों कहा है?

उत्तर – द्रव्य, अपने गुणों और पर्यायों को प्राप्त होते हैं; इसलिए द्रव्य को अर्थ कहा है।

प्रश्न 6– यदि द्रव्य, अपने गुणों और पर्यायों को प्राप्त न करे, अर्थात् दूसरों को प्राप्त करे तो क्या होगा?

उत्तर – अनर्थ हो जावेगा, क्योंकि कोई भी द्रव्य, अपने गुण –पर्यायों को छोड़कर नहीं जाता है परन्तु उल्टी मान्यता के कारण अभिप्राय में अनर्थ हो जावेगा।

प्रश्न 7– श्री प्रवचनसार में गुण को अर्थ क्यों कहा है?

उत्तर – गुण, जो अपने आश्रयभूत द्रव्य और पर्यायों को प्राप्त होते हैं; इसलिए गुण को अर्थ कहा है।

प्रश्न 8– यदि गुण अपने आश्रयभूत द्रव्य और पर्याय को प्राप्त न हो और गुण, दूसरे द्रव्यों और पर्यायों को प्राप्त हो तो क्या होगा?

उत्तर – वास्तव में गुण सदैव अपने आश्रयभूत द्रव्य और पर्यायों को ही प्राप्त होते हैं; अन्य को नहीं, परन्तु कोई ऐसा कहे कि गुण, दूसरे द्रव्य और पर्यायों को प्राप्त होते हैं तो उसकी मान्यता में अनर्थ हो जावेगा। वह चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद की सैर करेगा।

प्रश्न 9- श्री प्रवचनसार में पर्याय को अर्थ क्यों कहा है ?

उत्तर - पर्याय, द्रव्य-गुण को क्रमपरिणाम से प्राप्त करती है; इसलिए पर्याय को अर्थ कहा है।

प्रश्न 10- यदि पर्याय, द्रव्य-गुण को क्रमपरिणाम से प्राप्त न करे तो क्या होगा ?

उत्तर - वास्तव में पर्याय, द्रव्य-गुणों को क्रमपरिणाम से ही प्राप्त करती है; अन्य को नहीं परन्तु कोई उल्टा कहे, तो उसकी मान्यता में अनर्थ हो जावेगा।

प्रश्न 11- द्रव्य-गुण-पर्याय को 'अर्थ' कहा, इससे हमको क्या लाभ है ?

उत्तर - प्रत्येक द्रव्य, अपने-अपने गुण-पर्यायों में ही वर्तता था, वर्त रहा है, और वर्तता रहेगा — ऐसा जाने-माने तो तुरन्त मोह का अभाव होकर, सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर, क्रम से मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाता है।

प्रश्न 12- प्रत्येक द्रव्य, अपने-अपने गुण-पर्यायों में ही भूत-भविष्य-वर्तमान में वर्त रहा है, वर्तेगा और वर्तता रहा है - यह सिद्धान्त शास्त्रों में कहाँ-कहाँ आया है ?

उत्तर - (1) श्रीमोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 52 में लिखा है कि 'अनादि-निधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी-अपनी मर्यादा लिए परिणमें हैं, कोई किसी को परिणमाया परिणमता नाहीं, और परिणमाने का भाव, निगोद का कारण है।'

(2) श्रीकार्तिकेयानुप्रेक्षा, गाथा 219 में लिखा है कि 'समस्त द्रव्य अपने-अपने परिणामरूप द्रव्य-क्षेत्र-काल सामग्री को प्राप्त करके, स्वयं ही भावरूप परिणमित होते हैं, उन्हें कोई रोक नहीं सकता है।'

(3) 'तेहिं पुणों पज्जाया' श्रीप्रवचनसार, गाथा 93 में द्रव्य और गुणों से पर्यायें होती हैं।

(4) लोक में सर्वत्र जो जितने पदार्थ हैं, वे सब निश्चय को प्राप्त होने से सुन्दरता को प्राप्त होते हैं – वे सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को चुम्बन करते हैं – स्पर्श करते हैं, तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते। अत्यन्त निकट एकक्षेत्रावगाहरूप से तिष्ट रहे हैं, तथापि सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते हैं; पररूप परिणमन न करने से अनन्त व्यक्तिता नष्ट नहीं होती; इसलिए वे टंकोत्कीर्ण की भाँति स्थित रहते हैं और समस्त विरुद्ध कार्य तथा अविरुद्ध कार्य – दोनों की हेतुता से वे विश्व का सदा उपकार करते हैं, अर्थात् टिकाये रखते हैं। *[श्रीसमयसार, गाथा 3 की टीका से]*

(5) वस्तु की मालिक वस्तु है, जो मालिक है, वही कर्ता है।

फिर मालिक के मालिक बनकर क्यों नीति न्याय गवाँते हो।

(6) श्रीसमयसार, गाथा 103 तथा 372 महासिद्धान्त की गाथा हैं, इसमें भी वही लिखा है तथा श्रीसमयसार, कलश 200 तथा 201 देखो।

(7) जड़-चेतन की सब परिणति प्रभु, अपने-अपने में होती है, – ऐसा पूजा में भी आया है।

(8) अस्तित्व-वस्तुत्व-द्रव्यत्वगुण बताता है कि वस्तु, ध्रौव्य रहती हुई, अपना-अपना प्रयोजनभूत कार्य करती हुई, निरन्तर बदलती रहती है।

(9) भगवान उमास्वामी ने 'सत्द्रव्यलक्षणम्; उत्पाद-व्यय -ध्रौव्ययुक्तं सत्' – यह महासिद्धान्त बताया है।

प्रश्न 13- जो जिनेन्द्रकथित इस वस्तुस्वरूप को नहीं मानता, उसे भगवान ने क्या-क्या कहा है ?

उत्तर - (1) श्रीसमयसार, कलश 55 वें में 'महामोह अज्ञान-अन्धकार है; उसका सुलटना दुर्निवार है' तथा मिथ्यादृष्टि कहा है।

(2) श्रीप्रवचनसार में 'पद-पद पर धोखा खाता है' - ऐसा कहा है।

(3) श्रीपुरुषार्थसिद्धयुपाय में 'तस्य देशना नास्ति' कहा है।

प्रश्न 14- जो पर्याय उत्पन्न होती है, तब किसको याद रखे तो संसार का अभाव होकर मोक्ष की प्राप्ति हो ?

उत्तर - श्रीप्रवचनसार का 'तेहि पुणों पज्जाया', अर्थात् द्रव्य और गुणों से पर्यायें होती हैं; पर से नहीं - ऐसा जाने तो संसार का अभाव होकर मोक्ष की प्राप्ति हो।

प्रश्न 15- (1) समयसार से ज्ञान हुआ। (2) दर्शनमोहनीय के क्षय से क्षायिकसम्यक्त्व हुआ। (3) उसने गाली दी तो गुस्सा आया। (4) जीव विकार करे तो नया कर्मबन्ध होता है। (5) दिव्यध्वनि से ज्ञान होता है। (6) ज्ञेयों के जानने से ज्ञान की प्राप्ति होती है - आदि कथनों में 'तेहिं पुणों पज्जाया' का सच्चा ज्ञान कब होवे ?

उत्तर - जैसे, '**समयसार से ज्ञान हुआ**' 'तेहिं पुणों पज्जाया' से पता चला कि ज्ञान, आत्मा के ज्ञानगुण से आया; समयसार से नहीं। ऐसा जानने से ज्ञान, सुख, सम्यग्दर्शनादि पर से आते हैं - ऐसी खोटी बुद्धि का अभाव हो तो 'तेहिं पुणो पज्जाया' को जाना। शेष प्रश्नों के उत्तर इसी के अनुसार समझना चाहिए।

प्रश्न 16- द्रव्य-गुण तो शुद्ध है, फिर पर्याय में अशुद्धि कहाँ से आयी ?

उत्तर – द्रव्य–गुण तो अनादि–अनन्त शुद्ध हैं; उस पर लक्ष्य नहीं करने से पर्याय में अशुद्धि उत्पन्न होती है और अपने द्रव्य–गुणों के अभेद पिण्ड पर लक्ष्य करे तो शुद्धपर्याय प्रगट होती है; पर से या द्रव्यकर्मों से (कर्मों के अभाव से) उत्पन्न नहीं होती है।

प्रश्न 17– 'पज्जयमूढ़ा हि पर समया', अर्थात् पर्यायमूढ़, पर समय है, इससे क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – जब आदिनाथ भगवान ने दीक्षा ली तो मारीच ने भी ली थी। उसने भगवान का विरोध किया, ऐसा जानकर अज्ञानी, द्वेष करता है। वही मारीच, महावीर से पूर्व दशवें भव में भयंकर क्रूर शेर बना, जिसको देखकर जङ्गल के जीव थर्राते थे। उसकी क्रूरता देखकर अज्ञानी को द्वेष होता है। शेर पर्याय में सम्यग्दर्शन हुआ तो अज्ञानी को उसके प्रति राग आता है। चौबीसवाँ तीर्थङ्कर होने पर पूज्य कहलाया तो अज्ञानी को शुभराग आता है।

मारीच को देखकर और शेर पर्याय में द्वेष तथा शेर पर्याय में सम्यग्दर्शन होने पर राग, महावीर होने पर अतिराग किया; इसलिए मिथ्यादृष्टि को पर्यायदृष्टि होने से राग–द्वेष ही उत्पन्न होता है। मारीच से लेकर महावीरपर्यन्त सलंगपने देखो तो मारीच, द्वेष के योग्य नहीं है; शेर द्वेष और राग करने योग्य नहीं है – ऐसा जाने तो राग–द्वेष उत्पन्न नहीं होगा। ज्ञानी को सदैव स्वभावदृष्टि ही होती है; इसलिए राग–द्वेष उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्रश्न 18– द्रव्यदृष्टि, सो सम्यग्दृष्टि और पर्यायदृष्टि, सो मिथ्यादृष्टि का दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उत्तर – (1) एक कुत्ता है, उसे कोढ़ हो रहा है। उसमें बहुत दुर्गन्ध आ रही है; अज्ञानी उस पर द्वेष करता है। कुत्ता मरकर मन्दकषाय के कारण रानी बनी, उसको देखकर अज्ञानी, राग करता

है। रानी ने जवानी के नशे में मदिरापान किया और मरकर नरक में गयी; अज्ञानी द्वेष करता है। अज्ञानी, मात्र इस जीव की अवस्था को लक्ष्य में लेता है तो राग-द्वेष होता है। यदि सर्व अवस्थाओं में 'यह का वह जीव है' - ऐसा माने तो किसी के प्रति द्वेष और किसी के प्रति राग नहीं होगा; मात्र वे सब ज्ञान का ज्ञेय बनेंगे। यदि भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों अवस्थाओं में नित्यता का विचार करे तो राग और द्वेष उत्पन्न नहीं होगा, बल्कि शान्ति की प्राप्ति होगी।

(2) एक राजा था। उसका एक प्रधान बड़ा ज्ञानी था। राजा ने एक बार प्रधानसहित सबको भोजन पर आमन्त्रित किया। राजा ने सबसे पूछा - रसोई कैसी है? सबने कहा, महाराज! बहुत उत्तम, स्वादिष्ट है। राजा ने प्रधान से पूछा, 'प्रधानजी! रसोई कैसी है?' प्रधान ने कहा, 'जैसी होती है, वैसी है।'

एक बार प्रधानसहित राजा, घोड़े पर सवार होकर कहीं जा रहे थे। रास्ते में गन्दे नाले का पानी सड़ने के कारण बहुत दुर्गन्ध आ रही थी, निकलना भी कठिन था। राजा ने कहा, प्रधानजी! बड़ी दुर्गन्ध आ रही है परन्तु प्रधान ने कुछ उत्तर नहीं दिया। प्रधान ने विचारा - राजा बार-बार पूछता है, इसे बोधपाठ देना चाहिए। प्रधान ने गन्दे नाले का दुर्गन्धित पानी लाकर, उसमे निर्मली डालकर साफ करके, उसमें केशर आदि मिलाकर सुगन्धित बना दिया और सबसे कह दिया कि - राजा पानी माँगे तो कोई मत देना, मैं ही दूँगा। खाना खाने के बीच में राजा ने पानी माँगा, तब प्रधानजी स्वयं लाये। राजा, सुगन्धित पानी पीकर दङ्ग रह गया और राजा ने विचारा कि प्रधान इतना स्वादिष्ट भोजन और सुगन्धित पानी पीता है; इसलिए प्रधान ने मेरी रसोई को अच्छा नहीं बताया था।

राजा ने पूछा - प्रधानजी! इतना स्वच्छ और सुगन्धित पानी

कहाँ से लाए हो ? प्रधान ने जवाब दिया – महाराज ! उस सड़े गन्दे नाले का पानी, जिसमें उस दिन दुर्गन्ध आ रही थी, यह पानी मँगवाया था। बाद में उसको स्वच्छ और सुगन्धित बनाया है। पानी की भूत अवस्था, वर्तमानरूप सुगन्धित अवस्था तथा भविष्य की पेशाबरूप अवस्था का लक्ष्य छोड़कर, मात्र पुद्गल की नित्यता का विचार करे तो जीव में वीतरागता आये बिना नहीं रह सकती।

अत: मारीच, शेर, नन्दराजा, महावीर को अवस्था से देखने पर अज्ञानी को राग-द्वेष उत्पन्न होता है और वही का वही आत्मा है – ऐसी नित्यता को देखे तो वीतरागता की प्राप्ति तुरन्त हो जाती है।

अणुमात्र भी रागादि का सद्भाव है जिस जीव को।
वो सर्व आगम धर भले ही, जानता नहिं आत्मा को ॥201॥

नहिं जानता जहं आत्मा को, अनआत्म भी नहीं जानता।
वो क्यों हि होय सुदृष्टि जो, जीव अजीव को नहिं जानता ॥202॥

तात्पर्य यह है कि मिथ्यादृष्टि, मात्र पर्याय को ही देखता है और दु:खी होता है। यदि दु:ख का अभाव करना हो तो स्वभाव को देखो तो शान्ति आवेगी। इसलिए 'पज्जयमूढ़ाहि परसमया' ऐसा श्रीप्रवचनसार में कहा है। स्वभावदृष्टि, सो सम्यग्दृष्टि है; इसलिए अपने स्वभाव का आश्रय लेना प्रत्येक पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

प्रश्न 19- सुखी होने का, ज्ञानी और परमात्मा बनने का उपाय, श्रीसमयसार 50 वें कलश में क्या बताया है ?

उत्तर – यह 50 वें कलश का रहस्य समझ जावे तो जीव और पुद्गल में कर्ता-कर्मभाव है – ऐसी खोटी बुद्धि का अभाव होते ही सुखीपने का और ज्ञानीपने का अनुभव होता है और जैसे-जैसे अपने में लीन होता जाता है, वैसे-वैसे परमात्मा बनता जाता है।

प्रश्न 20- इस कलश में क्या कहा है ?

उत्तर -

ज्ञानी जानन्नपीमां स्वपरपरिणतिं पुद्गलश्चाप्यजानन्
व्याप्तृव्याप्यत्वमंतः कलयितुमसहौ नित्यमत्यंतभेदात्।
अज्ञानात्कर्तृकर्मभ्रममतिरनयोर्भाति तावन्न यावत्
विज्ञानार्चिश्चकास्ति क्रकचवददयं भेदमुत्पाद्य सद्यः ॥50॥

अर्थात्, ज्ञानी तो अपनी और पर की परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है और पुद्गलद्रव्य अपनी तथा पर की परिणति को न जानता हुआ प्रवर्तता है; इस प्रकार उनमें सदा अत्यन्त भेद होने से (दोनों भिन्न द्रव्य होने से), वे दोनों परस्पर अन्तरङ्ग में व्याप्य -व्यापकभाव को प्राप्त होने में असमर्थ हैं। जीव-पुद्गल के कर्ताकर्मभाव है, ऐसी भ्रमबुद्धि अज्ञान के कारण वहाँ तक भासित होती है कि जहाँ तक (भेदज्ञान करनेवाली) विज्ञानज्योति करवत की भाँति निर्दयता से (उग्रता से) जीव-पुद्गल का तत्काल भेद उत्पन्न करके प्रकाशित नहीं होती।

प्रश्न 21- इस कलश के बोलों में क्या घटित होता है ?

उत्तर - यह हमारा लड़का है, मैं इसका पालन-पोषण करता हूँ किन्तु मेरी आज्ञा का जरा भी पालन नहीं करता - तो देखो श्री अमृतचन्द्राचार्य का यह सिद्धान्त कि 'ज्ञानी तो अपनी और पर की परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है' - यह याद आते ही शान्ति आ जावेगी क्योंकि 'सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहनेवाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन करते हैं-स्पर्श करते हैं, तथापि वह द्रव्य, परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते।'

तात्पर्य यह है कि संसार में जाति अपेक्षा छह द्रव्य हैं; उनमें अनन्त गुण और पर्यायें हैं; पर्याय प्रति समय बदलती रहती है; कोई

समय ऐसा नहीं, जिस समय किसी भी द्रव्य की कोई पर्याय न बदलती हो। जब कायम रहते हुए, पर्याय का निरन्तर बदलना स्वाभाविक है तो मैं किसी में कुछ कर सकता हूँ या मेरा कोई करे; इस प्रश्न के लिए अवकाश ही नहीं रहता। निगोद से लगाकर, सिद्धभगवान तक सबने ज्ञान ही किया है, ज्ञान ही करेंगे किन्तु मात्र मिथ्यादृष्टि की मान्यता में फेर है। मात्र ज्ञान के अलावा जीव, पर में कुछ हेर-फेर नहीं कर सकता है - ऐसा यह महासिद्धान्त 'ज्ञानी तो अपनी ओर पर की परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है।' उसको यथार्थतया समझकर अन्तर में परिणमन करे तो अपूर्व शान्ति मिलेगी।

प्रश्न 22- 'ज्ञानी तो अपनी और पर की परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है' इस वाक्य में से कितने बोल निकलते हैं?

उत्तर - पाँच बोल निकलते हैं। (1) ज्ञानी; (2) अपनी परिणति एकदेश; (3) अपनी परिणति पूर्ण; (4) पर; (5) परपरिणति।

प्रश्न 23- ज्ञानी आदि पाँच बोलों पर (1) नौ पदार्थ, (2) पाँच भाव, (3) चार काल, (4) देव-गुरु-धर्म, और (5) संयोगादि पाँच बोल लगाकर बताओ?

उत्तर - (1) ज्ञानी= (1) जीवतत्त्व, (2) पारिणामिकभाव, (3) अनादि-अनन्त, (4) परम सुखदायक, (5) धर्मस्वरूप आत्मा, और स्वभाव त्रिकाली है।

(2) अपनी परिणति एकदेश = (1) संवर-निर्जरातत्त्व, (2) औपशमिक, क्षायोपशमिक, सम्यग्दर्शन की अपेक्षा क्षायिकभाव, (3) सादि-सान्त, (4) एकदेश सुखदायक, (5) गुरु और स्वभाव के साधन हैं।

(3) अपनी परिणति पूर्ण = (1) मोक्षतत्त्व, (2) क्षायिकभाव, (3) सादि-अनन्त काल, (4) पूर्ण सुखदायक, (5) देव और सिद्धत्व है।

(4) पर = (1) अजीवतत्त्व, (2) पाँच भावों में से कोई भाव नहीं, (3) अनादि-अनन्त, (4) न सुखदायक, न दुःखदायक, (5) देव-गुरु-धर्म में से कोई नहीं और संयोग है।

(5) पर परिणति = (1) आस्रव-बंध-पुण्य-पापतत्त्व, (2) औदयिकभाव, (3) अनादि सान्त, (4) दुःखदायक, (5) देव-गुरु-धर्म में से कोई नहीं और संयोगीभाव है।

प्रश्न 24- 'पुद्गल तो अपनी और पर की परिणति को न जानता हुआ प्रवर्तता है' इस वाक्य में से कितने बोल निकलते हैं ?

उत्तर - इसमें से भी पाँच बोल निकलते हैं — (1) पुद्गल; (2) अपनी परिणति; (3) पर; (4) परपरिणति एकदेश; (5) पर परिणति पूर्ण।

प्रश्न 25- पुद्गलादि पाँच बोलों में सात तत्त्व लगाकर समझाइये ?

उत्तर - (1) पुद्गल = (1) अजीवतत्त्व, (2) जीवरूप पाँच भाव में से कोई भाव नहीं, (3) अनादि-अनन्त, (4) न सुखदायक, न दुःखदायक, और (5) संयोग है।

(2) अपनी परिणति = (1) आस्रव-बन्धतत्त्व एक, (2) औदयिकभाव, (3) अनादि-सान्त, (4) दुःखदायक, और (5) संयोगीभाव है।

(3) पर = (1) जीवतत्त्व, (2) पारिणामिकभाव, (3) अनादि-अनन्त, (4) परम सुखदायक, और (5) स्वभाव त्रिकाली।

(4) पर परिणति एकदेश = (1) संवर-निर्जरातत्त्व, (2) औपशमिकधर्म का क्षायोपशमिक और सम्यग्दर्शन की अपेक्षा क्षायिकभाव, (3) सादि-सान्त, (4) एकदेश सुखदायक, और (5) स्वभाव के साधन हैं।

(5) पर परिणति पूर्ण = (1) मोक्षतत्त्व, (2) क्षायिकभाव, (3) सादि-अनन्त, (4) परम सुखदायक, और (5) सिद्धत्व है।

प्रश्न 26- श्रीसमयसार 50 वें कलश से क्या सार ग्रहण करना चाहिए ?

उत्तर - (1) कोई हमारी निन्दा करता है या प्रशंसा करता है;

(2) कोई गाली देता है, कोई मिठाई देता है;

(3) कोई गर्दन काटता है, कोई स्तुति करता है;

(4) घर में माल आता है या चोरी हो जाती है;

(5) शरीर ठीक रहता है या भयानक बीमारी पैदा हो जाती है - इत्यादि जितने भी प्रश्न उपस्थित हों तो भगवान अमृतचन्दाचार्य का सिद्धान्त 'ज्ञानी तो अपनी और पर की परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है' - ऐसा माने तो शान्ति आ जावेगी।

तीर्थङ्कर-गणधरादि एक ही बात बतलाते हैं क्योंकि अनन्त ज्ञानियों का एक मत होता है और एक अज्ञानी के अनन्त मत होते हैं। समस्त ज्ञानियों का एक मत है कि 'सत् द्रव्य लक्षणम' 'उत्पाद -व्यय-ध्रौव्यं युक्तं सत्।' 'अनादि-निधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी -अपनी मर्यादा लिए परिणमै हैं, कोई किसी का परिणमाया परिणमता नाहीं' और दूसरों को परिणमाने का भाव, निगोद का कारण है। छहढाला में कहा है कि 'पुद्गल-नभ-धर्म-अधर्म-काल, इनतें न्यारी है जीव चाल' 'रागादि प्रगट ये दुःख दैन, तिन ही को सेवत गिनत चैन' इत्यादि।

हे आत्मा! तू जीव है; तेरा किसी भी परद्रव्य से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। पुण्यभाव से तू जो अपना भला होना मानता है, वह जहर है – यह सबसे बड़ा मिथ्यात्व है; इसलिए पुण्यभाव से भी दृष्टि उठा और अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को जान।

प्रश्न 27- हमारे जीवन में कोई अनुकूल या प्रतिकूल संयोग आवे तो क्या करें?

उत्तर - (1) वास्तव में कोई संयोग अनुकूल-प्रतिकूल है ही नहीं; अपनी मिथ्या मान्यता ही प्रतिकूल है।

(2) तुम्हारे जीवन में कैसा ही अनुकूल-प्रतिकूल संयोग हो, उस समय तुम, अरहन्त और सिद्ध जो कार्य करते हैं, वही कार्य करो, अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा बनो तो जीवन में शान्ति आ जावेगी। यही बात 50 वें कलश में है।

प्रश्न 28- ज्ञानी के कितने अर्थ है और उसका शास्त्राधार क्या है?

उत्तर - तीन अर्थ हैं – जहाँ जैसा हो, वहाँ वैसा जानना। वैसे विशेषरूप से दूसरे नम्बर की बात शास्त्रों में आती है।

(1) 'जिसमें ज्ञान हो, वह ज्ञानी' – इस अपेक्षा निगोद से लेकर सिद्धशिला तक सब जीव, ज्ञानी।

(2) 'सम्यग्ज्ञानी, सो ज्ञानी; मिथ्याज्ञानी, सो अज्ञानी।' – इस अपेक्षा तीसरे गुणस्थान तक अज्ञानी और चौथे गुणस्थान से ऊपर के सब, ज्ञानी हैं।

(3) 'सम्पूर्ण ज्ञानी, सो ज्ञानी; अपूर्ण ज्ञानवाले अज्ञानी' – इस अपेक्षा चार ज्ञानधारी गणधर भी अज्ञानी हैं; मात्र अरहन्त-सिद्ध ज्ञानी हैं।

ये भेद सभी शास्त्रों में आये हैं। मुख्यरूप में श्रीसमयसार, गाथा 177-178 के भावार्थ में तथा गाथा 320 के भावार्थ में इन ज्ञानी के तीन प्रकारों का वर्णन किया है।

प्रश्न 29- श्रीसमयसार 50 वें कलश में दो बोल क्या बताते हैं ?

उत्तर - (1) ज्ञानी तो अपनी और पर की परिणति जानता हुआ प्रवर्तता है। (2) पुद्गल, अपनी और पर की परिणति न जानता हुआ प्रवर्तता है।

प्रश्न 30- इन दो बोलों में क्या बात आ जाती है ?

उत्तर - भेदविज्ञान की सम्पूर्ण बात आ जाती है।

————

10

सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति का उपाय

प्रश्न 1- श्रीसमयसार, गाथा 38 में सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति का क्या उपाय बताया है?

उत्तर -

मैं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञान दृग हूँ यथार्थ से।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणु मात्र नहीं अरे॥38॥

अर्थात्, दर्शन ज्ञान-चारित्ररूप परिणत आत्मा यह जानता है कि मैं निश्चय से एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन-ज्ञानमय हूँ, सदा अरूपी हूँ; किञ्चितमात्र भी परद्रव्य, अर्थात् परमाणुमात्र भी मेरा नहीं - यह निश्चय है।

प्रश्न 2- इस गाथा का तात्पर्य क्या है?

उत्तर - (1) निगोद से लगाकर, द्रव्यलिङ्गी मुनि तक अनादि काल से एक-एक समय करके अपनी भ्रमात्मक बुद्धि के कारण क्रोध, मान, माया, लोभ, पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, देह, चार गतियों में, आठ द्रव्यकर्मों में, नोकर्म में (परवस्तुओं में), धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक, लोकप्रमाण असंख्यात काल आदि द्रव्यों में तथा अपनी आत्मा को छोड़कर अन्य आत्माओं में अपनेपने की खोटी बुद्धि से पागल हो रहे हैं। यह मैं ही हूँ, मैं इनका कर्ता हूँ, ये मेरे काम हैं, मैं हूँ सो ये ही हैं, ये हैं सो मैं हूँ आदि भूत-भविष्य-वर्तमान विकल्पों में पागल होने से अत्यन्त अप्रतिबुद्ध था।

(2) तब धर्मी (ज्ञानी) ने कहा, हे भव्य! नोकर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म से तेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है; तू क्यों व्यर्थ में पागल बना हुआ है। तू तो एक शुद्ध-दर्शन-ज्ञानमयी-सदा अरूपी भगवान आत्मा है - ऐसा सुनकर अपने स्वभाव की ओर दृष्टि दी तो इसे ऐसा अनुभव हुआ 'मैं चैतन्यमात्र ज्योतिस्वरूप आत्मा हूँ, यह मेरे स्वसंवेदन से ही प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन -ज्ञानमयी हूँ, सदा अरूपी हूँ - यह स्वसंवेदन अनुभवी ज्ञानी ही जानते हैं;' अज्ञानियों को इनका पता नहीं है। जो जीव ऐसा अनुभव करता है, उसी जीव ने प्रसन्नचित्त से भगवान आत्मा की बात सुनी है, वह नियम से मोक्ष को प्राप्त होता है। इसकी महिमा ज्ञानी ही जानते हैं, अज्ञानी नहीं जानते। यह 38 वीं गाथा का तात्पर्य है।

प्रश्न 3- क्या करें तो अनादि काल का पागलपन समाप्त हो?

उत्तर - (1) मेरी आत्मा को छोड़कर बाकी अनन्त आत्माएँ हैं; अनन्तानन्त पुद्गल हैं; धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोक-प्रमाण असंख्यात कालद्रव्य हैं; इनसे तो मेरा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न था, न है और न होगा।

(2) पर्याय में जो शुभाशुभ विकारीभाव हैं, वह एक समय के हैं। शुभाशुभभावों में एकत्वबुद्धि, संसार है, वह एक समय का ही है; मैं स्वयं अनादि-अनन्त हूँ - ऐसा जाने तो उसी समय पागलपन मिट जाता है और तुरन्त धर्म की प्राप्ति हो जाती है। फिर जैसे-जैसे अपने स्वभाव में एकाग्रता करता है, क्रमशः परिपूर्णता की प्राप्ति कर स्वयं ज्ञानघनरूप अमृत का पिण्ड बन जाता है।

प्रश्न 4- श्रीसमयसार की 73वीं गाथा में धर्म की प्राप्ति का क्या उपाय बताया है?

उत्तर -

मैं एक शुद्ध ममत्वहीन, रु ज्ञान दर्शन पूर्ण हूँ।
इसमें रहूँ स्थित लीन इसमें, शीघ्र ये सब क्षय करूँ ॥73॥

भावार्थ - (1) 'मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ; ममतारहित हूँ; ज्ञान-दर्शन से परिपूर्ण हूँ; ऐसा अभेद स्वभाव की ओर दृष्टि करे तो तुरन्त संसार का अभाव और धर्म की प्राप्ति होती है।' यह ही एकमात्र उपाय क्रोधादि के क्षय का है; अन्य उपाय नहीं है।

(2) श्रीसमयसार, कर्ता-कर्म अधिकार की 69-70 गाथा में कहा है कि अभेद अनन्त गुणों का आत्मा के साथ तादाम्यसिद्धसम्बन्ध है, उसकी ओर दृष्टि करे तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होती है। दया-दान-पूजा-यात्रा-महाव्रत-अणुव्रतादि का संयोगसिद्ध-सम्बन्ध है, इनसे अपनापना माने तो पर्याय में मिथ्यादर्शन-ज्ञान -चारित्र की दृढ़ता होती है।

(3) शुभभाव, जो संसार का कारण है, उसको अज्ञानी, दिगम्बर-धर्म धारण करने पर भी, मोक्ष का कारण मानता है। श्रीकुन्दकुन्द आचार्य ने गाथा 72-74 में शुभभावों को अपवित्र, घिनावना, मल -मैलरूप, जड़स्वभावी, अनित्य, अशरण, अध्रुव, वर्तमान में दुःखदायी और भविष्य में भी दुःखदायी कहा है - ऐसा जाने-माने और मैं 'एक शुद्ध-ममत्वहीन-ज्ञानदर्शन पूर्ण हूँ' - ऐसे स्वभाव का आश्रय ले, तो धर्म की प्राप्ति होती है। यह धर्म की प्राप्ति का उपाय, गाथा 73 में बताया है।

प्रश्न 5- श्रीप्रवचनसार, गाथा 192 में धर्म की प्राप्ति का क्या उपाय बताया है ?

उत्तर -

ए रीत दर्शन ज्ञान है, इन्द्रिय-अतीत महार्थ है।
मानूँ हूँ-आलम्बन रहित, शुद्ध जीव निश्चल ध्रुव है ॥192॥

भावार्थ - (1-2) ज्ञान-दर्शन से तन्मयी; परपदार्थों से अतन्मयी हूँ। (3) अतीन्द्रिय महापदार्थ; इन्द्रियात्मक सब परपदार्थ हैं। (4) अचल = चलायमान सर्वज्ञेयों पर्यायों से भिन्न हूँ, क्योंकि वह चलरूप हैं। (5) निरालम्ब = ज्ञेयरूप सब परद्रव्यों से भिन्न हूँ।

प्रश्न 6- श्रीप्रवचनसार, गाथा 192 का रहस्य क्या है?

उत्तर - आचार्य भगवान कहते हैं कि मैं आत्मा को '(1) दर्शनस्वरूप, (2) ज्ञानस्वरूप, (3) अतीन्द्रिय महापदार्थ, (4) अचल, (5) निरालम्ब मानता हूँ-जानता हूँ; इसलिए आत्मा एक है; एक है तो शुद्ध है; शुद्ध है तो ध्रुव है; ध्रुव है तो एकमात्र वह ही प्राप्त करने योग्य है। लक्ष्मी, शरीर, संयोगों में सुख-दुःख की कल्पना, शत्रु-मित्रपना, यह मूर्खता है। अज्ञानी, लक्ष्मी आदि की प्राप्ति में लगा रहता है, यह अनन्त संसार का कारण है। तू स्वयं को भूलकर पागल हो रहा है। एक बार अपने भगवान आत्मा को देख! तुझे तुरन्त शान्ति की प्राप्ति होगी। इसलिए हे भव्य! एक बार जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा मानकर, अपने स्वभाव का आश्रय ले तो जो भगावन ने जाना है, वैसा ही तू जानेगा और ऐसा अपूर्व आनन्द प्रगट होगा, जिसका वर्णन नहीं हो सकता है।'

प्रश्न 7- आत्मा त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा तो हम जानते हैं, फिर हमें शान्ति क्यों नहीं है?

उत्तर - बिल्कुल नहीं जानते, क्योंकि अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना आत्मा त्रिकाल शुद्ध है-यह जानना तोते जैसा है। देखो! श्रीसमयसार की छठवीं गाथा में भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने 'वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ शुद्ध कहलाता है' - ऐसा बताया है।

वास्तव में अनुभव होने पर ही, मैं संसार मे अकेला था और

मोक्ष मैं भी अकेला हूँ – ऐसा पता चलता है; इसलिए पात्र जीवों को ज्ञानी गुरुओं के सत्सङ्ग में रहकर, सत्य बात का निर्णय करके, अपना आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति करना चाहिए।

प्रश्न 8- ज्ञानों के उपदेश से सावधान हुआ-ऐसा आपने कहा तो क्या द्रव्यलिङ्गी मुनि के उपदेश से धर्म की प्राप्ति नहीं होती है ?

उत्तर – वास्तव में धर्म की प्राप्ति, मात्र आत्मा के आश्रय से ही होती है; धर्मी-अधर्मी के आश्रय से कभी नहीं, परन्तु जैसे- किसी को हीरे-जवाहरात का कार्य सीखना है तो वह जौहरी के पास सीखता है और काम सीख लेने पर इसकी कृपा से सीखा – ऐसा उपचार से कहा जाता है; उसी प्रकार जिसे धर्म की प्राप्ति करनी हो, उसे जिसे धर्म की प्राप्ति हुई हो, उसी से सीखना चाहिए। जब स्वयं अनुभव हो जाता है, तब उपचार से-इनसे हुआ, ऐसा बोलने में आता है। द्रव्यलिङ्गी साधु कभी भी धर्म में निमित्त नहीं हो सकता है। श्रीप्रवचनसार, गाथा 271 में द्रव्यलिङ्गी मुनि को संसारतत्त्व कहा है और वह धर्म प्राप्ति में निमित्त बने, ऐसा कभी नहीं होता है। धर्म की प्राप्ति में निमित्त, ज्ञानी गुरु ही होते हैं; अज्ञानी नहीं हो सकते – ऐसा श्रीनियमसार, गाथा 53 में भी कहा है।

प्रश्न 9- जब धर्म की प्राप्ति आत्मा के आश्रय से ही होती है, तब धर्मी गुरु, निमित्त होता है – ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर – वास्तव में कार्य उस समय पर्याय की योग्यता से ही होता है परन्तु उस समय वहाँ कौन निमित्त है – ऐसा ज्ञान कराया है, क्योंकि जहाँ उपादान होता है, वहाँ निमित्त अवश्य ही होता है – ऐसा वस्तुस्वभाव है। जितने भी निमित्त हैं, वे सब धर्मद्रव्य के समान उदासीन ही हैं।

प्रश्न 10- जब उपादान में कार्य होता है, तब निमित्त होता ही है - ऐसा कहाँ लिखा है ?

उत्तर - (1) श्रीप्रवचनसार, गाथा 95 में बताया है कि 'जो उचित बहिरंग साधनों की सन्निधि के सद्भाव में अनेक अवस्थाएँ करता है' - यहाँ तात्पर्य इतना ही है कि जहाँ कार्य हो, वहाँ उचित निमित्त होता ही है; न हो - ऐसा नहीं होता है।

(2) **'उपादान निज गुण जहाँ, निमित्त पर होय।**
भेदज्ञान प्रमाण विधि, बिरला बूझै कायै॥'

(पण्डित बनारसीदास कृत दोहा)

(3) जहाँ सच्चे कारणरूप उद्यम करे, वहाँ अन्य निमित्तकारण होते ही हैं - ऐसा वस्तुस्वभाव है।

प्रश्न 11- श्रीसमयसार, गाथा 2 में जीव की सिद्धि कितने बोलों से की है ?

उत्तर - जीव कैसा है ? - उसकी सिद्धि सात बोलों से की है।

(1) जीव, उत्पाद-व्यय-ध्रुवरूप सत् है।

(2) जीव, चैतन्यस्वरूप है।

(3) जीव, अपने अनन्त धर्मों में रहता है।

(4) जीव, गुण-पर्यायवन्त है।

(5) जीव, स्व-पर प्रकाशक है।

(6) जीव, अन्य द्रव्यों से भिन्न असाधारण चेतनागुणरूप है।

(7) जीव, सदा अपने स्वरूप में टंकोत्कीर्ण रहता है - ऐसा विशेषोंवाला जो जीवपदार्थ है, उसे ही समय कहा है।

प्रश्न 12- श्रीसमयसार की दूसरी गाथा में स्वसमय किसे कहा है ?

उत्तर - जब जीव का स्वरूप पहचानकर, स्व-पर का भेदज्ञान करे, तब जीव, पर से भिन्न अपने दर्शन-ज्ञानस्वभाव में निश्चल परिणतिरूप होता हुआ, अपने में स्थित होता है, उसे स्वसमय कहा है।

प्रश्न 13- श्रीप्रवचनसार, गाथा 11 में क्या बताया है?

उत्तर - कषायरहित शुद्धोपयोग, धर्म है। जो जीव, रागरहित पूर्ण शुद्धोपयोगरूप परिणमें, वह जीव मोक्षसुख को प्राप्त करता है और धर्मपरिणतिवाला वह ही जीव, जो शुभरागसहित हो तो स्वर्गसुख को प्राप्त करता है; मोक्ष को प्राप्त नहीं करता है; इसलिए शुभराग, हेय है और शुद्धोपयोग ही प्रगट करनेयोग्य उपादेय है।

———

परिशिष्ट-1

दु:ख का मूल : चार प्रकार की इच्छाएँ

प्रश्न 1 - चार प्रकार की इच्छाओं का वर्णन किस शास्त्र से आपने प्रश्नोत्तरों के रूप में संग्रह किया है ?

उत्तर - सत्तास्वरूप से प्रश्नोत्तरों के रूप में संग्रह किया है।

प्रश्न 2 - सत्तास्वरूप से प्रश्नोत्तरों के रूप में क्यों संग्रह किया है ?

उत्तर - अज्ञानी जीव को अपनी भूल का पता लगे तो वह भूलरहित अपने स्वभाव का आश्रय लेकर, भूल का अभाव करके सुखी हो — ऐसी भावना से ही संग्रह किया है।

प्रश्न 3 - इच्छारूप रोग क्या है और कब से है ?

उत्तर - अज्ञान से उत्पन्न होनेवाली इच्छा ही निश्चय से दु:ख है, वह तुम्हें बतलाते हैं। यह संसारी जीव, अनादि से अष्ट कर्म के उदय से उत्पन्न हुई जो अवस्था, उसरूप परिणमित होता है। वहाँ भिन्न परद्रव्य, संयोगरूप परद्रव्य, विभावपरिणाम तथा ज्ञेय श्रुतज्ञान के षड्रूप भावपर्याय के धर्म, उनके साथ अहंकार-ममकाररूप कल्पना करके, परद्रव्यों को मिथ्या इष्ट-अनिष्टरूप मानकर, मोह-राग-द्वेष के वशीभूत होकर किसी परद्रव्य को आपरूप मान लेता है। जिसे इष्टरूप मान लेता है, उसे ग्रहण करना चाहता है तथा जिसे पररूप-अनिष्ट मान लेता है, उसे दूर करना चाहता है; इस प्रकार

जीव को अनादि काल से एक इच्छारूप रोग अन्तरङ्ग में शक्तिरूप उत्पन्न हुआ है, उसके चार भेद हैं।

प्रश्न 4 - इच्छा के चार भेद कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - (1) मोहइच्छा, (2) कषायइच्छा, (3) भोगइच्छा, और (4) रोगाभावइच्छा।

प्रश्न 5 - क्या चार प्रकार की इच्छा एक ही साथ होती हैं ?

उत्तर - वहाँ इन चार में से एक काल में एक ही की प्रवृत्ति होती है। किसी समय किसी इच्छा की और किसी समय किसी इच्छा की प्रधानता होती रहती है।

प्रश्न 6 - चार प्रकार की इच्छा किसके पायी जाती हैं, किसके नहीं पायी जाती हैं ?

उत्तर - वहाँ मूल तो मिथ्यात्वरूप मोहभाव एक सच्चे जैन बिना, सर्व संसारी जीवों को पाया जाता है।

प्रश्न 7 - मोहइच्छा क्या है ?

उत्तर - प्रथम मोहइच्छा का कार्य इस प्रकार है :- स्वयं तो कर्मजनित पर्यायरूप बना रहता है, उसी में अहंकार करता रहता है कि मैं मनुष्य हूँ, तिर्यञ्च हूँ; इस प्रकार जैसी-जैसी पर्याय होती है, उस-उसरूप ही स्वयं होता हुआ प्रवर्तता है तथा जिस पर्याय में स्वयं उत्पन्न होता है, उस सम्बन्धी संयोगरूप व भिन्नरूप परद्रव्य जो हस्तादि अङ्गरूप व धन, कुटुम्ब, मन्दिर, ग्राम आदि को अपना मानकर उनको उत्पन्न करने के लिए व सम्बन्ध सदा बना रहे, उसके लिये उपाय करना चाहता है तथा सम्बन्ध हो जाने पर सुखी होना, मग्न होना व उनके वियोग में दु:खी होना, शोक करना अथवा ऐसा विचार आए कि मेरे आगे-पीछे नहीं — इत्यादिरूप आकुलता का होना, उसका नाम मोहइच्छा है।

प्रश्न 8 – क्रोध क्या है ?

उत्तर – किसी परद्रव्य को अनिष्ट मानकर, उसे अन्यथा परिणमन कराने की, उसे बिगाड़ने की व सत्ता नाश कर देने की इच्छा, वह क्रोध है।

प्रश्न 9 – मान क्या है ?

उत्तर – किसी परद्रव्य का उच्चपना न सुहाये व अपना उच्चपना प्रगट होने के अर्थ, परद्रव्य से द्वेष करके, उसे अन्यथा परिणमन कराने की इच्छा हो, उसका नाम मान है।

प्रश्न 10 – माया क्या है ?

उत्तर – किसी परद्रव्य को इष्ट मानकर, उसे प्राप्त करने के लिए व सम्बन्ध बनाए रखने के लिए व उसका विघ्न दूर करने के लिए जो छल-कपटरूप गुप्त कार्य करने के इच्छा का होना, उसे माया कहते हैं।

प्रश्न 11 – लोभ क्या है ?

उत्तर – अन्य किसी परद्रव्य को इष्ट मानकर, उससे सम्बन्ध मिलाने व सम्बन्ध रखने की इच्छा होना, सो लाभ है।

प्रश्न 12 – कषायइच्छा क्या है ?

उत्तर – इस प्रकार उन चार प्रकार की प्रवृत्ति का नाम कषाय इच्छा है।

प्रश्न 13 – भोगइच्छा क्या है ?

उत्तर – पाँच इन्द्रियों को प्रिय लगनेवाले जो परद्रव्य, उनको रतिरूप भोगने की इच्छा का होना, उसका नाम भोगइच्छा है।

प्रश्न 14 – रोगाभावइच्छा क्या है ?

उत्तर – क्षुधा-तृषा, शीत-उष्णादि व कामविकार आदि को

मिटाने के लिये अन्य परद्रव्यों के सम्बन्ध की इच्छा होना, उसका नाम रोगाभावइच्छा है।

प्रश्न 15 - जब मोहइच्छा की प्रबलता हो, तब बाकी इच्छाओं का क्या होता है ?

उत्तर - इस प्रकार चार प्रकार की इच्छा है, उनमें से किसी एक ही इच्छा की प्रबलता रहती है तथा शेष तीन इच्छाओं की गौणता रहती है।

प्रश्न 16 - जब मोहइच्छा हो, तब कषाय इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर - जैसे-मोहइच्छा प्रबल हो तो तब पुत्रादिक के लिये परदेश जाता है, वहाँ भूख-तृषा, शीत-उष्णतादि का दुःख सहन करता है, स्वयं भूखा रहता है और अपना मान-मद खोकर भी कार्य करता है, अपना अपमानादिक करवाता है, छलादिक करता है तथा धनादिक खर्च करता है; इस प्रकार मोहइच्छा प्रबल रहने पर कषाय-इच्छा गौण रहती है।

प्रश्न 17 - जब मोहइच्छा प्रबल हो तब भोगइच्छा का क्या होता है ?

उत्तर - अपने हिस्से का भोजन, वस्त्रादि, पुत्रादि, कुटुम्बियों को अच्छे-अच्छे लाकर देता है, अपने को रूखा-सूखा-बासी खाने को मिले तो भी प्रसन्न रहता है। जिस-तिस प्रकार अपने भी भागों को जबरदस्ती देकर, उनको प्रसन्न रखना चाहता है, इस प्रकार भोग-इच्छा की भी गौणता रहती।

प्रश्न 18 - जब मोहइच्छा प्रबल हो तब रोगाभावइच्छा का क्या होता है ?

उत्तर - अपने शरीरादि में रोगादि कष्ट आने पर भी, पुत्रादि के

लिए परदेश जाता है। वहाँ क्षुधा-तृषा, शीत-उष्णादि की अनेक बाधाएँ सहन करता है। स्वयं भूखा रहकर भी उनको भोजनादि खिलाता है। स्वयं शीतकाल में भीगे तथा कठोर बिस्तर पर सोकर भी, उनको सूखे तथा कोमल बिस्तरों पर सुलाता है; इस प्रकार रोगाभाव -इच्छा गौण रहती है। इस प्रकार मोहइच्छा की प्रबलता रहती है।

प्रश्न 19 - जब कषायइच्छा प्रबल हो, तब मोहइच्छा का क्या होता है ?

उत्तर - कषायइच्छा की प्रबलता होने पर पितादि, गुरुजनों को मारने लग जाता है, कुवचन कहता है, नीचे गिरा देता है, पुत्रादि को मारता, लड़ता है, बेच देता है, अपमानादि करता है, अपने शरीर को भी कष्ट देकर धनादि का संग्रह करता है तथा कषाय के वशीभूत होकर प्राण तक भी दे देता है — इत्यादि इस प्रकार कषायइच्छा प्रबल होने पर मोहइच्छा गौण हो जाती है।

प्रश्न 20 - क्रोध-कषाय होने पर क्या होता है ?

उत्तर - क्रोध-कषाय प्रबल होने पर अच्छा भोजनादि नहीं खाता, वस्त्राभरणादि नहीं पहिनता है, सुगन्ध आदि नहीं सूँघता, सुन्दर वर्णादि नहीं देखता, सुरीला राग-रागणी आदि नहीं सुनता, इत्यादि विषय-सामग्री को बिगाड़ देता है, नष्ट कर देता है, अन्य का घात कर देता है तथा नहीं बोलनेयोग्य निंद्य वाक्य बोल देता है — इत्यादि कार्य करता है।

प्रश्न 21 - मान-कषाय होने पर क्या होता है ?

उत्तर - मान-कषाय तीव्र होने पर स्वयं उच्च होने का, दूसरों को नीचा दिखाने का सदा उपाय करता रहता है। स्वयं अच्छा भोजन लेने पर, सुन्दर वस्त्र पहिनने पर, सुगन्ध सूँघने पर, अच्छा वर्ण देखने पर, मधुर राग सुनने पर, अपने उपयोग को उसमें नहीं

लगाता, उसका कभी चिन्तवन नहीं करता तथा अपने को वे चीजें कभी प्रिय नहीं लगती; मात्र विवाहादि अवसरों के समय अपने को ऊँचा रखने के लिए अनेक उपाय करता है।

प्रश्न 22 - लोभ-कषाय होने पर क्या होता है ?

उत्तर - लोभ-कषाय तीव्र होने पर अच्छा भोजन नहीं खाता है, अच्छे वस्त्रादि नहीं पहिनता, सुगन्ध विलेपनादि नहीं लगाता, सुन्दर रूप को नहीं देखता तथा अच्छा राग नहीं सुनता; मात्र धनादि सामग्री उत्पन्न करने की बुद्धि रहती है। कंजूस जैसा स्वभाव होता है।

प्रश्न 23 - माया-कषाय होने पर क्या होता है ?

उत्तर - माया-कषाय तीव्र होने पर अच्छा नहीं खाता, वस्त्रादि अच्छे नहीं पहिनता, सुगन्धित वस्तुओं को नहीं सूँघता, रूपादिक नहीं देखता, सुन्दर रागादिक नहीं सुनता; मात्र अनेक प्रकार के छल-कपटादि मायाचार का व्यवहार करके, दूसरों को ठगने का कार्य किया करता है।

प्रश्न 24 - क्रोधादि कषायइच्छा प्रबल होने पर, भोगइच्छा और रोगाभावइच्छा का क्या होता है ?

उत्तर - इत्यादि प्रकार से क्रोध-मान-लोभ-माया कषाय की प्रबलता होने पर भोगइच्छा गौण हो जाती है तथा रोगाभावइच्छा मन्द हो जाती है।

प्रश्न 25 - जब भोगइच्छा प्रबल हो, तब मोहइच्छा का क्या होता है ?

उत्तर - जब भोगइच्छा प्रबल हो जाती है, तब अपने पिता आदि को अच्छा नहीं खिलाता, सुन्दर वस्त्रादि नहीं पहिनाता इत्यादि। स्वयं ही अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ आदि खाने की इच्छा करता है,

खाता है, सुन्दर पतले बहुमूल्य वस्त्रादि पहिनता है और घर के कुटुम्बी आदि भूखे मरते रहते हैं; इस प्रकार भोगइच्छा होने पर मोहइच्छा गौण हो जाती है।

प्रश्न 26 – जब भोगइच्छा प्रबल हो, तब कषायइच्छा का क्या होता है ?

उत्तर – अच्छा खाने, पहिनने, सूँघने, देखने, सुनने की इच्छा करता है। वहाँ कोई बुरा कहे तो भी क्रोध नहीं करता; अपना मानादि न करे तो भी क्रोध नहीं करता; अपना मानादि न करे तो भी नहीं गिनता; अनेक प्रकार की मायाचारी करके भी दुःखों को भोगकर कार्य सिद्ध करना चाहता है तथा भोगइच्छा की प्राप्ति के लिए धनादि भी खर्च करता है; इस प्रकार भोगइच्छा प्रबल होने पर कषाय-इच्छा गौण हो जाती है।

प्रश्न 27 – जब भोगइच्छा प्रबल हो, तब रोगाभावइच्छा का क्या होता है ?

उत्तर – अच्छा खाना, पहिनना, सूँघना, देखना, सुनना आदि कार्य होने पर भी, रोगादि का होना तथा भूख-प्यासादि कार्य प्रत्यक्ष उत्पन्न होते जानकर भी, उस विषय-सामग्री से अरुचि नहीं होती; जिस प्रकार स्पर्शनइन्द्रिय की प्रबल इच्छा के वश होकर हाथी गड्डे में गिरता है; रसनाइन्द्रिय के वश में होकर मछली जाल मे फँस मरती है; ध्राणइन्द्रिय के वश में होकर भ्रमर, कमल में जीवन दे देता है; मृग, कर्णइन्द्रिय के वश में होकर शिकारी की गोली से मरता है तथा नेत्रइन्द्रिय के वश में होकर पतंगा, दीपक में प्राण दे देता है; इस प्रकार भोगइच्छा के प्रबल होने पर रोगाभावइच्छा गौण हो जाती हैं।

प्रश्न 28 – जब रोगाभावइच्छा प्रबल हो, तब मोह-इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर – जब रोगाभावइच्छा प्रबल रहती है, तब कुटुम्बादि को छोड़ देता है; मन्दिर, मकान, पुत्रादि को भी बेच देता है —इत्यादि। रोग की तीव्रता होने पर, मोह पैदा होने से कुटुम्बादि सम्बन्धियों से भी मोह का सम्बन्ध छूट जाता है तथा अन्यथा परिणमन करता है। इस प्रकार रोगाभावइच्छा प्रबल होने पर, मोह–इच्छा गौण हो जाती है।

प्रश्न 29 – जब रोगाभावइच्छा प्रबल हो, तब कषाय–इच्छा का क्या होता है ?

उत्तर – कोई बुरा कहे तथा अपमानादि करे, तब भी अनेक छल–पाखण्ड कर व धनखर्च करके भी, अपने रोग को मिटाना चाहता है; इस प्रकार रोगाभावइच्छा के प्रबल होने पर, कषायइच्छा गौण हो जाती है।

प्रश्न 30 – जब रोगाभावइच्छा प्रबल हो, तब भोगइच्छा का क्या होता है ?

उत्तर – भूख–तृषा, शीत–गर्मी लगे व पीड़ा इत्यादि रोग उत्पन्न हो जाए तब अच्छा–बुरा, मीठा–खारा और खाद्य–अखाद्य का भी विचार नहीं करता; खराब अखाद्य वस्तु को खाकर भी रोग मिटाना चाहता है; जैसे, पत्थर व वाड के काँटादि खाकर भी भूख मिटाना चाहता है; इस प्रकार रोगाभावइच्छा होने पर भोगइच्छा गौण हो जाती है।

प्रश्न 31 – अज्ञानी के इच्छा नामक रोग सदा क्यों बना रहता है ?

उत्तर – एक काल में एक इच्छा की मुख्यता रहती है और अन्य इच्छा की गौणता हो जाती है, परन्तु मूल में इच्छा नामक रोग सदा बना रहता है।

प्रश्न 32 – जीव, संसार में दु:खी होता हुआ क्यों भ्रमण करता है ?

उत्तर – जिनको नवीन-नवीन विषयों की इच्छा है, उन्हें दुःख स्वभाव ही से होता है। यदि दुःख मिट गया हो तो वह नवीन विषयों के लिए व्यापार किसलिये करें ? यही बात श्री प्रवचनसार, गाथा 64 में कहा है कि :-

जेसिं विसएसु रदी तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं।
जइ तं ण हि सब्भावं वावारो णत्थि विसयथं ॥64॥

येषां विषयेषु रतिस्तेषां दुःखं विजानीहि स्वाभावाम्।
यदि तन्न हि स्वभावो व्यापारो नास्ति विषयार्थम् ॥64॥

अन्वयार्थ :- [**येषां**] जिन्हें [**विषयेषु रतिः**] विषयों में रति है, [**तेषां**] उन्हें [**दुःखं**] दुःख [**स्वाभावं**] स्वाभाविक [**विजानीहि**] जानो; [**हि**] क्योंकि [**यदि**] यदि [**तद्**] वह दुःख [**स्वभावं न**] स्वभाव न हो तो [**विषयार्थ**] विषयार्थ में [**व्यापारः**] व्यापार [**न अस्ति**] न हो।

भावार्थ :- जिस प्रकार रोगी को एक औषधि के खाने से आराम हो जाता है तो वह दूसरी औषधि का सेवन किसलिए करे ? उसी प्रकार एक विषय सामग्री के प्राप्त होने पर ही दुःख मिट जाये तो वह दूसरी विषय सामग्री किसलिए चाहे ? क्योंकि इच्छा तो रोग है और इच्छा मिटाने का इलाज विषय सामग्री है। अब, एक प्रकार की विषय सामग्री की प्राप्ति से एक प्रकार की इच्छा रुक जाती है, परन्तु तृष्णा / इच्छा नामक रोग तो अन्तर में से नहीं मिटता है; इसलिए दूसरी अन्य प्रकार की इच्छा और उत्पन्न हो जाती है; इस प्रकार सामग्री मिलाते-मिलाते आयु पूर्ण हो जाती है और इच्छा तो बराबर तब तक निरन्तर बनी रहती है। उसके बाद अन्य पर्याय प्राप्त करते हैं, तब उस पर्यायसम्बन्धी वहाँ के कार्यों की नवीन इच्छा उत्पन्न होती है; इस प्रकार संसार में दुःखी होता हुआ भ्रमण करता है।

प्रश्न 33 - दु:ख का मूलकारण कौन है ?

उत्तर - अनिष्ट सामग्री के संयोग के कारण को और इष्ट सामग्री के वियोग के कारणों को विघ्न मानते हो, परन्तु आपने कुछ विचार भी किया है ? यदि यही विघ्न हो तो मुनि आदि त्यागी तपस्वी तो इन कार्यों को अङ्गीकार करते हैं; इसलिए विघ्न का मूलकारण, अज्ञान-रागादि है; इस प्रकार दु:ख व विघ्न का स्वरूप जानो।

प्रश्न 34 - इच्छा के अभाव का क्या उपाय है ?

उत्तर - उसका उपाय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र है।

प्रश्न 35 - आपने इच्छा के अभाव का उपाय सम्यग्दर्शनादि बताया है, उसकी प्राप्ति कैसे हो ?

उत्तर - (1) केवलज्ञानी के केवलज्ञान को मानने से इच्छा का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है। (2) निज आत्मा से परद्रव्यों का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है — ऐसा मानने से इच्छा का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है। (3) जैसा वस्तु स्वरूप है, वैसा माने-जाने तो इच्छा का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है। (4) मुझ आत्मा, ज्ञायक और लोकालोक व्यवहार से ज्ञेय है — ऐसा मानने से इच्छा का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होती है। (5) पदार्थ, इष्ट-अनिष्ट भासित होने से क्रोधादि कषायें होती हैं, जब तत्त्वज्ञान के अभ्यास से कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट भासित न हो, तब चारों प्रकार की इच्छा का अभाव होकर स्वयंमेव ही धर्म की प्राप्ति हो जाती है। ●●

परिशिष्ट-2

श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्तदेव रचित

द्रव्यसंग्रह प्रश्नोत्तरी

(गाथा 1 से 14 तक)

प्रश्न 1 - द्रव्यसंग्रह में कितनी गाथाएँ और कितने अधिकार हैं ?

उत्तर - अट्ठावन गाथाएँ हैं और इन गाथाओं को तीन अधिकारों में बाँटा गया है।

प्रश्न 2 - प्रथम अधिकार में क्या बताया है ?

उत्तर - प्रथम अधिकार में सत्ताईस गाथाएँ हैं और इसमें छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय का प्रतिपादन है।

प्रश्न 3 - दूसरे अधिकार में क्या बताया है ?

उत्तर - दूसरे अधिकार में ग्यारह गाथाएँ हैं और इसमें सात तत्त्व, नव पदार्थों का प्रतिपादन हैं।

प्रश्न 4 - तीसरे अधिकार में क्या बताया है ?

उत्तर - तीसरे अधिकार में 20 गाथाएँ हैं और इनमें मोक्षमार्ग का प्रतिपादन है।

जीवमजीवं दव्वं जिणवरवसहेण जेण णिद्दिट्ठं।
देविंद-विंद-वंदं वंदे तं सव्वदा सिरसा ॥1॥

गाथार्थ :- मैं (नेमिचन्द्र सिद्धान्तिदेव), जिस जिनवरवृषभ

ने जीव और अजीवद्रव्य का वर्णन किया है, उस देवेन्द्रों के समूह से वंद्य, तीर्थङ्कर-परमदेव को सदा मस्तक द्वारा नमस्कार करता हूँ।

प्रश्न 5- जिन किसे कहते हैं और जिन में कौन आते हैं ?

उत्तर - निज शुद्धात्मद्रव्य के आश्रय से मिथ्यात्व-राग-द्वेषादि को जीतनेवाली निर्मलपरिणति जिसने प्रगट की है, वही जैन है। मिथ्यात्व के नाशपूर्वक जितने अंश में जो रागादि का नाश करता है, उतने अंश में वह जैन है। वास्तव में जैनत्व का प्रारम्भ निश्चयसम्यग्दर्शन से ही होता है, जो चतुर्थ गुणस्थान में प्रगट होता है। (3) असंयत सम्यग्दृष्टि, देशविरतश्रावक और भावलिङ्गी मुनि जिन में आते हैं।

प्रश्न 6 - जिनवर किसे कहते हैं और जिनवर में विशेषरूप से कौन आते हैं ?

उत्तर - जो जिनों में श्रेष्ठ होते हैं, वे जिनवर हैं और विशेषरूप से श्री गणधरदेव, जिनवर में आते हैं।

प्रश्न 7 - जिनवरवृषभ किसे कहते हैं और जिनवरवृषभ में कौन-कौन आते हैं।

उत्तर - जो जिनवरों में भी श्रेष्ठ होते हैं, वे जिनवरवृषभ हैं। प्रत्येक तीर्थङ्कर भगवान, जिनवरवृषभ में आ जाते हैं।

प्रश्न 8 - ग्रन्थकर्ता ने विशेषरूप से मङ्गलाचरण में किसको याद किया है ?

उत्तर - यहाँ ग्रन्थकर्ता ने मङ्गलाचरण में प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभदेव को याद किया है।

प्रश्न 9 - जिन-जिनवर-जिनवर वृषभों ने किसका वर्णन किया है ?

उत्तर – जीव और अजीवद्रव्यों का वर्णन किया है।

प्रश्न 10 – विश्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – जाति अपेक्षा छह द्रव्यों के समूह और संख्या अपेक्षा अनन्त द्रव्य को विश्व कहते हैं।

प्रश्न 11 – विश्व को जानने के कितने लाभ हैं ?

उत्तर – अनेक लाभ हैं, परन्तु मुख्य लाभ सात हैं। इनका स्पष्टीकरण जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, के विश्व नामक प्रकरण में देखें।

प्रश्न 12 – द्रव्य किसे कहते हैं ?

उत्तर – गुणों के समूह को द्रव्य कहते हैं।

प्रश्न 13 – द्रव्य को जानने के कितने लाभ हैं ?

उत्तर – अनेक लाभ हैं, परन्तु मुख्य लाभ सात हैं। इनका स्पष्टीकरण जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, के द्रव्य नामक प्रकरण में देखें।

प्रश्न 14 – गुण किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो द्रव्य के सम्पूर्ण भाग और उसकी समस्त अवस्थाओं में रहता है, उसको गुण कहते हैं।

प्रश्न 15 – गुण को जानने के कितने लाभ हैं ?

उत्तर – अनेक लाभ हैं, परन्तु मुख्य लाभ छह हैं। इनका स्पष्टीकरण जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला, के गुण नामक प्रकरण में देखें।

प्रश्न 16 – द्रव्य कितने हैं ?

उत्तर – दो द्रव्य हैं, जीवद्रव्य और अजीवद्रव्य।

प्रश्न 17 – जीवद्रव्य किसे कहते हैं और वे कितने हैं ?

उत्तर – जिसमें सहज शुद्ध चैतन्यपना पाया जावे, वे जीवद्रव्य हैं और वे जीवद्रव्य निगोद से लगाकर सिद्ध भगवान तक अनन्त हैं।

प्रश्न 18 – अजीवद्रव्य किसे कहते हैं और वे कितने हैं ?

उत्तर – जिनमें ज्ञान-दर्शन न पाया जावे, उसे अजीवद्रव्य कहते हैं और अजीवद्रव्य जाति अपेक्षा पाँच हैं और संख्या अपेक्षा— पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोकप्रमाण असंख्यात कालद्रव्य; — इस प्रकार अनन्तानन्त हैं।

प्रश्न 19 – जीवद्रव्य और जीवतत्त्व में क्या अन्तर हैं ?

उत्तर – (1) जीवद्रव्य में निगोद से लगाकर सिद्ध भगवान तक सब जीव आ जाते हैं और जीवतत्त्व में, जिसमें मेरा ज्ञान-दर्शन पाया जावे, वह एक ही जीव (निज आत्मा) आता है।

प्रश्न 20 – जीवतत्त्व किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसमें निज सहज शुद्ध चैतन्यपना पाया जावे — यह जीवतत्त्व है।

प्रश्न 21 – अजीवतत्त्व किसे कहते हैं और अजीवतत्त्व में कौन-कौन आते हैं ?

उत्तर – (1) जिनमें मेरा ज्ञान-दर्शन न पाया जावे, वे अजीवतत्त्व हैं। मुझ निज आत्मा के अलावा, विश्व के अनन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोकप्रमाण असंख्यात कालद्रव्य; ये सब अजीवतत्त्व में आते हैं।

प्रश्न 22 – अजीवद्रव्य और अजीवतत्त्व में क्या अन्तर है ?

उत्तर – अजीवद्रव्य में अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म-अधर्म-आकाश एक-एक और लोकप्रमाण असंख्यात कालद्रव्य आते हैं और अजीवतत्त्व में इन सब द्रव्यों के साथ, मुझ निज आत्मा के अलावा, विश्व के समस्त जीवद्रव्य भी आ जाते हैं।

प्रश्न 23 – जीवतत्त्व और अजीवतत्त्व प्रयोजनभूत किस प्रकार हैं ?

उत्तर – (1) निज जीवतत्त्व एकमात्र आश्रय करने योग्य प्रयोजनभूत तत्त्व है। (2) अजीवतत्त्व एकमात्र जाननेयोग्य प्रयोजनभूत तत्त्व हैं।

प्रश्न 24 – निज जीवतत्त्व का आश्रय लेने से और अजीवतत्त्व को जाननेयोग्य मानने से क्या लाभ होता है ?

उत्तर – दु:ख का अभाव और सुख की प्राप्ति होती है, अर्थात् आस्रव-बन्ध का अभाव प्रारम्भ हो जाता है; संवर-निर्जरा की प्राप्ति होकर क्रम से मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

प्रश्न 25 – प्रत्येक जीव की सत्ता कितनी है ?

उत्तर – अस्तित्वादि अनन्त सामान्यगुण और ज्ञान-दर्शनादि अनन्त विशेषगुण; एक व्यंजनपर्याय और अनन्त अर्थपर्यायसहित प्रत्येक जीव की सत्ता है।

प्रश्न 26 – प्रत्येक पुद्गल की सत्ता कितनी-कितनी हैं ?

उत्तर – अस्तित्वादि अनन्त सामान्यगुण और स्पर्श-रस-गन्ध-वर्णादि अनन्त विशेषगुण; एक व्यंजनपर्याय और अनन्त अर्थपर्यायसहित प्रत्येक परमाणु (पुद्गल) की सत्ता है।

प्रश्न 27 – धर्मद्रव्य की सत्ता कितनी हैं ?

उत्तर – अस्तित्वादि अनन्त सामान्यगुण और गति हेतुत्वादि अनन्त विशेषगुण; एक स्वभाव व्यंजनपर्याय और अनन्त स्वभावअर्थपर्यायसहित धर्मद्रव्य की सत्ता है।

प्रश्न 28 – अधर्मद्रव्य की सत्ता कितनी है ?

उत्तर – अस्तित्वादि अनन्त सामान्यगुण और स्थितिहेतुत्वादि

अनन्त विशेषगुण; एक स्वभावव्यंजनपर्याय और अनन्त स्वभावअर्थ –पर्यायसहित अधर्मद्रव्य की सत्ता है।

प्रश्न 29 – आकाशद्रव्य की सत्ता कितनी हैं ?

उत्तर – अस्तित्वादि अनन्त सामान्यगुण और अवगाहनहेतुत्वादि अनन्त विशेषगुण; एक स्वभावव्यंजनपर्याय और अनन्त स्वभावअर्थपर्यायसहित आकाशद्रव्य की सत्ता है।

प्रश्न 30 – प्रत्येक कालाणु की सत्ता कितनी है ?

उत्तर – अस्तित्वादि अनन्त सामान्यगुण और परिणमनहेतुत्वादि अनन्त विशेषगुण; एक स्वभावव्यंजनपर्याय और अनन्त स्वभावअर्थपर्यायसहित प्रत्येक कालाणु की सत्ता है।

प्रश्न 31 – जीव, दुःखी क्यों है ?

उत्तर – (1) जीव–अजीव का यथार्थ ज्ञान न होने से ही संसारी मिथ्यादृष्टियों को स्व–पर का विवेक नहीं हो पाता है। (2) स्व–पर का विवेक न होने से वे आत्मस्वरूप की प्राप्ति से वंचित रहने के कारण दुःखी ही है।

प्रश्न 32 – दुःख दूर करने के लिये संसारी जीवों को क्या करना चाहिए ?

उत्तर – उन्हें स्व–पर यथार्थ विवेक प्रगट करने के लिये जीव–अजीव का यथार्थ ज्ञान करना चाहिए।

प्रश्न 33 – भावनमस्कार क्या है ?

उत्तर – निज शुद्ध आत्मा की आराधना, भावनमस्कार है और भावनमस्कार ही जिनेन्द्रभगवान की निश्चयस्तुति, वन्दना, प्रणाम्, नमस्कार है।

प्रश्न 34 – नमस्कार कितने हैं ?

उत्तर – पाँच हैं – (1) शक्तिरूप नमस्कार, (2) एकदेश

भावनमस्कार, (3) द्रव्यनमस्कार, (4) जड़नमस्कार, (5) पूर्ण भावनमस्कार।

प्रश्न 35 – इन पाँच नमस्कार को संक्षिप्त में समझाइये ?

उत्तर – (1) शक्तिरूप नमस्कार के आश्रय से ही एकदेश भावनमस्कार प्रगट होता है। (2) एकदेश भावनमस्कार के साथ अपनी-अपनी भूमिकानुसार साधक धर्मी जीव को जो राग है, वह द्रव्यनमस्कार पुण्यबन्ध का कारण है। (3) द्रव्यनमस्कार के साथ शरीरदि की क्रियाओं को जड़नमस्कार व्यवहार का व्यवहार कहा जाता है। (4) शक्तिरूप नमस्कार का परिपूर्ण आश्रय लेने से नमस्कार का फल पूर्ण भावनमस्कार प्रगट होता है।

प्रश्न 36 – द्रव्यनमस्कार कौन से गुणस्थान तक होता है ?

उत्तर – चौथे गुणस्थान से लेकर छठवें गुणस्थान तक होता है।

प्रश्न 37 – जिनेन्द्रभगवान को कौन नमस्कार कर सकता है ?

उत्तर – साधक धर्मी जीव ही नमस्कार कर सकता है; अज्ञानी मिथ्यादृष्टि, भगवान को नमस्कार नहीं कर सकता है क्योंकि अज्ञानी को भावनमस्कार की प्राप्ति नहीं है।

जीवद्रव्य के नौ अधिकार

जीवो उवओगमओ अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्ससोड्ढगई ॥2॥

गाथार्थ :– जो जीता है, उपयोगमय है, अमूर्तिक है, कर्ता है, स्वदेहप्रमाण है, भोक्ता है, संसारस्थ है, सिद्ध है और स्वभाव से ऊर्ध्वगमन करनेवाला है; वह जीव है।

प्रश्न 38 - इन नौ अधिकारों का मर्म जानने के लिए क्या जानना आवश्यक है ?

उत्तर - नयसम्बन्धी ज्ञान का होना आवश्यक है, क्योंकि नय-ज्ञान हुए बिना नव अधिकारों का मर्म समझ में नहीं आ सकता है।

प्रश्न 39 - प्रमाणज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर - प्रत्येक वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होती है, इसी वस्तु के सच्चे ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

प्रश्न 40 - नय किसे कहते हैं ?

उत्तर - प्रमाण द्वारा निश्चित हुई अनन्त धर्मात्मक वस्तु के एक-एक अङ्ग का ज्ञान मुख्यरूप से कराये, उसे नय कहते हैं।

प्रश्न 41 - नय का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर - वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। वस्तु में किसी धर्म की मुख्यता करके अविरोधरूप से साध्य पदार्थ को जानना ही नय का तात्पर्य है।

प्रश्न 42 - नय किसे होते हैं और किसे नहीं होते हैं ?

उत्तर - साधक सम्यग्दृष्टि को नय होते हैं; मिथ्यादृष्टि और केवली को नय नहीं होते हैं।

प्रश्न 43 - सम्यग्दृष्टि को ही नय क्यों होते हैं।

उत्तर - सम्यग्दृष्टि के सम्यक्श्रुतज्ञान प्रमाण प्रगट होने से उसके नय होते हैं।

प्रश्न 44 - मिथ्यादृष्टि को नय क्यों नहीं होते हैं।

उत्तर - मिथ्यादृष्टि का श्रुतज्ञान, मिथ्या होने से उसके नय नहीं होते हैं।

प्रश्न 45 - क्या पहले व्यवहारनय होता है ?

उत्तर - नहीं होता है, क्योंकि 'निरपेक्षा नया: मिथ्या:-सापेक्षा वस्तु तेऽर्थकृत:' निश्चयनय की अपेक्षा ही व्यवहारनय होता है; केवल व्यवहार पक्ष ही मोक्षमार्ग में नहीं है।

प्रश्न 46 - जिनभगवन्तों की वाणी की पद्धति क्या है ?

उत्तर - दो नयों के आश्रय से सर्वस्व कहने की पद्धति है।

प्रश्न 47 - नय के कितने भेद हैं ?

उत्तर - दो भेद हैं, निश्चयनय और व्यवहारनय।

प्रश्न 48 - निश्चय-व्यवहार का लक्षण क्या है ?

उत्तर - (1) यथार्थ का नाम निश्चय है। (2) उपचार का नाम व्यवहार है।

प्रश्न 49 - यथार्थ का नाम निश्चय और उपचार का नाम व्यवहार को किस-किस प्रकार जानना चाहिए ?

उत्तर - (1) जहाँ अखण्ड त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव को यथार्थ का नाम निश्चय कहा हो; वहाँ उसकी अपेक्षा निर्मलपर्याय को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाता है।

(2) जहाँ निर्मल शुद्धपरिणति को यथार्थ का नाम निश्चय कहा हो; वहाँ उसकी अपेक्षा भूमिकानुसार शुभभावों को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाना है।

(3) जहाँ जीव के विकारीभावों को यथार्थ का नाम निश्चय कहा हो; वहाँ उसकी अपेक्षा द्रव्यकर्म-नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार कहा जाता है।

प्रश्न 50 - (1) अखण्ड त्रिकाली स्वभाव, (2) निर्मल

शुद्धपरिणति, (3) जीव के विकारीभावों को यथार्थ का नाम निश्चय क्यों कहा है ?

उत्तर - (1) एकमात्र आश्रय करने योग्य की अपेक्षा से अखण्ड त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है, क्योंकि इसी के आश्रय से ही धर्म की प्राप्ति-वृद्धि और पूर्णता होती है। (2)प्रगट करने योग्य की अपेक्षा से निर्मल शुद्धपरिणति को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है। (3)पर्याय में दोष अपने अपराध से है; द्रव्यकर्म-नोकर्म के कारण नहीं है —इसका ज्ञान कराने के लिए विकारीभावों को यथार्थ का नाम निश्चय कहा है।

प्रश्न 51 - (1) निर्मल शुद्धपरिणति; (2) भूमिका अनुसार शुभभावों, और (3) द्रव्यकर्म-नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार क्यों कहा है ?

उत्तर - (1) अनादि-अनन्त नहीं होने की अपेक्षा से तथा आश्रय करने योग्य न होने की अपेक्षा से निर्मल शुद्धपरिणति को उपचार का नाम व्यवहार कहा है। (2) मोक्षमार्ग में शुद्ध अंश के साथ किस-किस प्रकार का राग होता है और किस-किस प्रकार का राग नहीं होता है। —यह ज्ञान कराने के लिए भूमिका अनुसार शुभभावों को उपचार का नाम व्यवहार कहा है। (3) जब-जब पर्याय में विभावभाव उत्पन्न होते हैं, तब-तब द्रव्यकर्म-नोकर्म का निमित्त होता है - इस अपेक्षा द्रव्यकर्म-नोकर्म को उपचार का नाम व्यवहार कहा है।

प्रश्न 52 - निश्चयनय किसे कहते हैं ?

उत्तर - वस्तु के किसी असली (मूल) अंश को ग्रहण करनेवाले ज्ञान को निश्चयनय कहते हैं — जैसे, मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घड़ा कहना।

प्रश्न 53 - व्यवहारनय किसको कहते हैं ?

उत्तर - किसी निमित्तकारण से एक पदार्थ को दूसरे पदार्थरूप जाननेवाले ज्ञान को व्यवहारनय कहते हैं— जैसे, मिट्टी के घड़े को, घी रहने के निमित्त से, घी का घड़ा कहना।

प्रश्न 54 - व्यवहारनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर - दो भेद हैं — सद्भूतव्यवहारनय और असद्भूत-व्यवहारनय।

प्रश्न 55 - सद्भूतव्यवहारनय किसको कहते हैं ?

उत्तर - जो एक पदार्थ में गुण-गुणी को भेदरूप ग्रहण करे, उसे सद्भूतव्यवहारनय कहते हैं।

प्रश्न 56 - सद्भूतव्यवहारनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर - दो भेद हैं — उपचरितसद्भूतव्यवहारनय, और अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय।

प्रश्न 57 - उपचरितसद्भूतव्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो उपाधिसहित गुण-गुणी को भेदरूप से ग्रहण करे, उसे उपचरित सद्भूत व्यवहारनय कहते हैं —जैसे, संसारी जीव के मतिज्ञानादि पर्याय और नर-नारकादि पर्यायें।

प्रश्न 58 - अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो नय, निरुपाधिक गुण-गुणी को भेदरूप ग्रहण करे, उसे अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय कहते हैं — जैसे, जीव के केवलज्ञान-केवलदर्शन।

प्रश्न 59 - असद्भूतव्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो मिले हुए भिन्न पदार्थों को अभेदरुप से कथन करे, उसे असद्भूतव्यवहारनय कहते हैं —जैसे, यह शरीर मेरा है।

प्रश्न 60 – असद्भूतव्यवहारनय के कितने भेद हैं ?

उत्तर – दो भेद हैं। उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय, और अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय।

प्रश्न 61 – उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर – अत्यन्त भिन्न पदार्थों को जो अभेदरुप से ग्रहण करे, उसे उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय कहते हैं — जैसे, जीव के महल–घोड़ा–वस्त्रादि।

प्रश्न 62 – अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय किसे कहते हैं ?

उत्तर – जो नय, संयोगसम्बन्ध से युक्त दो पदार्थों के सम्बन्ध को विषय बनावे, उसे अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय कहते हैं। जैसे –जीव का शरीर, जीव का कर्म कहना।

प्रश्न 63 – चार प्रकार का अध्यात्म व्यवहार किस प्रकार हैं ?

उत्तर – (1) उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय :– साधक ऐसा जानता है कि मेरी पर्याय में विकार होता है। उसमें जो व्यक्त/बुद्धिपूर्वक राग प्रगट ख्याल में लिया जा सकता है – ऐसे राग को आत्मा का कहना। **(2) अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय :–** जिस समय बुद्धिपूर्वक राग है, उसी समय अपने ख्याल में न आ सके – ऐसा अबुद्धिपूर्वक राग भी है, उसे आत्मा का जानना। **(3) उपचरितसद्भूतव्यवहारनय :–** ज्ञान, पर को जानता है अथवा ज्ञान में राग, ज्ञात होने से 'राग का ज्ञान है' — ऐसा कहना। अथवा ज्ञातास्वभाव के भानपूर्वक ज्ञानी 'विकार को भी जानता है'— ऐसा कहना। **(4) अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय :—**ज्ञान, वह आत्मा इत्यादि गुण–गुणी का भेद करना।

प्रश्न 64 – चार प्रकार के आगम और अध्यात्म के नयों की जानकारी आवश्यक क्यों है ?

उत्तर – किस अपेक्षा क्या बात बतलायी जा रही है, उसकी जानकारी होने के लिए।

प्रश्न 65 – निश्चयनय-व्यवहारनय के सम्बन्ध में क्या जानना चाहिए ?

उत्तर – निश्चयनय से जो निरुपण किया हो, उसे सत्यार्थ मानकर, उसका श्रद्धान अङ्गीकार करना और व्यवहारनय से जो निरुपण किया हो, उसे असत्यार्थ मानकर, उसका श्रद्धान छोड़ना।

प्रश्न 66 – व्यवहारनय का त्याग करके निश्चयनय को अङ्गीकार करने का आदेश कहीं भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर – हाँ दिया है। (1) श्री समयसार, कलश 173 में आदेश दिया है कि 'सर्व ही हिंसादि व अहिंसादि' में जो अध्यवसाय है, सो समस्त ही छोड़ना – ऐसा जिनदेवों ने कहा है। (2) अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि इसलिए मैं ऐसा मानता हूँ कि जो पराश्रितव्यवहार है सो सर्व ही छुड़ाया है। (3) तो फिर सन्त पुरुष एक परम त्रिकाली ज्ञायक निश्चय ही को अङ्गीकार करके शुद्ध ज्ञानघनरूप निज महिमा में स्थिति क्यों नहीं करते ? ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्रश्न 67– निश्चयनय को अङ्गीकार करने और व्यवहारनय के त्याग के विषय में भगवान कुन्दकुन्द आचार्य ने श्री मोक्षप्राभृत गाथा 31 में क्या कहा है ?

उत्तर – जो व्यवहार की श्रद्धा छोड़कर निश्चय की श्रद्धा करता, वह योगी अपने आत्मकार्य में जागता है तथा जो व्यवहार में जागता है, वह अपने कार्य में सोता है; इसलिए व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर, निश्चय कर श्रद्धाना करना योग्य है।

प्रश्न 68 - व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर, निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यों योग्य है ?

उत्तर - **(1) व्यवहारनय [अ]** स्वद्रव्य-परद्रव्य को, **[आ]** स्वद्रव्य के भावों को-परद्रव्य के भावों को, **[इ]** तथा कारण-कार्यादि को; किसी को किसी में मिलाकर निरुपण करता है, सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है; इसलिए उसका त्याग करना चाहिए। **(2)** और निश्चयनय उन्हीं को यथावत निरुपण करता है तथा किसी को किसी में नहीं मिलाता है —ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है; इसलिए उसका श्रद्धान करना चाहिए।

प्रश्न 69 - आप कहते हो कि व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है; इसलिए उसका त्याग करना और निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है; इसलिए उसका श्रद्धान करना —परन्तु जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है — उसका कारण क्या है ?

उत्तर - (1) जिनमार्ग में कहीं तो निश्चयनय की मुख्यता के लिए व्याख्यान है, उसे तो 'सत्यार्थ ऐसे ही है'— ऐसा जानना। (2) तथा कहीं व्यवहानय की मुख्यता के लिए व्याख्यान है, उसे 'ऐसे है नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है' — ऐसा जानना। इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है।

प्रश्न 70 - कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि 'ऐसे भी हैं और ऐसे भी है' इस प्रकार दोनों नयों का ग्रहण करना चाहिए — क्या उन का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर - हाँ, बिल्कुल गलत है, क्योंकि उन्हें जिनेन्द्रभगवान की आज्ञा का पता नहीं है क्योंकि दोनों नयों को समान सत्यार्थ जानकर 'ऐसे भी है और ऐसे भी है' इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है।

प्रश्न 71 - व्यवहारनय असत्यार्थ है, तो उसका उपदेश जिनमार्ग में किसलिए दिया ? एकमात्र निश्चयनय ही का निरुपण करना था।

उत्तर - ऐसा ही तर्क समयसार में किया है — वहाँ उत्तर दिया दिया है -जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छभाषा बिना, अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है; उसी प्रकार व्यवहार के बिना (संसार में संसारी भाषा के बिना) परमार्थ का उपदेश अशक्य है; इसलिए व्यवहार का उपदेश है। इस प्रकार निश्चय का ज्ञान कराने के लिए व्यवहार द्वारा उपदेश देते हैं; उसका विषय भी है, परन्तु वह अङ्गीकार करने योग्य नहीं है।

प्रश्न 72 - व्यवहार बिना, निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता है —इसे समझाइये ?

उत्तर - निश्चय से आत्मा, परद्रव्यों से भिन्न, स्व-भावों से अभिन्न, स्वयं सिद्ध वस्तु है। उसे जो नहीं पहचानते, उनसे इसी प्रकार कहते रहें, तब तो वे समझ नहीं पाये; इसलिए उनको व्यवहारनय से शरीरादिक परद्रव्यों की सापेक्षता द्वारा नर-नारक-पृथ्वी कायादिरूप जीव के विशेष किये; तब मनुष्य जीव है, नारकी जीव है — इत्यादि प्रकारसहित उन्हें जीव की पहचान हुई। इस प्रकार व्यवहार बिना (शरीर के संयोग बिना), निश्चय के (आत्मा के) उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न 73 - उक्त प्रश्न में व्यवहारनय से शरीरादिकसहित जीव की पहचान करायी - तब ऐसे व्यवहारनय को कैसे अङ्गीकार नहीं करना चाहिए ?

उत्तर - व्यवहारनय से नर-नारक आदि पर्याय ही को जीव कहा - सो पर्याय ही को जीव नहीं मान लेना। वर्तमान पर्याय तो जीव-पुद्गल के संयोगरूप है। वहाँ निश्चय से जीवद्रव्य भिन्न है;

उस ही को जीव मानना। जीव के संयोग से शरीरादिक को भी उपचार से जीव कहा, सो कथनमात्र ही है; परमार्थ से शरीरादिक जीव होते नहीं। ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार व्यवहारनय (शरीरादिकवाला जीव है), अङ्गीकार करने योग्य नहीं है।

प्रश्न 74 - व्यवहार बिना (भेद बिना) निश्चय का (अभेद आत्मा का) उपदेश कैसे नहीं होता ? इसे भेद-अभेद पर लगाकर समझाइये।

उत्तर - निश्चय से आत्मा अभेद वस्तु है; उसे जो नहीं पहचानते, उनसे इसी प्रकार कहते रहे तो वे समझ नहीं पायें। तब उनको अभेद वस्तु में भेद उत्पन्न करके ज्ञान-दर्शनादि गुण-पर्यायरूप जीव के विशेष किये, तब जाननेवाला जीव है, देखनेवाला जीव है — इत्यादि प्रकारसहित जीव को पहचान हुई। इस प्रकार भेद बिना, अभेद के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न 75 - उक्त प्रश्न में व्यवहार से ज्ञान-दर्शन भेद द्वारा जीव की पहचान करायी —तब ऐसे भेदरूप व्यवहारनय को कैसे अङ्गीकार नहीं करना चाहिए ?

उत्तर - अभेद आत्मा के ज्ञान-दर्शनादि भेद किए, सो उन्हें भेदरूप ही नहीं मान लेना, क्योंकि भेद तो समझाने के अर्थ किये हैं। निश्चय से आत्मा अभेद ही है; उस ही को जीव वस्तु मानना। संज्ञा-संख्या-लक्षण आदि से भेद कहे, सो कथनमात्र ही हैं। परमार्थ से द्रव्य-गुण भिन्न-भिन्न नहीं हैं, ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार भेदरूप व्यवहानय अङ्गीकार करने योग्य नहीं है।

प्रश्न 76 - व्यवहार बिना, निश्चय का उपदेश कैसे नहीं होता ? इसे वीतरागभाव पर लगाकर समझाइये।

उत्तर - निश्चय से वीतरागभाव मोक्षमार्ग है, उसे जो नहीं

पहचानते, उनको ऐसे ही कहते रहें, तो वे समझ नहीं पाये, तब उनको (1) तत्त्वश्रद्धान-ज्ञानपूर्वक (2) परद्रव्य के निमित्त मिटने की सापेक्षता द्वारा (3) व्यवहारनय से व्रत-शील-संयमादि को वीतरागभाव के विशेष बतलाये, तब उन्हें वीतरागभाव की पहचान हुई; इस प्रकार व्यवहार बिना, निश्चयमार्ग के उपदेश का न होना जानना।

प्रश्न 77 - उक्त प्रश्न में व्यवहारनय से मोक्षमार्ग की पहचान करायी, तब ऐसे व्यवहारनय को कैसे अङ्गीकार नहीं करना चाहिए ?

उत्तर - परद्रव्य का निमित्त मिटने की अपेक्षा से व्रत-शील-संयमादिक को मोक्षमार्ग कहा, सो इन्हीं को मोक्षमार्ग नहीं मान लेना, क्योंकि (1) परद्रव्य का ग्रहण-त्याग आत्मा के हो तो आत्मा परद्रव्य का कर्ता-हर्ता हो जावे परन्तु कोई द्रव्य, किसी द्रव्य के आधीन नहीं है; इसलिए आत्मा अपने भाव जो रागादिक हैं, उन्हें छोड़कर वीतरागी होता है। (3) इसलिए निश्चय से वीतरागभाव ही मोक्षमार्ग है। (4) वीतरागभावों के और व्रतादिक के कदाचित् कार्य-कारणपना (निमित्त-नैमित्तकपना) है; (5) इसलिए व्रतादि को मोक्षमार्ग कहें, सो कथनमात्र ही है। (6) परमार्थ से बाह्य क्रिया मोक्षमार्ग नहीं है - ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार व्यवहारनय अङ्गीकार करने योग्य नहीं है, ऐसा जानना।

प्रश्न 78 - जो जीव, व्यवहारनय के कथन को ही सच मान लेता है, उसे जिनवाणी में किन नामों से सम्बोधन किया है ?

उत्तर - (1) श्री पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, गाथा 6 में कहा कि 'तस्य देशना नास्ति'। (2) श्री समयसार, कलश 55 में कहा है कि 'अज्ञान-मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है।' (3) श्री प्रवचनसार, गाथा 55 में कहा है 'वह पद-पद पर धोखा खाता है'।

(4) आत्मावलोकन में कहा है कि 'यह उसका हरामजादीपना है।' — इत्यादि। उसे शास्त्रों में मूर्ख आदि नामों से भी सम्बोधन किया है।

प्रश्न 79 - जीव-अजीवादि में हेय-ज्ञेय-उपादेयपना किस प्रकार है?

उत्तर - शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव जिसका है, वैसा निज परमात्मद्रव्य आश्रय करने योग्य परम उपादेय है। (2) अजीवतत्त्व ज्ञेयरूप है। (3) अजीवतत्त्व की और दृष्टि से जो आस्रव-बन्ध-पुण्य-पाप उत्पन्न होते हैं, वे सब छोड़नेयोग्य / हेय है। (4) शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव जिसका है, उस निज परमात्मद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न एकदेश वीतरागता प्रगट करने योग्य एक देश उपादेय एवं (5) पूर्ण क्षायिकदशा, पूर्ण प्रगट करने योग्य उपादेय है।

प्रश्न 80 - जीव-अजीव को क्यों जानना चाहिए? इस विषय में श्री मोक्षमार्गप्रकाशक में क्या बताया है।

उत्तर - (1) प्रथम तो दुःख दूर करने में आपा-पर का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। (2) यदि आपा-पर का ज्ञान नहीं हो तो अपने को पहचाने बिना, अपना दुःख कैसे दूर करे? (3) अपने को और पर को एक जानकर अपना दुःख दूर करने के अर्थ, पर का उपचार करे तो अपना दुःख कैसे दूर हो? (4) आप स्वयं जीव है और पर अपने से भिन्न हैं; परन्तु यह पर में अहंकार-ममकार करे तो उसे दुःख ही होता है। अपना और पर का ज्ञान होने पर ही दुःख दूर होता है। (5) अपना और पर का ज्ञान, जीव-अजीव का ज्ञान होने पर ही होता है, क्योंकि आप स्वयं जीवतत्त्व है, शरीरादिक अजीवतत्त्व है। यदि लक्षणादि द्वारा जीव-अजीव की पहचान हो तो अपनी और पर की भिन्नता भाषित हो; इसलिए जीव-अजीव को जानना चाहिए। (मो. पृ. 78)

प्रश्न 81- जीव अनादि से दु:खी क्यों है ?

उत्तर - (1) जीव को अनादि से स्व-पर की एकत्वरूप श्रद्धा से मिथ्यादर्शन है। (2) स्व-पर के एकत्वज्ञान से मिथ्याज्ञान है। (3) स्व-पर के एकत्वआचरण से मिथ्याचारित्र है; अत: अनादि से जीव स्व-पर के एकत्वादि के कारण ही दु:खी है।

प्रश्न 82 - नयज्ञान और भेदज्ञान की आवश्यकता क्यों है ?

उत्तर - समस्त दु:खों का मूलकारण मिथ्यादर्शन-ज्ञान चारित्र ही है। इन सभी दु:खों का अभाव करने के लिए नयज्ञान और भेदज्ञान की आवश्यकता है।

प्रश्न 83 - भेदज्ञान कितने प्रकार से करे तो संसार का अभाव होकर मोक्ष की प्राप्ति हो ?

उत्तर - एक प्रकार से ही भेदज्ञान करे तो आत्मसन्मुख हो सकता है। (1) एक तरफ निज जीवतत्त्व और दूसरी तरफ अजीवतत्त्व, उससे मेरा किसी भी अपेक्षा किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। ऐसा जाने-माने तो संसार का अभाव और मोक्ष की प्राप्ति है।

प्रश्न 84 - पर्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर - गुणों के कार्य को पर्याय कहते हैं।

प्रश्न 85 - पर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर - दो भेद हैं - व्यंजनपर्याय, और अर्थपर्याय।

प्रश्न 86 - व्यंजनपर्याय किसे कहते हैं और व्यंजनपर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर - द्रव्य के प्रदेशत्वगुण के विशेषकार्य को व्यंजनपर्याय कहते हैं और व्यंजनपर्याय के दो भेद हैं (1) स्वभावव्यंजनपर्याय (2) विभावव्यंजनपर्याय।

प्रश्न 87 - अर्थपर्याय किसे कहते हैं और अर्थपर्याय के कितने भेद हैं ?

उत्तर - प्रदेशत्वगुण के सिवाय सम्पूर्ण गुणों के कार्य को अर्थपर्याय कहते है और अर्थपर्याय के दो भेद हैं (1) स्वभाव -अर्थपर्याय, (2) विभावअर्थपर्याय।

प्रश्न 88 - पर्याय का स्पष्टीकरण ?

उत्तर - जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला में पर्याय के वर्णन में देखें।

प्रश्न 89 - छहढ़ाला में इस विषय में क्या बताया है ?

उत्तर - तास ज्ञान के कारण, स्व-पर विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनौ॥

प्रश्न 90- श्री इष्टोपदेश, 50 वें श्लोक में इस विषय में क्या बताया है ?

उत्तर - चेतन पुद्गल भिन्न हैं, यही तत्त्व संक्षेप।
अन्य कथन सब हैं, इसी के विस्तार विशेष॥

प्रश्न 91 - सामायिकपाठ में इस विषय में क्या बताया है ?

उत्तर -

महा कष्ट पाता जो करता, पर पदार्थ जड़-देह संयोग।
मोक्षमहल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग॥

प्रश्न 92 - योगसार में इस विषय में क्या बताया है ?

उत्तर - जीव पुद्गल दोऊ भिन्न हैं, भिन्न सकल व्यवहार।
तज पुद्गल ग्रह जीव तो, शीघ्र लहे भवपार॥

जीवाधिकार

तिक्काले चदुपाणा इंदियबलमाउआणपाणो य।
ववहारा सो जीवो णिच्छयणयदो दु चेदणा जस्स॥3॥

गाथार्थ :– तीनों कालों में इन्द्रिय, बल, आयु और श्वासोच्छ्वास – इन चार प्राणों को जो धारण करता है, वह व्यवहारनय से जीव है। निश्चयनय से जिसको चेतना है, वह जीव है।

प्रश्न 93 – शुद्धनिश्चयनय से अनादि–अनन्त प्रत्येक प्राणी के कौन–सा प्राण है ?

उत्तर – निगोद से लगाकर सिद्ध भगवान तक, शुद्ध निश्चयनय से अनादि–अनन्त शुद्ध चेतनाप्राण ही है।

प्रश्न 94 – प्राणों के कितने–कितने प्रकार हैं और किस–किस अपेक्षा से हैं ?

उत्तर – प्राणों के तीन प्रकार हैं। (1) अनुपचरितअसद्भूत –व्यवहारनय से जड़प्राण, संसारदशा में ही होते हैं। (2) उपचरित –सद्भूतव्यवहारनय से भावप्राण, संसारदशा में होते हैं। (3) शुद्ध –निश्चयनय से अनादि–अनन्त चेतनाप्राण, प्राणीमात्र के पास है। (4) चौथे गुणस्थान से बारहवें गुणस्थान तक एकदेश अतीन्द्रिय भावप्राण और तरहवें–चौदहवें गुणस्थान तथा सिद्धदशा में क्षायिकदशारूप अतीन्द्रियभावप्राण अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय से ज्ञानियों के होते हैं।

प्रश्न 95 – जड़प्राण किसका कार्य है और किसकी, किस दशा में होते हैं ?

उत्तर – (1) पाँच इन्द्रियाँ; तीन बल; आयु और श्वासोच्छवास — ये जड़प्राण पुद्गलद्रव्य की स्कन्धरूप पर्याय है।

(2) अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से जीव को संसारदशा में संयोगरूप से इन जड़प्राणों का संयोग होता है।

प्रश्न 96 – भावप्राण किसका कार्य है और किसको किस दशा में हो सकते हैं ?

उत्तर – (1) क्षयोपशमज्ञान के उघाड़रूप, ज्ञानदशा (2) बलप्राण वीर्यगुण की क्षयोंपशमदशा आदि जीव की दशा, उपचरितसद्भूत –व्यवहारनय से संसारदशा में हैं।

प्रश्न 97 – अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से एकेन्द्रिय जीव के कितने जड़ प्राणों का संयोग होता है ?

उत्तर – अनुपचरित असद्भूत व्यवहारनय से एकेन्द्रिय जीव के स्पर्शन, इन्द्रिय, कायबल, आयु और श्वासोच्छवास – इन चार जड़प्राणों का संयोग होता है।

प्रश्न 98 – अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से दो इन्द्रियवाले जीव के कितने जड़प्राणों का संयोग होता है ?

उत्तर – अनुपचरितअसद्भूत व्यवहारनय से दो इन्द्रियवाले जीव के स्पर्शन–रसना दो इन्द्रियाँ; वचन–काय दो बल; आयु और स्वासोच्छवास, इन छह जड़प्राणों का संयोग होता है।

प्रश्न 99 – अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से तीन इन्द्रियवाले जीव के कितने जड़प्राणों का संयोग होता है ?

उत्तर – अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से तीन इन्द्रियवाले जीव के स्पर्शन–रसना–घ्राण तीन इन्द्रियाँ; वचन–काय दो बल; आयु और श्वासोच्छवास, इन सात जड़प्राणों का संयोग होता है।

प्रश्न 100 – अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से पाँच इन्द्रियवाले असैनी जीव के कितने जड़प्राणों का संयोग होता है ?

उत्तर – अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से पाँच इन्द्रियवाले असैनी जीव के स्पर्शन–रसना –घ्राण–चक्षु–कर्ण, पाँच इन्द्रियाँ; वचन–काय दो बल; आयु और श्वासोच्छवास, इन नौ जड़प्राणों का संयोग होता है।

प्रश्न 101 - अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय के संज्ञी पाँच इन्द्रियवाले जीव के कितने जड़प्राणों का संयोग होता है ?

उत्तर - अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से सैनी पाँच इन्द्रियवाले जीव के स्पर्शन-रसना-घ्राण-चक्षु-कर्ण पाँच इन्द्रियाँ; मन-वचन -काय तीन बल; आयु और श्वासोच्छवास, इन दस जड़-प्राणों का संयोग होता है।

प्रश्न 102 - अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से जड़-प्राण जीव के होते हैं — ऐसा कौन कह सकता है और क्यों ?

उत्तर - ज्ञानी ही कह सकता है क्योंकि उसको अपने निश्चय चेतनाप्राण का ज्ञान है।

प्रश्न 103 - कोई चतुर कहता है मैं चेतनाप्राण हूँ — ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान रखता हूँ और मैं दश प्राणवाला हूँ - ऐसे अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय की प्रवृत्ति रखता हूँ, परन्तु आपने हमारे निश्चय-व्यवहार दोनों को झूठा बता दिया तो हम निश्चय-व्यवहार दोनों नयों को किस प्रकार समझे तो हमारा माना हुआ निश्चय-व्यवहार सत्यार्थ कहलावे ?

उत्तर - मैं चेतनाप्राणवाला हूँ - ऐसा जो शुद्धनिश्चयनय से निरुपण किया हो, उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अङ्गीकार करना और मैं दश प्राणवाला हूँ - ऐसा जो अनुपचरितअसद्भूतव्यवहार से निरुपण किया हो, उसे असत्यार्थ मानकर, उसका श्रद्धान छोड़ना।

प्रश्न 104 - मैं दश प्राणवाला हूँ - ऐसे अनुपचरितअसद्भूत -व्यवहारनय के त्याग करने का और मैं चेतनाप्राणवाला हूँ - ऐसे शुद्धनिश्चयनय के अङ्गीकार करने का आदेश कहीं जिनवाणी में भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने दिया है ?

उत्तर- श्री समयसार, कलश 173 में आदेश दिया है कि (1)

मिथ्यादृष्टि की ऐसी मान्यता है कि शुद्धनिश्चयनय से मैं चेतनाप्राणवाला हूँ और अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से मैं दश प्राणोंवाला हूँ – यह मिथ्या अध्यवसाय है और ऐसे-ऐसे समस्त अध्यवसानों को छोड़ना, क्योंकि मिथ्यादृष्टि को निश्चय-व्यवहार कुछ होता ही नहीं – ऐसा अनादि से जिनेन्द्रभगवान की दिव्यध्वनि में आया है। (2) स्वयं अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि मैं ऐसा मानता हूँ कि ज्ञानियों को जो, मैं दश प्राणवाला हूँ, ऐसा पराश्रित व्यवहार जो होता है, सो सर्व ही छुड़ाया है – तो फिर सन्त पुरुष स्वयं सिद्ध एक परम त्रिकाली चेतना ही को अङ्गीकार करके, शुद्ध ज्ञानघनरूप निज महिमा में स्थिति करके क्यों केवलज्ञानादि प्रगट नहीं करते हैं ? ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्रश्न 105 – मैं चेतनाप्राणवाला हूँ – ऐसे शुद्धनिश्चयनय को अङ्गीकार करने और मैं दश प्राणवाला हूँ – ऐसे अनुपचरित -असद्भूतव्यवहारनय के त्याग के विषय में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है ?

उत्तर – श्री मोक्षप्राभृत, गाथा 31 में कहा कि (1) मैं दश प्राणवाला हूँ – ऐसे अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय की श्रद्धा छोड़कर, मैं चेतनाप्राणवाला हूँ – ऐसे शुद्धनिश्चयनय की श्रद्धा करता है, वह योगी अपने आत्मकार्य में जागता है, तथा (2) मैं दश प्राणवाला हूँ — ऐसे अनुपचरितअसद्भूतव्यवहानय में जागता है, वह अपने आत्मकार्य में सोता है। (3) इसलिए मैं दश प्राणवाला हूँ, – ऐसे अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर, मैं शुद्ध चेतना -प्राणवाला हूँ – ऐसे निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।

प्रश्न 106 – मैं दश प्राणवाला हूँ – ऐसे अनुपचरितअसद्भूत -व्यवहानय का श्रद्धान छोड़कर, मैं चेतनाप्राणवाला हूँ – ऐसे शुद्ध निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यों योग्य है ?

उत्तर – **(1) व्यवहारनय** – मैं चेतनाप्राण हूँ – ऐसा स्वद्रव्य और मैं दश प्राणवाला हूँ – ऐसे परद्रव्य को, किसी को किसी में मिलाकर निरुपण करता है, सो मैं दश प्राणवाला हूँ – ऐसे अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है; इसलिए उसका त्याग करना। (2) निश्चयनय – मैं चेतनाप्राणवाला हूँ –ऐसा स्वद्रव्य और मैं दश प्राणवाला हूँ – ऐसा परद्रव्य; इस प्रकार स्वद्रव्य–परद्रव्य का यथावत निरुपण करता है; किसी को किसी में नहीं मिलाता है। मैं चेतनाप्राणवाला हूँ – सो ऐसे ही शुद्ध निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है; इसलिए उसका श्रद्धान करना।

प्रश्न 107 – आप कहते हो कि मैं दश प्राणवाला हूँ – ऐसे अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है; इसलिए उसका त्याग करना तथा मैं चेतनाप्राणवाला हूँ – ऐसे शुद्धनिश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिए उसका श्रद्धान करना – यदि ऐसा है तो जिनमार्ग में दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है, सो कैसे है ?

उत्तर – (1) जिनमार्ग में कहीं तो मैं चेतनाप्राणवाला हूँ –ऐसे शुद्धनिश्चयनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है, उसे तो 'सत्यार्थ ऐसे ही है' – ऐसा जानना (2) तथा कहीं मैं दश प्राणवाला हूँ – ऐसे अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय का मुख्यता लिए व्याख्यान है, उसे 'ऐसे है नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है' – ऐसा जानना। (3) मैं दश प्राणवाला नहीं हूँ; मैं तो चेतनाप्राणवाला हूँ – इस प्रकार जानने का नाम ही निश्चय–व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण है।

प्रश्न 108 – कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि 'मैं चेतना–प्राणवाला भी हूँ और मैं दश प्राणवाला भी हूँ' इस प्रकार हम निश्चय–व्यवहार, दोनों नयों का ग्रहण करते हैं। क्या उन महानुभावों का ऐसा कहना गलत है ?

उत्तर – हाँ, बिल्कुल गलत है, क्योंकि ऐसे महानुभावों को जिनेन्द्रभगवान की आज्ञा का पता ही नहीं। उन महानुभावों ने निश्चय–व्यवहार दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर, कि अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से मैं दश प्राणवाला भी हूँ और शुद्धनिश्चनय से मैं चेतनाप्राणवाला भी हूँ; इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन किया है, किन्तु इस प्रकार तो निश्चय–व्यवहार दोनों नय का ग्रहण करना जिनवाणी में नहीं कहा है।

प्रश्न 109 – मैं दश प्राणवाला हूँ – यदि अनुपचरितअसद्भूत –व्यवहारनय असत्यार्थ हूँ, तो उसका उपदेश जिनवाणी में किसलिए दिया। मैं चेतनाप्राणवाला हूँ – ऐसे एकमात्र शुद्धनिश्चयनय का ही निरुपण करना था ?

उत्तर – (1) ऐसा ही तर्क समयसार में किया है। वहाँ उत्तर दिया है कि जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छभाषा बिना, अर्थ ग्रहण कराने को कोई समर्थ नहीं है; उसी प्रकार मैं दश प्राणवाला हूँ – ऐसे अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय के बिना, मैं चेतनाप्राणवाला हूँ – ऐसे परमार्थ का उपदेश अशक्य है; इसलिए मैं दस प्राणवाला हूँ – ऐसे अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय का उपदेश है। (2) मैं चेतनाप्राणवाला हूँ – ऐसे शुद्धनिश्चयनय का ज्ञान कराने के लिए, मैं दस प्राणवाला हूँ – ऐसे अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय द्वारा उपदेश देते हैं। व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, वह जाननेयोग्य है, परन्तु अङ्गीकार करनेयोग्य नहीं है।

प्रश्न 110 – मैं दश प्राणवाला हूँ – ऐसे अनुपचरितअसद्भूत –व्यवहार के बिना, मैं चेतनाप्राणवाला हूँ – ऐसे शुद्धनिश्चयनय का उपदेश कैसे नहीं होता ? इसे समझाइये।

उत्तर – शुद्ध निश्चयनय से आत्मा, चेतनाप्राणवाला है, उसे जो

नहीं पहचानते, उनसे इसी प्रकार कहते रहे, तब तो वे समझ नहीं पाये, इसलिए उनको अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से आत्मा दस प्राणवाला, नौ प्राणवाला, आठ प्राणवाला है; इस प्रकार जड़प्राणों की सापेक्षता द्वारा जीव की पहिचान करायी, तब उन्हें दश प्राणसहित जीव की पहचान हुई।

प्रश्न 111 – मैं दश प्राणवाला हूँ – ऐसे अनुपचरितअसद्भूत –व्यवहारनय से जीव की पहचान कराई, तब मैं दश प्राणवाला हूँ – ऐसे अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय को कैसे अङ्गीकार नहीं करना चाहिए?

उत्तर – अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से दश प्राणरूप पर्याय को जीव कहा, सो प्राणों को ही जीव नहीं मान लेना। प्राण तो जीव के संयोगरूप है। शुद्धनिश्चनय से चेतनाप्राणवाला जीव, भिन्न हैं, उस ही को जीव मानना। चेतनाप्राणवाले आत्मा के संयोग से, जड़ प्राणों को भी उपचार से जीव कहा – सो कथनमात्र ही है; परमार्थ से जड़प्राण जीव होते ही नहीं – ऐसा श्रद्धान करना।

प्रश्न 112– मैं दश प्राणवाला हूँ – ऐसे अनुपचरितअसद्भूत –व्यवहारनय के कथन को ही जो सत्य मान लेता है, उस जीव को जिनवाणी में किस-किस नाम से सम्बोधन किया है?

उत्तर – मैं दश प्राणवाला हूँ – ऐसे अनुपचरितअसद्भूत –व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है, उसे (1) पुरुषार्थ सिद्धिचुपाय में 'तस्य देशना नास्ति' कहा है। (2) श्री समयसार, कलश 55 में 'यह उसका अज्ञान–मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है।' (3) श्री प्रवचनसार, गाथा 55 में 'पद–पद पर धोखा खाता है।' (4) आत्मावलोकन में 'यह उसका हरामजादीपना है।' – इत्यादि कहा है।

प्रश्न 113 - चेतनाप्राण क्या हैं और किसे होते हैं ?

उत्तर - चेतनाप्राण त्रिकाल पारिणमितक भावरूप से हैं और निगोद से लगाकर सिद्धभगवान तक के सर्व जीवों के चेतनाप्राण एक समान सदा विद्यमान रहता है। चेतनाप्राण के आश्रय से ही धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्रश्न 114 - प्राणों में ज्ञेय-हेय-उपादेयपना किस प्रकार है ?

उत्तर - (1) संयोगरूप जड़प्राण व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय हैं। (2) क्षयोपशमरूप भावप्राण, ज्ञेय-हेय हैं। (3) चेतनाप्राण आश्रय करने योग्य परम उपादेय हैं। (4) चेतनाप्राण के आश्रय से जो ज्ञान व बलादि प्रगट हुआ है, वह एकदेश प्रगट करनेयोग्य उपादेय है। (5) चेतनाप्राण के परिपूर्ण आश्रय से जो क्षायिकदशा प्रगट हुई है, वह पूर्ण प्रगट करनेयोग्य उपादेय है।

प्रश्न 115 - अनादि से संसार क्यों है ?

उत्तर - जड़प्राणों में अपनेपने की मान्यता से ही संसार है। जब तक जीव, देह प्रधान विषयों का ममत्व नहीं छोड़ता, तब तक वह पुनः पुनः अन्य-अन्य प्राण धारण करता है।

प्रश्न 116 - इन जड़प्राणों का सम्बन्ध कैसे मिटे ?

उत्तर - मैं चेतनाप्राणवाला हूँ - ऐसा अनुभव करे तो इन दश प्राणों में ममत्वपना मिटकर, क्रम से सिद्धदशा की प्राप्ति हो, तब प्राणों का सम्बन्ध ही नहीं बनेगा।

प्रश्न 117 - तीसरी गाथा का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर - जीवद्रव्य से पुद्गल विपरीत है; इसलिए चेतनामयी परमात्मद्रव्य ही मैं हूँ - ऐसी भावना करनी चाहिए।

प्रश्न 118 - सिद्धभगवान में कौन-कौन से प्राण होते हैं ?

उत्तर – शुद्धनिश्चयनय से चेतनाप्राण तो है ही; पर्याय में जो क्षायिकदशा प्रगट हो जाती है, उसे भी भावप्राण कहते हैं; इस प्रकार सिद्धभगवान के चेतनाप्राण और उसके आश्रय से शुद्धदशारूप प्राण होते हैं।

प्रश्न 119 – साधक ज्ञानी के कौन-कौन से प्राण होते हैं ?

उत्तर – (1) चेतनाप्राण तो शुद्ध निश्चयनय से है ही; (2) पर्याय में अपनी-अपनी भूमिकानुसार जो शुद्धि प्रगट होती है, वह भावप्राण आनन्दरूप है। (3) जड़प्राण, ज्ञेयरूप हैं। (4) जो अशुद्धि है, वह हेयरूप है।

प्रश्न 120 – संक्षिप्त में इस गाथा में क्या बताया है ?

उत्तर – अपने चेतनाप्राण का आश्रय ले तो सुखी हो।

उपयोग अधिकार (दर्शनोपयोग के भेद)

उवओगो दुवियप्पो दंसणणाणं च दंसणं चदुधा।
चक्खु अचक्खू ओही दंसणमध केवलं णेयं ॥4॥

गाथार्थ :– उपयोग दो प्रकार का है – दर्शन और ज्ञान। उसमें दर्शनोपयोग चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन – इस प्रकार चार प्रकार का जानना।

प्रश्न 121 – उपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर – चैतन्य का अनुसरण करके होनेवाले आत्मा के परिणाम को उपयोग कहते हैं।

प्रश्न 122 – उपयोग का द्रव्य और गुण क्या है ?

उत्तर — (1) चेतन, जीवद्रव्य है। (2) ज्ञान-दर्शन, गुण हैं। ज्ञान-दर्शन का एक नाम, चैतन्य है।

प्रश्न 123 – दर्शनोपयोग किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार का है ?

उत्तर – पदार्थों के भेदरहित सामान्यप्रतिभास की दर्शनोपयोग कहते हैं। यह चार प्रकार का है – (1) चक्षदर्शन, (2) अचक्षदर्शन, (3) अवधिदर्शन, और (4) केवलदर्शन

प्रश्न 124 – चक्षुदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – चक्षुइन्द्रिय के द्वारा होनेवाले मतिज्ञान से पहले के सामान्यप्रतिभास को चक्षुदर्शन कहते हैं।

प्रश्न 125– अचक्षुदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – चक्षुइन्द्रिय को छोड़कर, शेष चार इन्द्रियों और मन के द्वारा होनेवाले मतिज्ञान से पहले के सामान्यप्रतिभास को अचक्षुदर्शन कहते हैं।

प्रश्न 126 – अवधिदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – अवधिज्ञान के पहले हानेवाले सामान्यप्रतिभास को अवधिदर्शन कहते हैं।

प्रश्न 127 – केवलदर्शन किसे कहते हैं ?

उत्तर – केवलज्ञान के साथ होनेवाले सामान्यप्रतिभास को केवलदर्शन कहते हैं।

प्रश्न 128 – दर्शन कब उत्पन्न होता है ?

उत्तर – छद्मस्थ जीवों के ज्ञान के पहले और केवलज्ञानियों के ज्ञान के साथ ही दर्शन उत्पन्न होता है।

प्रश्न 129 – शास्त्रों में आता है कि दर्शनावरणीयकर्म के क्षयोपशम, क्षय के अनुसार उपयोग होता है ?

उत्तर – यह निमित्तकारण का ज्ञान कराने के लिए उपचार का कथन है।

प्रश्न 130 – चार प्रकार के दर्शनों में श्रुतदर्शन और मन:पर्ययदर्शन के नाम क्यों नहीं आये ?

उत्तर – श्रुतदर्शन और मन:पर्ययदर्शन नहीं होते हैं, क्योंकि श्रुतज्ञान और मन:पर्ययज्ञान, मतिज्ञानपूर्वक ही होते हैं।

ज्ञानोपयोग के भेद

णाणं अट्ठवियप्पं मदिसुदिओही अणाणणाणाणि।
मणपज्जयकेवलमवि पच्चक्खपरोक्खभेयं च॥5॥

गाथार्थ :– कुमति, कुश्रुत, कुअवधि, मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय और केवलज्ञान – इस प्रकार आठ प्रकार का ज्ञान है। इसमें भी प्रत्यक्ष और परोक्षरूप भेद है।

प्रश्न 131 – ज्ञानोपयोग किसे कहते हैं ?

उत्तर – पदार्थों के विशेषप्रतिभास को ज्ञानोपयोग कहते हैं।

प्रश्न 132 – ज्ञानोपयोग के कितने भेद हैं ?

उत्तर – आठ भेद हैं। पाँच ज्ञानरूप और तीन अज्ञानरूप। – (1) मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान – ये पाँच ज्ञानरूप भेद हैं। (2) कुमति, कुश्रुत, और कुअवधि – ये तीन अज्ञानरूप भेद हैं।

प्रश्न 133 – मतिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर – (1) पराश्रय की बुद्धि छोड़कर, दर्शनोपयोगपूर्वक स्वसन्मुखता से प्रगट होनेवाले निज आत्मा के ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं। (2) इन्द्रिय और मन जिसमें निमित्तमात्र हैं – ऐसे ज्ञान को मतिज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 134 - श्रुतज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर - (1) मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ के सम्बन्ध से अन्य पदार्थ को जाननेवाले ज्ञान को श्रुतज्ञान कहते हैं। (2) आत्मा की शुद्ध अनुभूतिरूप श्रुतज्ञान को भावश्रुतज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 135 -अवधिज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर - द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादासहित रूपीपदार्थ के स्पष्ट ज्ञान को अवधिज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 136 - मन:पर्ययज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर - द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की मर्यादासहित, दूसरे के मन में स्थित रूपीविषय के स्पष्ट ज्ञान को, मन:पर्ययज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 137 - केवलज्ञान किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो तीन लोक - तीन कालवर्ती सर्व पदार्थों को (अनन्त धर्मात्मक, सर्व द्रव्य-गुण-पर्याय को) प्रत्येक समय में यथास्थित परिपूर्णरूप से स्पष्ट और एक साथ जानता है, उसे केवलज्ञान कहते हैं।

प्रश्न 138 - श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान, और केवलज्ञान से क्या सिद्ध होता है ?

उत्तर - प्रत्येक द्रव्य में क्रमबद्धपर्याय होती है, आगे-पीछे नहीं होती है।

प्रश्न 139 - तीन अज्ञानरूप ज्ञान, मिथ्यादृष्टियों को किस-किस प्रकार हैं ?

उत्तर - (1) चारों गतियों के मिथ्यादृष्टियों को कुमति-कुश्रुत तो होते ही हैं। (2) मिथ्यादृष्टि देव-देवियों तथा नारकियों को कुअवधि भी होता है। (3) किसी-किसी मिथ्यादृष्टि मनुष्य और तिर्यंच के भी कुअवधि होता है।

प्रश्न 140 - पाँच ज्ञान, ज्ञानियों को किस-किस प्रकार हैं ?

उत्तर - (1) सम्यक्मति, सम्यक्श्रुत-ये दो ज्ञान छद्मस्थ सम्यग्दृष्टियों को होते ही हैं। (2) अवधिज्ञान किसी-किसी छद्मस्थ सम्यग्दृष्टि को होता है। (3) देव-नारकी सम्यग्दृष्टियों को सुमति-सुश्रुत-सुअवधि, ये तीन होते हैं। (4) मन:पर्ययज्ञान किसी-किसी भावलिङ्गी मुनि के होता है। (5) तीर्थङ्करदेव को मुनिदशा में तथा गणधरदेव को मन:पर्ययज्ञान-नियम से होता है। (6) केवलज्ञान, केवली और सिद्धभगवन्तों को होता है।

प्रश्न 141 - एक समय में एक जीव के कितने ज्ञान हो सकते हैं?

उत्तर - एक समय में एक जीव के कम से कम एक और अधिक से अधिक चार ज्ञान हो सकते हैं। वे इस प्रकार हैं - (1) केवलज्ञान एक ही होता है। (2) दो — मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होते हैं। (3) तीन — मति-श्रुत, अवधिज्ञान अथवा मति-श्रुत, मन:पर्ययज्ञान होते हैं। (4) चार — मति-श्रुत, अवधि, और मन:पर्ययज्ञान होते हैं।

प्रश्न 142- ज्ञान को मिथ्याज्ञान क्यों कहा है?

उत्तर - मिथ्यादृष्टियों का मति-श्रुतज्ञान अन्य ज्ञेयों में लगता है, किन्तु प्रयोजनभूत जीवादि तत्त्वों के यथार्थ निर्णय में नहीं लगता होने से मिथ्यादृष्टियों के ज्ञान को मिथ्याज्ञान कहा है।

प्रश्न 143 - ज्ञान को अज्ञान क्यों कहा है?

उत्तर - तत्त्वज्ञान को अभाव होने से ज्ञान को अज्ञान कहा है।

प्रश्न 144 - ज्ञान को कुज्ञान क्यों कहा है?

उत्तर - अपना प्रयोजन सिद्ध नहीं करने की अपेक्षा से कुज्ञान कहा है।

प्रश्न 145 - ज्ञान के दूसरी तरह से कितने भेद हैं?

उत्तर – दो भेद हैं – परोक्ष और प्रत्यक्ष।

प्रश्न 146 – परोक्षज्ञान कौन-कौन से हैं ?

उत्तर – कुमति-कुश्रुत; सुमति-सुश्रुत, ये चार ज्ञान परोक्ष हैं। मति-श्रुतज्ञान पर को जानने की अपेक्षा से परोक्ष होने पर भी निजात्मा की अनुभूति की अपेक्षा प्रत्यक्ष है।

प्रश्न 147 – प्रत्यक्ष के कितने भेद हैं ?

उत्तर – दो भेद हैं – विकल और सकल।

प्रश्न 148 – विकलप्रत्यक्षज्ञान कौन-कौन से हैं ?

उत्तर – कुअवधि-सुअवधि और मन:पर्ययज्ञान, विकल-प्रत्यक्षज्ञान है।

प्रश्न 149 – सकलप्रत्यक्ष कौन सा ज्ञान है ?

उत्तर – केवलज्ञान, सकलप्रत्यक्ष है।

प्रश्न 150 – ज्ञान-दर्शन के बारह भेद किस-किस भाव में आते हैं ?

उत्तर – [1] केवलज्ञान और केवलदर्शन, क्षायिकभाव में आते हैं। [2] अन्य शेष दश भेद, क्षायोपशमिकभाव में आते हैं। [3] इन दस उपयोगों में जितना ज्ञान-दर्शन का अभाव है, वह औदयिकभाव में आता है। गाथा 6 में वर्णित 'शुद्ध-ज्ञान-दर्शन' पारिणामिकभाव में आता है।

प्रश्न 151 – औपशमिकभाव कहाँ गया ?

उत्तर – ज्ञान-दर्शन-वीर्य में औपशमिकभाव नहीं होता है।

उपयोग जीव का लक्षण

अट्ठ चदु णाणदंसण सामण्णं जीवलक्खणं भणियं।
ववहारा सुद्धणया सुद्धं पुणं दंसणं णाणं॥6॥

गाथार्थ :– व्यवहारनय से आठ प्रकार का ज्ञान और चार प्रकार का दर्शन – यह सामान्यरूप से जीव का लक्षण कहा है। शुद्धनय की अपेक्षा से शुद्ध ज्ञान-दर्शन को जीव का लक्षण कहा है।

प्रश्न 152 – चार दर्शनोपयोग, आठ ज्ञानोपयोग के भेदों के लिए छठी गाथा में 'सामान्य' शब्द का क्या अभिप्राय है ?

उत्तर – इसमें दो अभिप्राय हैं। (1) इन बारह भेदों में संसारी और मुक्त का पृथक्-पृथक् कथन न करने के कारण, 'सामान्य' शब्द कहा है। (2) 'शुद्ध दर्शन-ज्ञान' ऐसा कथन न करके, ज्ञान-दर्शनोपयोग के 'सामान्यतया' भेद किए हैं; अत: बारह भेदों में से यथासम्भव जिस जीव के जो लागू पड़े, वह उस जीव का लक्षण समझना चाहिए।

प्रश्न 153 – गाथा चार से छह तक में उपयोग का अर्थ क्या समझना चाहिए और क्या नहीं समझना चाहिए ?

उत्तर – (1) गाथा चार से छह तक में 'उपयोग' का अर्थ ज्ञान-दर्शन का उपयोग समझना चाहिए। (2) चरित्रगुण की जो शुभोपयोग-अशुभोपयोग-शुद्धोपयोग अवस्था है, वह यहाँ नहीं समझना चाहिए।

प्रश्न 154 – इन गाथाओं में व्यवहार किसे कहा और निश्चय किसे कहा है ?

उत्तर – दर्शनोपयोग के चार और ज्ञानापयोग के आठ भेदों को व्यवहार कहा है और 'शुद्ध-दर्शन-ज्ञान' को निश्चय कहा है।

प्रश्न 155 – द्रव्यसंग्रह की तीसरी गाथा में किसे व्यवहार कहा और किसे निश्चय कहा है ?

उत्तर – दश जड़प्राणों को व्यवहार कहा है और शुद्धचेतनाप्राण को निश्चय कहा है।

प्रश्न 156 - उपयोग अधिकार में सम्यक् श्रुतप्रमाण और नय किस प्रकार हैं ?

उत्तर - (1) ज्ञान-दर्शन के भेदों को और शुद्ध-दर्शन-ज्ञान त्रिकाली को एक साथ जानना, सम्यक् श्रुतप्रमाण है। (2) ज्ञान-दर्शन के भेदों को गौण करके 'शुद्ध-दर्शन-ज्ञान' त्रिकाली को जानना, वह निश्चयनय है। (3) 'शुद्ध दर्शन-ज्ञान' त्रिकाली को गौण करके ज्ञान-दर्शन के भेदों को जानना, वह व्यवहारनय है।

प्रश्न 157 - मिथ्यादृष्टि के कुमति-कुश्रुत-कुअवधि होते हैं - इस कथन को किस नय से कहेंगे ?

उत्तर - उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से।

प्रश्न 158 - छद्मस्थ साधक जीव के मति-श्रुत-अवधि-मन:पर्यय ज्ञान होते हैं - इस कथन को किस नय से कहेंगे ?

उत्तर - उपचरितसद्भूतव्यवहारनय से।

प्रश्न 159 - केवलीभगवान को केवलदर्शन और केवलज्ञान है — इस कथन को किस नय से कहेंगे ?

उत्तर - अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय से।

प्रश्न 160 - उपयोग अधिकार की तीनों गाथाओं का सार क्या है ?

उत्तर - 'शुद्ध दर्शन-ज्ञान' त्रिकाली ज्ञायक का आश्रय ले तो कुमति-कुश्रुतादि का अभाव करके, साधकदशा के मति-श्रुतादि को प्रगट करके, क्रम से केवलज्ञान-केवलदर्शन प्रगट करे - यह उपयोग अधिकार की इन तीन गाथाओं का सार है।

प्रश्न 161 - श्रीपरमात्मप्रकाश, गाथा 107 में इन भेदों के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर – मतिज्ञानादि पाँच विकल्परहित जो 'परमपद' है, वह साक्षात् मोक्ष का कारण है।

प्रश्न 162 – श्रीसमयसार, गाथा 204 में इन भेदों के विषय में क्या बताया है ?

उत्तर – 'जिसमें समस्त भेद दूर हुए हैं – ऐसे आत्मस्वभावभूत ज्ञान का ही अवलम्बन लेना चाहिए। ज्ञानसामान्य के अवलम्बन से ही (1) निजपद की प्राप्ति होती है; (2) भ्रान्ति का नाश होता है; (3) जीवतत्त्व का लाभ होता है; (4) अनात्मा (अजीवतत्त्व) का परिहार सिद्ध होता है; (5) द्रव्यकर्म–नोकर्म–भावकर्म बलवान नहीं होते हैं; (6) राग–द्वेष–मोह उत्पन्न नहीं होते, अर्थात् आस्रव उत्पन्न नहीं होता है; (7) राग–द्वेष–मोह के बिना पुनः कर्मास्रव उत्पन्न नहीं होता, अर्थात् संवर उत्पन्न होता है; (8) कर्मबन्ध नहीं होता, अर्थात् बन्ध का अभाव होता है; (9) पूर्वबद्ध कर्म, भुक्त होकर निर्जरा को प्राप्त हो जाते हैं; (10) फिर समस्त कर्मों का अभाव होने से साक्षात मोक्ष होता है; इसलिए शुद्ध–दर्शन–ज्ञानरूप निज सामान्यस्वभाव को ही परमार्थ कहा है।'

प्रश्न 163 – जो मति–श्रुतादि भेदों को जानकर, शान्ति मानता है और अपने आत्मा का आश्रय नहीं लेता है, उसे तत्त्वार्थसूत्र में क्या कहा है ?

उत्तर – 'उन्मत्तवत्' कहा है।

प्रश्न 164 – जीव को मति–श्रुतज्ञान और चक्षु–अचक्षु–दर्शन होते हैं, इसमें कौनसा नय लागू पड़ेगा ?

उत्तर – उपचरितसद्भूतव्यवहारनय लागू पड़ता है, किन्तु कुमति–कुश्रुत–कुअवधि ज्ञान के लिए उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय लागू पड़ता है।

प्रश्न 165 - कोई चतुर कहता है कि मैं शुद्ध दर्शनज्ञानवाला हूँ - ऐसे अभेद निश्चयनय का तो श्रद्धान करता हूँ और व्यवहारनय से मैं मति-श्रुत और चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ - ऐसे भेदरूप व्यवहार की प्रवृत्ति करता हूँ, परन्तु आपने हमारे निश्चयव्यवहार दोनों को झूठा बता दिया तो हम किस प्रकार समझे कि हमारा माना हुआ निश्चय-व्यवहार सत्यार्थ कहलावे ?

उत्तर - (1) मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ - ऐसा अभेदरूप निश्चयनय से जो निरुपण किया हो, उसे तो सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अङ्गीकार करना, (2) और मैं, मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ - ऐसा व्यवहारनय से जो निरुपण किया हो, उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना।

प्रश्न 166 - मैं मति-श्रुतज्ञान, चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ - ऐसे भेदरूप व्यवहारनय के त्याग करने का और मैं शुद्ध दर्शन-ज्ञानवाला हूँ - ऐसे अभेदरूप निश्चयनय को अङ्गीकार करने का आदेश भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने कहीं दिया है ?

उत्तर - (1) श्री समयसार, कलश 173 में आदेश दिया है कि मिथ्यादृष्टि की ऐसी मान्यता है कि निश्चय से मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ और व्यवहारनय से मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ, यह मिथ्या अध्यवसाय है और ऐसे-ऐसे समस्त अध्यवसानों को छोड़ना, क्योंकि मिथ्यादृष्टि को अभेद निश्चय और भेद व्यवहार होता ही नहीं है, ऐसा अनादि से जिनेन्द्रभगवान की दिव्यध्वनि में आया है। (2) स्वयं अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं कि- मैं ऐसा मानता हूँ - ज्ञानियों को, उपचरितसद्भूतव्यवहारनय से मैं मति-श्रुत, चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ - ऐसा भेदरूप पराश्रितव्यवहार होता है, सो सर्व ही छुड़ाया है, तो फिर सन्त पुरुष, शुद्ध ज्ञान-दर्शनरूप निश्चय को ही अङ्गीकार करके, शुद्ध ज्ञानघनरूप निज महिमा में स्थिति

करके क्यों केवलज्ञान-केवलदर्शनादि प्रगट नहीं करते हैं। ऐसा कहकर आचार्य भगवान ने खेद प्रगट किया है।

प्रश्न 167 - मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ - ऐसे अभेदरूप निश्चयनय को अङ्गीकार करने और मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ -ऐसे भेदरुप व्यवहारनय के त्याग के विषय में भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने क्या कहा है?

उत्तर - (1) श्री मोक्षप्राभृत, गाथा 31 में कहा है कि - मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ ऐसे भेदरूप व्यवहारनय की श्रद्धान छोड़कर, मैं शुद्ध-ज्ञान-दर्शनवाला हूँ - ऐसे अभेदरूप निश्चयनय की श्रद्धा करता है, वह योगी अपने आत्मकार्य में जागता है। (2) मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ - ऐसे भेदरुप व्यवहारनय में जागता हूँ, वह अपने आत्मकार्य में सोता है। (3) इसलिए मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ- ऐसे भेदरुप व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर, मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ - ऐसे अभेदरूप निश्चयनय का श्रद्धान करना योग्य है।

प्रश्न 168 - मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ - ऐसे भेदरुप व्यवहारनय का श्रद्धान छोड़कर, मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ - ऐसे अभेदरुप निश्चयनय का श्रद्धान करना क्यों योग्य है।

उत्तर - (1) व्यवहारनय - मैं, शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला-अभेदवस्तु, यह स्वद्रव्य का भाव; मैं, मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला, यह परद्रव्य का भाव; इस प्रकार स्व के भाव और परद्रव्य के भाव को किसी को किसी में मिलाकर निरुपण करता है; अतः मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ - ऐसे भेदरूप व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है; इसलिए उसका त्याग करना **(2) निश्चयनय** - स्वद्रव्य के भावों को और परद्रव्य के

भावों को यथावत निरुपण करता है; किसी को किसी में नहीं मिलाता है; अत: मैं शुद्ध दर्शन-ज्ञानवाला हूँ - ऐसे अभेदरूप निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिए उसका श्रद्धान अङ्गीकार करना।

प्रश्न 169 - आप कहते हो - मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ - ऐसे भेदरूप व्यवहारनय के श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है; इसलिए उसका त्याग करना और मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ - ऐसे अभेदरूप निश्चयनय के श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है; इसलिए उसका श्रद्धान करना, परन्तु जिनमार्ग में तो निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण करना कहा है, उसका क्या कारण है ?

उत्तर - (1) जिनमार्ग में कहीं, मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ — ऐसे अभेदरूप निश्चयनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है, उसे तो 'सत्यार्थ ऐसे ही है'— ऐसा जानना, तथा (2) कहीं मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ - ऐसे भेदरूप व्यवहारनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है, उसे 'ऐसे है नहीं, भेदरूप व्यवहारनय की अपेक्षा निरुपण किया है'— ऐसा जानना। (3) मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षु दर्शनवाला नहीं हूँ; मैं तो शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ; इस प्रकार जानने का नाम ही निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण है।

प्रश्न 170 - कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं कि मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला भेदरूप भी हूँ और मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला अभेदरूप भी हूँ - इस प्रकार हम अभेद-भेदरूप निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण करते हैं — क्या उन महानुभावों का ऐसा कहना गलत है।

उत्तर – हाँ, बिल्कुल ही गलत है, क्योंकि ऐसे महानुभावों को जिनेन्द्रभगवान की आज्ञा का पता नहीं है तथा उन महानुभावों ने अभेद-भेद, निश्चय-व्यवहार दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जान करके, व्यवहार से मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला भी हूँ और निश्चय से मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला भी हूँ – इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो अभेद-भेद, निश्चय-व्यवहार दोनों नयों का ग्रहण करना जिनवाणी में नहीं कहा है।

प्रश्न 171 – मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ – यदि ऐसा भेदरूप व्यवहारनय असत्यार्थ है तो उसका उपदेश जिनवाणी में किसलिए दिया ? मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ – एकमात्र ऐसे अभेदरूप निश्चयनय का ही निरुपण करना था ?

उत्तर – (1) ऐसा ही तर्क समयसार में किया है। वहाँ उत्तर दिया है कि जिस प्रकार म्लेच्छ को म्लेच्छभाषा बिना, अर्थ ग्रहण कराने को कोई समर्थ नहीं है; उसी प्रकार मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु -अचक्षुदर्शनवाला हूँ – ऐसे भेदरूप व्यवहार के बिना, मैं शुद्ध ज्ञान -दर्शनवाला हूँ – ऐसे अभेद परमार्थ का उपदेश अशक्य है; इसलिए मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ – ऐसे भेदरूप उपचरित -असद्भूतव्यवहारनय का उपदेश है। (2) मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ- ऐसे अभेदरूप निश्चय का ज्ञान कराने के लिए, मैं मति -श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ — ऐसे भेदरूप व्यवहार का उपदेश है। भेदरूप व्यवहारनय है, उसका उपदेश भी है, जाननेयोग्य है, परन्तु भेदरूप व्यवहारनय अङ्गीकार करने योग्य नहीं है।

प्रश्न 172 – मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ – ऐसे भेदरूप व्यवहारनय के बिना, मैं शुद्ध-ज्ञान दर्शनवाला हूँ – ऐसे अभेदरूप निश्चयनय का उपदेश कैसे नहीं होता है।

उत्तर – शुद्ध निश्चयनय से मैं शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला हूँ। उसे जो

नहीं पहचानते, उनसे इसी प्रकार कहते रहे, तब तो वे समझ नहीं पायें; इसलिए उनको अभेद वस्तु में भेद उत्पन्न करके, मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला जीव है, ऐसे जीव के विशेष किए, तब मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला जीव है- इत्यादि पर्यायसहित उनको जीव की पहचान हुई, इस प्रकार, मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु -अचक्षुदर्शनवाला हूँ - ऐसे भेदरूप व्यवहार के बिना, अभेदरूप निश्चय का उपदेश न होना जानना।

प्रश्न 173 - मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ - ऐसे भेदरूप व्यवहारनय को कैसे अङ्गीकार नहीं करना, सो समझाइये ?

उत्तर - मुझ शुद्ध ज्ञान-दर्शनरूप अभेद आत्मा में मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनरूप भेद किए, सो आत्मा को भेदरूप ही नहीं मान लेना, क्योंकि मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ - ऐसे भेद तो समझाने के अर्थ किये हैं। निश्चय से आत्मा, शुद्ध ज्ञान-दर्शनवाला अभेद ही है, उसी को जीव वस्तु मानना। संज्ञा-संख्या-लक्षण आदि से भेद कहे, सो कथनमात्र ही हैं; परमार्थ से भिन्न-भिन्न नहीं हैं - ऐसा ही श्रद्धान करना। इस प्रकार मैं मति-श्रुत, चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ — ऐसे भेदरूप व्यवहाररूप अङ्गीकार करने योग्य नहीं है।

प्रश्न 174 - मैं मति-श्रुतज्ञान; चक्षु-अचक्षुदर्शनवाला हूँ - ऐसे भेदरूप व्यवहारनय के कथन को ही जो सच्चा मान लेता है, उस जीव को जिनवाणी में किस-किस नाम से सम्बोधित किया है ?

उत्तर - ऐसे जीव को — (1) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, श्लोक 6 में कहा है— 'तस्य देशना नास्ति'। (2) श्रीसमयसार, कलश, 55 में कहा है — 'यह उसका अज्ञान-मोह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है'। (3) श्रीप्रवचनासार, गाथा 55 में कहा है— 'वह पद-

पद पर धोखा खाता है'। (4) श्री आत्मावलोकन में कहा है — 'यह उसका हरामजादीपना है।'

प्रश्न 175 - उपयोग अधिकार की गाथा 4 से 6 तक भेदों में हेय-ज्ञेय-उपादेय समझाइये ?

उत्तर - (1) शुद्ध दर्शन-ज्ञान त्रिकाली स्वभाव, आश्रय करनेयोग्य परम उपादेय है। (2) कुमति-कुश्रुत-कुअवधि ज्ञान; चक्षु-अचक्षु -दर्शन आदि हेय हैं। (3) साधकदशा के मति-श्रुत-अवधि -मन:पर्ययज्ञान; चक्षु-अचक्षु-अवधिदर्शन, एकदेश प्रगट करनेयोग्य उपादेय हैं। (4) केवलज्ञान-केवलदर्शन पूर्ण प्रगट करनेयोग्य पूर्ण उपादेय है।

अमूर्तिकत्व अधिकार

वण्ण रस पंच गंधा दो फासा अट्ठ णिच्छया जीवे।
णो संति अमुत्ति तदो ववहारा मुत्ति बंधादो ॥7॥

गाथार्थ :- निश्चय से जीव में पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गन्ध और आठ स्पर्श नहीं हैं; अत: जीव अमूर्तिक है; व्यवहारनय की अपेक्षा से कर्मबन्ध होने से जीव मूर्तिक है।

प्रश्न 176 - प्रत्येक जीव का स्वभाव कैसा है ?

उत्तर - प्रत्येक जीव, अनादि-अनन्त अवर्ण-अगन्ध-अरस-अस्पर्श-अशब्द आदि अनन्त गुणों का पुञ्ज है; इसलिए प्रत्येक जीव हर समय अमूर्तिक ही है।

प्रश्न 177 - संसारदशा में जीव कैसा कहने में आता है ?

उत्तर - संसारदशा में अनादि से मूर्तिक पुद्गलकर्मों के साथ उसका बन्ध है; इसलिए संयोग का ज्ञान कराने के लिए उसे मूर्तिक कहा जाता है परन्तु मूर्तिक है नहीं।

प्रश्न 178 – यदि कोई जीव को मूर्तिक ही माने तो क्या दोष आवेगा ?

उत्तर – जीव-अजीव का भेद ही नहीं रहेगा।

प्रश्न 179 – जीव को संसारदशा में मूर्तिक किस नय से कहा जा सकता है ?

उत्तर – अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा जा सकता है कि जीव, मूर्तिक है।

प्रश्न 180 – अमूर्त किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिनमें आठ स्पर्श, पाँच रस, दो गन्ध और पाँच वर्ण न हों, उसे अमूर्त कहते हैं।

नोट – आठ स्पर्श, पाँच रस, दो गन्ध और पाँच वर्ण का स्पष्टीकरण जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला में विश्व के पाठ में देखना चाहिए।

प्रश्न 181 – इस गाथा में निश्चयनय-व्यवहारनय क्या बतलाता है ?

उत्तर – (1) निश्चनयनय, जीव की त्रैकालिक अमूर्तिकता को बतलाता है। (2) व्यवहारनय, पुद्गलकर्म के साथ का अनादि सम्बन्ध बतलाता है। इन दोनों नयों का विषय, परस्पर विरोधी है, परन्तु उसके एक साथ रहने में विरोध नहीं है।

प्रश्न 182 – तीसरी गाथा में और इस गाथा में क्या अन्तर है ?

उत्तर – तीसरी गाथा में पुद्गलप्राणों के साथ का व्यवहार सम्बन्ध बतलाया है और इस सातवीं गाथा में पुद्गलकर्म के साथ का व्यवहार सम्बन्ध बतलाया है।

प्रश्न 183 – अमूर्तिक अधिकार को जानने का क्या लाभ होना चाहिए ?

उत्तर – (1) पुद्गलद्रव्यकर्म से मुझ आत्मा का सर्वथा सम्बन्ध नहीं है; इसलिए मुझे वह हानि-लाभ नहीं कर सकता है। (2) अपने अमूर्तिक त्रैकालिक ध्रुवस्वभाव का आश्रय करने से ही धर्म की शुरुआत, वृद्धि और पूर्णता होती है। (3) आत्मा में पूर्ण शुद्धता होने पर पुद्गलकर्म के साथ का आत्यन्तिक वियोग होकर, आत्मा में सिद्धदशा प्रकट हो जाती है।

प्रश्न 184 – इस अमूर्तिक अधिकार में हेय-ज्ञेय-उपादेय समझाइये ?

उत्तर – (1) अस्पर्श, अरस, अगन्ध, अवर्ण, अशब्दरूप अमूर्तिक त्रिकाली ध्रुवस्वभाव, आश्रय करने योग्य परम उपादेय है। (2) अमूर्त त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से प्रगट शुद्धपर्यायें, प्रगट करनेयोग्य उपादेय हैं। (3) साधकदशा में जितना अस्थिरता का राग है, वह हेय है। (4) द्रव्यकर्म का सम्बन्ध, व्यवहार से ज्ञान का ज्ञेय है।

प्रश्न 185 – छहढ़ाला में अमूर्तिक को किस नाम से सम्बोधन किया है और उसका अर्थ क्या है ?

उत्तर – (1) 'बिनमूरत' नाम से सम्बोधन किया है। (2) 'बिनमूरत' अर्थात्, आँख-नाक-कान औदारिक आदि शरीरोंरूप मेरी मूर्ति नहीं है।

कर्ता अधिकार

पुग्गलकम्मादीणं कत्ता ववहारदो दु णिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धभावाणं ॥8॥

गाथार्थ :- आत्मा, व्यवहारनय से पुद्गलकर्मादि का कर्ता है, निश्चयनय से चेतनकर्मों का कर्ता है और शुद्धनय से शुद्धभावों का कर्ता है।

प्रश्न 186 - कर्तृत्व और अकर्तृत्व क्या है ?

उत्तर - ये सामान्यगुण हैं, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य में पाये जाते हैं।

प्रश्न 187 - कर्तृत्व और अकर्तृत्वगुण क्या बतलाते हैं ?

उत्तर - (1) प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी अवस्था का कर्ता है, यह कर्तृत्वगुण बतलाता है। और (2) पर की अवस्था का कर्ता नहीं हो सकता है - यह अकर्तृत्वगुण बतलाता है।

प्रश्न 188 - कर्तृत्व और अकर्तृत्वगुण के कारण जीव किसका कर्ता है और किसका कर्ता नहीं है ?

उत्तर - (1) चैतन्यस्वभाव के कारण जीव, ज्ञप्ति तथा दृशि क्रिया का कर्ता है; द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्ता नहीं है। (2) अज्ञानदशा में शुभाशुभ विकारीभावों का कर्ता है; विकारीभावों के निमित्तरूप द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्ता सर्वथा नहीं है। (3) जीव, हस्तादि शरीर की क्रिया का कर्ता तो कदापि नहीं है।

प्रश्न 189 - जीव, घट-पट, रोटी खाने, बालने आदि का कर्ता कहा जाता है, वह किस अपेक्षा से है ?

उत्तर - जीव को अत्यन्त भिन्न वस्तुओं का कर्ता उपचरितअसद्भूत -व्यवहारनय से कहा जाता है; कर्ता है नहीं।

प्रश्न 190 - औदारिक, वैक्रियिक, आहारक इन तीन शरीरों का, आहारादि छह पर्याप्ति योग्य पुद्गलपिण्डरूप नोकर्मों का तथा ज्ञानावरणादि आठ कर्मों का कर्ता, जीव को किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर - अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कर्ता कहा जाता है; कर्ता है नहीं।

प्रश्न 191 - जीव, शुभाशुभविकारी भावों का कर्ता किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर – उपचरितसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है।

प्रश्न 192 – शुद्धभावों का कर्ता, जीव को किस अपेक्षा कहा जाता हैं ?

उत्तर – अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय से।

प्रश्न 193 – जीव, अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय से किस का कर्ता है, समझाइये ?

उत्तर – संवर-निर्जरा-मोक्ष; निश्चयसम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र; निश्चयप्रतिक्रमण-आलोचना- प्रत्याख्यान; ध्यान, भक्ति, समाधि आदि समस्त शुद्धभावों का कर्ता है क्योंकि यह सब वीतरागी क्रियाएँ हैं।

प्रश्न 194- कर्ता अधिकार की आठवीं गाथा में हेय-ज्ञेय-उपादेय लगाकर समझाइये ?

उत्तर – (1) कर्तृत्व-अकर्तृत्वगुणरूप त्रिकाली आत्मा, आश्रय करनेयोग्य परम उपादेय है। (2) त्रिकाली आत्मा के आश्रय से जो शुद्धदशा प्रगटी, वह प्रगट करनेयोग्य उपादेय है। (3) साधकदशा में जो व्यवहार रत्नत्रयादि के विकल्प हैं, वे हेय हैं। (4) द्रव्यकर्म-नोकर्मादि सब व्यवहारनय से ज्ञेय है।

प्रश्न 195 – जीव, द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्ता तो कदापि नहीं है – ऐसा कहीं श्रीसमयसार में बताया है ?

उत्तर – श्रीसमयसार की 85-86 गाथा में, जो द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्ता, जीव को मानता है, वह सर्वज्ञ के मत से बाहर है और वह द्विक्रियावादी है — ऐसा कहा है।

प्रश्न 196 – जो द्रव्यकर्म-नोकर्म का कर्ता, जीव को मानता है, उसे छहढ़ाला में क्या कहा है ?

उत्तर – उसे बहिरात्मा के नाम से सम्बोधन किया है।

प्रश्न 197 – कर्ता-अधिकार का सार क्या है ?

उत्तर – नित्य-निरञ्जन-निष्क्रिय-निजात्मा त्रिकाली द्रव्य का आश्रय लेकर, पर्याय मे शुद्धभावों का कर्ता बने — यही सार है।

प्रश्न 198– कुम्हार ने घड़ा बनाया – इस वाक्य पर निमित्त-कारण की परिभाषा लगाकर समझाइये ?

उत्तर – कुम्हार स्वयं स्वत: घड़ेरूप नहीं परिणमें, परन्तु घड़े की उत्पत्ति में अनुकूल होने का जिस कुम्हार पर आरोप आ सके, उस कुम्हार को घड़ा बनने के कार्य का निमित्तकारण कहते हैं।

प्रश्न 199 – कुम्हार ने घड़ा बनाया – इस वाक्य पर निमित्त-नैमित्तिक को समझाइये ?

उत्तर – मिट्टी जब स्वयं स्वत: घड़ेरूप परिणमित होती है, तब कुम्हार के राग का / निमित्त का, घड़े के साथ सम्बन्ध है, यह बतलाने के लिए घड़े को नैमित्तिक कहते हैं। इस प्रकार कुम्हार का राग और घड़े के स्वतन्त्रसम्बन्ध को निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध कहते हैं।

विवहारा सुहदुक्खं पुग्गलकम्मप्फलं पभुंजेदि।
आदा णिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स॥9॥

गाथार्थ :– व्यवहारनय से आत्मा, सुख-दु:खरूप पुद्गलकर्म के फल को भोगता है और निश्चयनय से अपने चेतनभाव को भोगता है।

प्रश्न 200 – भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व क्या हैं ?

उत्तर – सामान्यगुण हैं क्योंकि ये सब द्रव्यों में पाये जाते हैं।

प्रश्न 201 – भोक्तृत्व-अभोक्तृत्वगुण क्या बतलाते हैं ?

उत्तर – (1) प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी अवस्था का भोगता है, यह भोक्तृत्वगुण बतलाता है, और (2) पर की अवस्था का भोक्ता नहीं हो सकता है, वह अभोक्तृत्वगुण बतलाता है।

प्रश्न 202 – भोक्तृत्व-अभोक्तृत्व सामान्यगुण के कारण, जीव किसका भोक्ता है और किसका भोक्ता नहीं है ?

उत्तर – (1) अज्ञानदशा में जीव, हर्ष-विषादरूप, अर्थात सुख-दु:ख विकारीभावों का भोक्ता है किन्तु विकारीभावों के निमित्तरूप द्रव्यकर्म-नोकर्म का भोक्ता सर्वथा नहीं है। (2) साधकदशा में अतीन्द्रियसुख का अंशत: भोक्ता है। (3) केवलज्ञानादि होने पर परिपूर्ण सुख का भोक्ता है। (4) जीव, पुद्गलकर्मों के अनुभाग का या परपदार्थों का भोक्ता किसी भी अपेक्षा नहीं है।

प्रश्न 203 – जीव, अत्यन्त भिन्न परपदार्थों का भोक्ता है – ऐसा किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर – यह उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है, किन्तु वास्तव में परपदार्थों का भोक्ता नहीं है।

प्रश्न 204 – जीव, औदारिक आदि शरीर, पाँच इन्द्रियों तथा आठ द्रव्यकर्मों का भोक्ता किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर – अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है, किन्तु वास्तव में शरीर, इन्द्रियों तथा कर्मों का भोक्ता नहीं है।

प्रश्न 205 – जब जीव, अत्यन्त भिन्न परपदार्थ, शरीर, इन्द्रियाँ तथा द्रव्यकर्मों का भोक्ता सर्वथा नहीं है, तब आगम में उनका भोक्ता क्यों कहा जाता है ?

उत्तर – जीव का भाव, उस समय निमित्त होने से इनका भोक्ता है – ऐसा कहा जाता है।

प्रश्न 206 - जीव को हर्ष-विषाद, सुख-दु:खरूप विकारीभावों का भोक्ता किस अपेक्षा से आगम में कहा है ?

उत्तर - उपचरित सद्भूत व्यवहारनय से कहा है।

प्रश्न 207 - साधकदशा में जीव, अतीन्द्रियसुख का भोक्ता है - यह किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर - यह अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है।

प्रश्न 208 - केवलज्ञानी अपने परिपूर्ण सुख के भोक्ता हैं - किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर - यह अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है।

प्रश्न 209 - भोक्तृत्व अधिकार में हेय-ज्ञेय-उपादेय किस प्रकार है ?

उत्तर - (1) भोक्तृत्व-अभोक्तृत्वरूप त्रिकाली आत्मा, आश्रय करनेयोग्य परम उपादेय है। (2) साधकदशा में अतीन्द्रियसुख का अंशत: भोक्ता है और यह एक देश प्रगट करनेयोग्य उपादेय है। (3) केवली परिपूर्ण अतीन्द्रियसुख के भोक्ता हैं - यह पूर्ण भोगने की अपेक्षा पूर्ण उपादेय है। (4) साधक को अस्थिरता सम्बन्धी सुख-दु:ख, हेय हैं। (5) साता-असाता के अनुभाग का फल तथा अत्यन्त भिन्न परपदार्थ, इन्द्रियाँ आदि व्यवहार से ज्ञान का ज्ञेय हैं।

प्रश्न 210 - भोक्तृत्व अधिकार का सार क्या है ?

उत्तर - जीव, यथार्थ वस्तुस्वरूप को जानकर, पर की और विकार की कर्तृत्व और भोक्तृत्व बुद्धि छोड़कर, अपने सहज निर्विकार चिदानन्दस्वरूप शुद्धपर्याय का कर्ता-भोक्ता होने का प्रयत्न करे — यह इस अधिकार का सार है।

स्वदेह परिणामत्व अधिकार

अणुगुरुदेहपमाणो उवसंहारप्पसप्पदो चेदा।
असमुहदो ववहारा णिच्छयणयदो असंखदेसो वा॥10॥

गाथार्थ :- समुद्घात के अतिरिक्त यह जीव, व्यवहारनय की अपेक्षा से संकोच-विस्तार के कारण अपने छोटे अथवा बड़े शरीरप्रमाण रहता है और निश्चयनय की अपेक्षा से असंख्यातप्रदेशी है।

प्रश्न 211 - प्रत्येक जीव का स्वक्षेत्र क्या है?

उत्तर - प्रत्येक जीव का स्वक्षेत्र, लोकाकाश जितना असंख्यात प्रदेशवाला है। प्रदेशों की संख्या सदैव उतनी की उतनी ही रहती है, क्योंकि स्वचतुष्टय ही एक अखण्डद्रव्य है।

प्रश्न 212 - क्या छह द्रव्यों में से किसी द्रव्य के क्षेत्र में खण्ड-टुकड़े हो सकते हैं?

उत्तर - बिल्कुल नहीं हो सकते हैं, क्योंकि सभी मूलद्रव्य अखण्ड हैं; उसी प्रकार प्रत्येक जीव भी अखण्डद्रव्य हैं; इसलिए उसके खण्ड, छेदन, टुकड़े कदापि नहीं हो सकते हैं।

प्रश्न 213 - प्रत्येक द्रव्य के स्वक्षेत्र से क्या सिद्ध होता है?

उत्तर - प्रत्येक द्रव्य का क्षेत्र पृथक्-पृथक् है; इसलिए जीव के क्षेत्र में अन्य कोई द्रव्य प्रवेश नहीं कर सकता है और जीव भी किसी दूसरे के क्षेत्र में प्रवेश नहीं कर सकता है।

प्रश्न 214 - पुद्गलस्कन्ध के तो खण्ड, छेदन, टुकड़े हो जाते हैं, तब सभी मूलद्रव्य अखण्ड हैं, यह बात कहाँ रही?

उत्तर - पुद्गलस्कन्ध, मूलद्रव्य नहीं है; मूलद्रव्य तो परमाणु है।

प्रश्न 215 - प्रदेशत्वगुण क्या है और क्या बताता है?

उत्तर – (1) प्रदेशत्वगुण, सामान्यगुण है। (2) प्रदेशत्वगुण के कारण प्रत्येक द्रव्य का अपना-अपना आकार होता है।

प्रश्न 216 – जीव के क्षेत्र का आकार तो छोटा-बड़ा देखने में आता है ?

उत्तर – जीव के प्रदेश, संख्या अपेक्षा लोकप्रमाण असंख्यात ही रहते हैं, किन्तु संसारदशा में वे प्रदेश अपने कारण से संकोच-विस्तार को प्राप्त होते हैं; इस कारण संसारदशा में जीव का आकार एक-सा नहीं रहता है।

प्रश्न 217 – जीव के साथ शरीर का संयोग होता है, तब तो शरीर के कारण ही जीव का आकार बदलता होगा ?

उत्तर – बिल्कुल नहीं; जीव के साथ संयोगरूप जो शरीर है, उसके आकार के अनुसार जीव का अपना आकार अपने कारण से होता है; शरीर के कारण नहीं होता है।

प्रश्न 218 – समुद्घात किसे कहते हैं और कितने हैं ?

उत्तर – मूलशरीर को छोड़े बिना, आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना, समुद्घात कहलाता है। समुद्घात के सात भेद हैं – वेदना, कषाय, विक्रिया, मारणान्तिक, तैजस, आहारक, और केवलीसमुद्घात।

प्रश्न 219 – वेदनासमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर – अधिक दुःख की दशा में मूलशरीर को छोड़े बिना, जीव के प्रदेशों का बाहर निकलना, वेदनासमुद्घात है।

प्रश्न 220 – कषायसमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर – क्रोधादि तीव्र कषाय के उदय से, धारण किये हुए शरीर को छोड़े बिना, आत्मप्रदेशों का शरीर से बाहर निकलना, कषायसमुद्घात है।

प्रश्न 221 – विक्रियासमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर – विविध क्रिया करने के लिए मूलशरीर को छोड़े बिना, आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना, विक्रियासमुद्घात है।

प्रश्न 222 – मारणान्तिकसमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर – जीव, मृत्यु के समय तत्काल ही शरीर को नहीं छोड़ता, किन्तु शरीर में रहकर ही अन्य जन्म स्थान को स्पर्श करने के लिए आत्मप्रदेशों का बाहर निकलना, मारणान्तिक समुद्घात है।

प्रश्न 223 – तैजससमुद्घात के कितने भेद हैं ?

उत्तर – दो भेद हैं – शुभतैजस और अशुभतैजस।

प्रश्न 224 – शुभतैजससमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर – जगत को रोग या दुर्भिक्ष से दु:खी देखकर, महामुनि को दया उत्पन्न होने से, जगत का दु:ख दूर करने के लिए, मूलशरीर को छोड़े बिना ही तपोबल से दाहिने कन्धे में से पुरुषाकार सफेद पुतला निकलता है और दु:ख दूर करके पुन: शरीर में प्रवेश करता है, उसे शुभतैजससमुद्घात कहते हैं।

प्रश्न 225 – अशुभतैजससमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर – अनिष्टकारक पदार्थों को देखकर, मुनियों के मन में क्रोध उत्पन्न होने से, उनके बायें कन्धे से बिलाब के आकार का सिन्दूरी रंग का पुतला निकलता है। वह, जिस पर क्रोध हुआ हो, उसका नाश करता है और साथ ही उस मुनि का भी नाश करता है, उसे अशुभतैजससमुद्घात कहते हैं।

प्रश्न 226 – आहारकसमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर – छठवें गुणस्थानवर्ती, परम ऋद्धिधारी किसी मुनि के तत्त्वसम्बन्धी शङ्का उत्पन्न होने पर, अपने तपोबल से, मूल-शरीर

को छोड़े बिना, मस्तक में से एक हाथ जितना पुरुषाकार सफेद और शुभ पुतला निकलता है। वह केवली या श्रुतकेवली के पास जाता है, वहाँ उनका चरणस्पर्श होते ही अपनी शङ्का का निवारण करके, पुनः अपने स्थान में प्रवेश करता है।

प्रश्न 227 - केवलीसमुद्घात किसे कहते हैं ?

उत्तर - केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद, मूलशरीर को छोड़े बिना दण्ड, कपाट, प्रतर और लोकपूरण क्रिया करते हुए केवली के आत्मप्रदेशों का फैलना, केवलीसमुद्घात है।

प्रश्न 228 - केवलीसमुद्घात किसे होता है ?

उत्तर - केवलीसमुद्घात सभी केवलियों को नहीं होता है, किन्तु जिन्हें केवलज्ञान उत्पन्न होने के बाद छह मास नहीं हुए हों उन्हें; तथा छह मास के बाद भी चार अघातियाकर्मों में से आयुकर्म की स्थिति अल्प हो, तो उन्हीं को नियम से केवलीसमुद्घात होता है।

प्रश्न 229 - जीव के प्रदेशों का आकार, शरीराकार किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर - अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है, है नहीं।

प्रश्न 230 - जीव, समुद्घात करता है, यह किस नय से कहा जाता है ?

उत्तर - अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है।

प्रश्न 231 - जीव, निश्चयनय से कैसा है ?

उत्तर - जीव के जो असंख्यात प्रदेश है, उनकी वह संख्या सदा उतनी ही रहती है, किसी भी समय एक भी प्रदेश कम-बढ़ नहीं होता है। जीव के प्रदेशों की संख्या, लोकप्रमाण असंख्यात है; इसलिए निश्चय से जीव, असंख्यात प्रदेशी है।

प्रश्न 232 - स्वदेह परिमाणत्व अधिकार में हेय-ज्ञेय-उपादेयपना किस प्रकार है ?

उत्तर - (1) जीव, संख्या अपेक्षा लोकप्रमाण असंख्यात प्रदेशी है, वह आश्रय करनेयोग्य परम उपादेय है। (2) उसके आश्रय से जो शुद्ध वीतरागीदशा प्रगटी, वह प्रगट करनेयोग्य उपादेय है। (3) शरीर व कर्म का संयोगसम्बन्ध व्यवहार से ज्ञान का ज्ञेय है। (4) जो अशुद्धदशा है, वह हेय है।

प्रश्न 233 - दसवीं गाथा का मर्म क्या है ?

उत्तर - जीव को देह के साथ अपनेपने की मान्यता अनादि से है। इसी मान्यता से संसार में परिभ्रमण करता हुआ दु:खी रहता है; इसलिए देहादिक को पृथक जानकर, निर्मोहरूप निज शुद्ध आत्मा का आश्रय लेकर, सुख प्रगट करना चाहिए।

प्रश्न 234 - जीव के असंख्यात प्रदेशों में क्या-क्या भरा हुआ है ?

उत्तर - ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण भरे हैं।

प्रश्न 235 - आत्मा को 'शून्य' क्यों कहा जाता है ?

उत्तर - रागादि विभावपरिणामों की अपेक्षा से आत्मा को शून्य कहा जाता है परन्तु बौद्धमत के समान अनन्त ज्ञानादि गुणों की अपेक्षा से शून्य नहीं है।

प्रश्न 236 - आत्मा को जड़ क्यों कहा जाता है ?

उत्तर - बाह्य विषयवाले इन्द्रियज्ञान का अभाव होने की अपेक्षा से आत्मा को जड़ कहा जाता है परन्तु सांख्यमत की मान्यता के अनुसार, सर्वथा जड़-ज्ञानशून्य नहीं है।

प्रश्न 237 - इस दसवीं गाथा में 'अणु' मात्र शरीर कहा है - इससे क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – 'अणु' शब्द से उत्सेध घनांगुल के असंख्यातवें भागप्रमाण लब्धि-अपर्याप्तक निगोद का शरीर समझना परन्तु पुद्गलपरमाणु नहीं समझना।

प्रश्न 238 – इस गाथा 'गुरु' शब्द से क्या समझना चाहिए ?

उत्तर – 'गुरु शरीर' शब्द से एक हजार योजन प्रमाण महामत्स्य का शरीर समझना और मध्यम अवगाहन द्वारा मध्यम शरीर समझना।

प्रश्न 239 – संकोच-विस्तार को समझाइये ?

उत्तर – जैसे, दूध में डाला गया पद्मरागमणि अपनी कान्ति से दूध को प्रकाशित करता है; वैसे ही संसारी जीव अपने शरीरप्रमाण ही रहता है। गरम करने से दूध में उफान आता है, तब दूध के साथ पद्मरागमणि की कान्ति भी बढ़ती जाती है। इसी प्रकार ज्यों-ज्यों शरीर पुष्ट होता है, त्यों-त्यों उसके साथ ही साथ आत्मा के प्रदेश भी फैल जाते हैं और जब शरीर दुर्बल हो जाता है, तब जीव के प्रदेश भी संकुचित हो जाते हैं — ऐसा स्वतन्त्रतरूप निमित्त-नैमित्तिकसम्बन्ध है। *[श्री पञ्चास्तिकाय, गाथा 33]*

संसारित्व अधिकार

पुढविजलतेयवाऊ वणफ्फदी विविहथावरेइंदी।
विगतिगचदुपंचक्खा तसजीवा होंति संखादी॥11॥

गाथार्थ :- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि विविध प्रकार के स्थावर, एकेन्द्रिय जीव हैं और शंखादि दो, तीन, चार तथा पाँच इन्द्रियवाले त्रसजीव हैं।

प्रश्न 240 – जीव, वास्तव में कैसा है ?

उत्तर – अतीन्द्रिय अमूर्त निज परमात्मस्वभावी है।

प्रश्न 241 – जीवों के कितने भेद हैं ?

उत्तर – दो भेद हैं – सिद्ध और संसारी।

प्रश्न 242 – सिद्ध जीव कैसे हैं ?

उत्तर – सिद्ध जीव, परिपूर्ण सुखी है।

प्रश्न 243 – संसारी के कितने भेद हैं ?

उत्तर – तीन भेद हैं – (1) बहिरात्मा, (2) अन्तरात्मा, और (3) परमात्मा।

प्रश्न 244 – विश्व में दु:खी कौन है ?

उत्तर – मात्र मिथ्यामान्यताओं के कारण, चारों गतियों के बहिरात्मा जीव, परिपूर्ण दु:खी ही हैं।

प्रश्न 245 – बहिरात्मा दु:खी क्यों हैं ?

उत्तर – विश्व के पदार्थ व्यवहारनय से मात्र ज्ञेय हैं परन्तु बहिरात्मा ऐसा न मानकर, परपदार्थों में इष्ट-अनिष्टबुद्धि होने के कारण ही दु:खी है।

प्रश्न 246 – बहिरात्मा के दु:ख को स्पष्ट समझाइये ?

उत्तर – आत्मा का स्वभाव, ज्ञाता-दृष्टा है सो स्वयं केवल देखने जाननेवाला तो रहता नहीं है, जिन पदार्थों को देखता-जानता है, उनमें इष्ट-अनिष्टपना मानता है; इसलिए रागी-द्वेषी होकर किसी का सद्भाव चाहता है, किसी का अभाव चाहता है परन्तु उसका सद्भाव या अभाव इसका किया हुआ होता नहीं, क्योंकि कोई द्रव्य, किसी द्रव्य का कर्ता-हर्ता है नहीं; सर्व द्रव्य अपने-अपने स्वभावरूप परिणमित होते हैं। यह बहिरात्मा, वृथा ही कषायभाव से आकुलित होता है।

प्रश्न 247 – अन्तरात्मा की क्या दशा है ?

उत्तर – अन्तरात्मा अपनी शुद्धतानुसार सुखी है।

प्रश्न 248 - अरहन्त परमात्मा कैसे हैं ?

उत्तर - अरहन्तभगवान परिपूर्ण सुखी हैं।

प्रश्न 249 - संसारी जीवों के दूसरी तरह से कितने भेद हैं ?

उत्तर - दो भेद हैं - स्थावर और त्रस।

प्रश्न 250 - स्थावरजीव कौन हैं ?

उत्तर - सभी एकेन्द्रिय जीव, स्थावरजीव हैं, वे पाँच प्रकार के हैं। पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, और वनस्पतिकाय।

प्रश्न 251 - त्रसजीव कौन हैं ?

उत्तर - दो इन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रिय तक के जीव, त्रस हैं।

प्रश्न 252 - शास्त्रों में स्थावर-त्रस ऐसे भेद क्यों किये हैं ?

उत्तर - जीव तो औदारिक आदि शरीर, इन्द्रियों से सर्वथा भिन्न है; अपने ज्ञान-दर्शनादि स्वभाव से अभिन्न है, उसका ज्ञान कराने के लिए व्यवहारनय से त्रस-स्थावर ऐसे भेद किए हैं।

प्रश्न 253 - श्री पञ्चास्तिकाय, गाथा 121 में इस विषय में क्या बताया है ?

उत्तर - शास्त्रकथित यह काय, इन्द्रियाँ, मन-सब पुद्गल की पर्यायें हैं; जीव नहीं है, किन्तु उनमें रहनेवाला जो ज्ञान-दर्शन है, वह जीव है — ऐसा जानना चाहिए।

प्रश्न 254 - जीव, स्थावर किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर - अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से जीव, स्थावर कहा जाता है।

प्रश्न 255 - जीव, त्रस किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर - अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से जीव, त्रस कहा जाता है।

प्रश्न 256 - जीवों के तीन प्रकार कौन-कौन से हैं ?

उत्तर - (1) असिद्ध, (2) नो सिद्ध, और (3) सिद्ध।

प्रश्न 257 - असिद्ध में कौन जीव आते हैं ?

उत्तर - निगोद से लगाकर चारों गतियों के जीव, जब तक निश्चयसम्यग्दर्शन न हो, तब तक वे सब असिद्ध ही हैं।

प्रश्न 258 - नो सिद्ध जीव में कौन आते हैं ?

उत्तर - नो का अर्थ अल्प है। चौथे गुणस्थान से जीव को 'नो सिद्ध' कहा जाता है; इसलिए अन्तरात्मा को ईषत् सिद्ध, अर्थात् 'नो सिद्ध' कहा जाता है।

प्रश्न 259 - सिद्ध कैसे हैं ?

उत्तर - रत्नत्रय प्राप्त सिद्ध हैं।

प्रश्न 260 - शुद्ध निश्चयनय से शुद्ध-बुद्ध एक स्वभावी होने पर भी जीव, स्थावर-त्रस क्यों होता है ?

उत्तर - अपने शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव को भूलकर, इन्द्रियसुखों में रुचिपूर्वक आसक्त होकर त्रस-स्थावर जीवों का घात करता है; इसलिए त्रस-स्थावर होता है।

प्रश्न 261 - त्रस-स्थावर न बनना पड़े, उसके लिए क्या करना चाहिए ?

उत्तर - अपने एक शुद्ध-बुद्धस्वभाव का आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति करे तो त्रस-स्थावर न होकर, क्रम से मोक्ष की प्राप्ति हो।

प्रश्न 262 - मनुष्यभव व दिगम्बरधर्म प्राप्त होने पर भी क्या यह जीव, पृथ्वीकाय कहला सकता है ?

उत्तर - (1) जैसे, हम पृथ्वीकाय पर चलते हैं, दबने से वह दु:ख का अनुभव करता है, लेकिन कुछ कह नहीं सकता है; उसी

प्रकार मनुष्यभव व दिगम्बरधर्म प्राप्त होने पर भी, मैं सब को दबाऊँ और कोई मेरे सामने एक शब्द भी उच्चारण न कर सके — ऐसा भाव करता है, वह उस समय पृथ्वीकाय ही है क्योंकि जैसी मति, वैसी गति होती है। (2) यदि ऐसे भाव के समय, आयुबन्ध हो गया तो 'पृथ्वीकाय' की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर तुझे सब दबायेंगे और तू एक शब्द भी उच्चारण नहीं कर सकेगा।

प्रश्न 267 - कोई कहे हमें पृथ्वीकाय न बनना पड़े, तो उसका क्या उपाय है ?

उत्तर - मैं सब को दबाऊँ और मेरे सामने कोई एक शब्द भी उच्चारण न कर सके — ऐसे भावरहित शुद्ध-बुद्ध अस्पर्शस्वभावी निज भगवान है, उसका आश्रय ले तो भगवानपना पर्याय में प्रगट हो जाएगा और पृथ्वीकाय नहीं बनना पड़ेगा।

प्रश्न 268 - मनुष्यभव व दिगम्बरधर्म प्राप्त होने पर भी क्या यह जीव, जलकाय कहला सकता है ?

उत्तर - (1) जैसे, तालाब का पानी ऊपर से देखने पर एक जैसा लगता है, लेकिन कहीं दो गज का खड्डा है, कहीं तीन गज का खड्डा है, कहीं ऊँचा है, कहीं नीचा है; उसी प्रकार मनुष्यभव व दिगम्बरधर्म होने पर भी ऊपर से चिकनी-चुपड़ी बातें करता है, अन्दर कपट रखता है। वह जीव उस समय 'जलकाय' ही है, क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। (2) ऐसे भाव के समय यदि आयु का बन्ध हो गया तो 'जलकाय' की योनि में जाना पड़ेगा।

प्रश्न 269 - कोई कहे हमें 'जलकाय' की योनि में नहीं जाना पड़े, तो उसका कोई उपाय है ?

उत्तर - छल-कपटरहित तेरी आत्मा का स्वभाव है, उसका आश्रय ले तो जलकाय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि मुक्तिरूपी सुन्दरी का नाथ बन जावेगा।

प्रश्न 270 - मनुष्यभव व दिगम्बरधर्म प्राप्त होने पर भी क्या यह जीव, अग्निकाय कहला सकता है?

उत्तर - जैसे, रोटी बनाने के बाद तवे को उतारते हैं तो तवे में टिम-टिम चिंगारियाँ दिखती है, तो लोग कहते हैं कि तवा हँसता है, परन्तु वह वास्तव में अग्निकाय के जीव हैं; उसी प्रकार मनुष्यभव व दिगम्बरधर्म प्राप्त होने पर भी, दूसरों को बढ़ता हुआ देखकर जो ईर्ष्या करता है, उस समय वह जीव 'अग्निकाय' ही है, क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। (2) यदि उस समय आयु का बन्ध हो गया तो 'अग्निकाय' की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर जलने में ही जीवन बीतेगा।

प्रश्न 271 - कोई कहे, अरे भाई! हमें 'अग्निकाय' की योनि में न जाना पड़े-ऐसा कोई उपाय है?

उत्तर - ईर्ष्यारहित तेरा त्रिकाली स्वभाव है, उसका आश्रय ले तो अग्निकाय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि पर्याय में तीन लोक का नाथ बन जाएगा।

प्रश्न 272 - दिगम्बरधर्म व मनुष्यभव प्राप्त होने पर भी, क्या यह जीव 'वायुकाय' कहला सकता है?

उत्तर - जैसे, हवा के झोंके कभी तेज, कभी मन्द चलते रहते हैं, स्थिर नहीं रहते हैं; उसी प्रकार जो, मनुष्यभव व दिगम्बरधर्म प्राप्त होने पर भी, जहाँ पर जन्म-मरण के अभाव की बात चलती है, उसके बदले अन्य बात का विचार करता है, ऊँघता है या अन्य अस्थिरता करता है, वह जीव उस समय वायुकाय ही है, क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है। (2) यदि अस्थिरता के भावों के समय आयु का बन्ध हो गया तो 'वायुकाय' की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर अस्थिरता ही बनी रहेगी।

प्रश्न 273 - कोई कहे - हमें वायुकाय नहीं बनना है, तो हम क्या करें ?

उत्तर - अस्थिरता के भावों से रहित, परमपारिणामिकभाव है, उसकी ओर दृष्टि करे तो वायुकाय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि क्रम से पूर्ण क्षायिकपना प्रगट करके पूर्ण सुखी हो जाएगा।

प्रश्न 274 - दिगम्बरधर्म व मनुष्यभव प्राप्त होने पर भी क्या यह जीव 'वनस्पतिकाय' कहला सकता है, और यह वनस्पतिकाय में क्यों जाता है ?

उत्तर - जैसे, बाजार से सब्जी लाते हैं, आप उसे चाकू से काटते हैं, वह आपसे कुछ नहीं कहती है; उसी प्रकार मनुष्यभव पाने पर भी 'मैं दूसरों को ऐसा मारूँ, वह एक पग भी न चल सके' — ऐसा भाव करता है, वह उस समय वनस्पतिकाय ही है, क्योंकि 'जैसी मति, वैसी गति' होती है।' (2) यदि ऐसे भावों के समय आयु का बन्ध हो गया तो वनस्पतिकाय की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ एक-एक समय करके निरन्तर दु:ख उठाना पड़ेगा।

प्रश्न 275 - कोई कहे हमें 'वनस्पतिकाय' में न जाना पड़ता, इसका कोई उपाय है ?

उत्तर - मैं सबको मारूँ और वह एक पग भी आगे न बढ़े सके —ऐसे-ऐसे भावों से रहित, तेरी आत्मा का अस्पर्शस्वभाव है, उसका आश्रय ले तो वनस्पतिकाय की योनि में नही जाना पड़ेगा-बल्कि गुणस्थान, मार्गणास्थान से रहित परमपद को प्राप्त करेगा।

प्रश्न 276 - ज्ञानी, त्रस-स्थावर में क्यों उत्पन्न नहीं होते हैं ?

उत्तर - अपने शुद्ध-बुद्ध एक स्वभाव का आश्रय होने से तथा विषयों में सुख-अभिलाषा की बुद्धि न होने कारण ज्ञानी जीव, त्रस-स्थावर में उत्पन्न नहीं होते हैं।

प्रश्न 277 – संसार परिभ्रमण की मूलभूत भूल क्या है ?

उत्तर – एकमात्र एक शुद्ध-बुद्ध निज आत्मा की दृष्टि न करना ही स्वयं की भूल है, उसका कारण – कर्म या परवस्तु या ईश्वर नहीं है।

प्रश्न 278 – यदि सिद्ध जीव न माना जावे, तो क्या दोष उत्पन्न होगा ?

उत्तर – (1) यदि सिद्ध जीव न हो तो जीवों की संसारी अवस्था भी साबित नहीं होगी, क्योंकि संसारीदशा का प्रतिपक्षभाव सिद्धदशा है। (2) यदि जीव के संसारदशा ही नहीं होगी तो फिर धर्म करने और अधर्म को दूर करने का पुरुषार्थ ही नहीं रहेगा।

चौदह जीव समास

समणा अमणा णेया पंचिंदिय णिम्मणा परे सव्वे।
बादरसुहमेइंदी सव्वे पज्जत्त इदरा य॥12॥

गाथार्थ :– पंचेन्द्रिय जीव, संज्ञी और असंज्ञी – ऐसे दो प्रकार के जानना। शेष सब जीव, मनरहित असंज्ञी हैं। एकेन्द्रिय जीव, बादर और सूक्ष्म दो प्रकार के हैं। ये सब जीव, पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं।

प्रश्न 279 – जीवसमास किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिसके द्वारा अनेक प्रकार के जीव के भेद जाने जा सके, उसे जीवसमास कहते हैं।

प्रश्न 280 – जीवसमास कितने और कौन-कौन से हैं ?

उत्तर – जीवसमास चौदह होते हैं — (1) एकेन्द्रिय बादर, (2) एकेन्द्रिय सूक्ष्म, (3) दो इन्द्रिय, (4) तीन इन्द्रिय, (5) चार इन्द्रिय, (6) असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय और (7) संज्ञी पञ्चेन्द्रिय। इन सातों के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद मिलाकर, चौदह जीवसमास होते हैं।

प्रश्न 281 - बादर एकेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो दूसरों को बाधा देते हैं और स्वयं बाधा को प्राप्त होते हैं और जो किसी पदार्थ के आधार से रहते हैं, उन्हें बादर एकेन्द्रिय जीव कहते हैं।

प्रश्न 282 - सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव किसे कहते हैं ?

उत्तर - जो समस्त लोकाकाश में फैले हुए हैं, जो किसी को बाधा नहीं पहुँचाते और स्वयं किसी से बाधा को प्राप्त नहीं होते हैं, उन्हें सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव कहते हैं।

प्रश्न 283 - एकेन्द्रिय जीव के बादर, सूक्ष्म, दो इन्द्रिय जीव, तीन इन्द्रिय जीव, चार इन्द्रिय जीव, पाँच इन्द्रिय असैनी जीव और पाँच इन्द्रिय सैनी जीव - क्या इन सात प्रकार के जीवों के भी कुछ भेद हैं ?

उत्तर - हाँ है। ये सातों पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से 14 भेद हैं।

प्रश्न 284 - पर्याप्त और अपर्याप्त से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर - जैसे-मकान, घड़ा, वस्त्रादि वस्तुएँ पूर्ण और अपूर्ण होती हैं; उसी प्रकार ये सात प्रकार के जीव भी पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं।

प्रश्न 285 - पर्याप्ति कितनी होती हैं ?

उत्तर - छह होती हैं - आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, भाषा और मन।

प्रश्न 286 - एकेन्द्रिय जीव के कितनी पर्याप्ति होती हैं ?

उत्तर - चार होती है :— आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वास।

प्रश्न 287 - दो इन्द्रिय जीवों से लेकर असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों तक के कितनी-कितनी पर्याप्ति होती हैं ?

उत्तर – प्रत्येक को पाँच-पाँच पर्याप्ति होती हैं। आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, और भाषा।

प्रश्न 288 – संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव के कितनी पर्याप्ति होती हैं ?

उत्तर – छहों ही होती हैं – आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वास, भाषा, और मन।

प्रश्न 289– यह पर्याप्तियाँ कब पूर्ण होती हैं ?

उत्तर – एक अन्तर्मूहर्त में पूर्ण हो जाती हैं।

प्रश्न 290 – अपर्याप्तक जीव की क्या दशा है ?

उत्तर – अपर्याप्तक जीव, एक श्वास में अठारह बार जन्म-मरण करता है।

प्रश्न 291 – श्वास किसे कहते हैं ?

उत्तर – निरोगी पुरुष की एक बार नाड़ी चलने में जितना समय लगता है, उसे श्वास कहते हैं।

प्रश्न 292 – श्वास की संख्या का माप क्या है ?

उत्तर – अड़तालीस मिनट में तीन हजार सात सौ तिहत्तर श्वास होते हैं।

प्रश्न 293– पर्याप्तियों से क्या सिद्ध होता है ?

उत्तर – जैसे, संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव जब-जब जहाँ पर उत्पन्न होता है, वहाँ पर इन सब पर्याप्तियों की शुरुआत एक साथ होती है, लेकिन पूर्णता क्रम से होती हैं; उसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर सर्व गुणों में अंशरूप से शुद्धता एक साथ प्रगट हो जाती है, परन्तु पूर्णता क्रम से होती है। (1) सम्यग्दर्शन, चौथे गुणस्थान में पूर्ण हो जाता है। (2) चारित्र, बारहवें गुणस्थान में पूर्ण हो जाता है। (3) ज्ञान-

दर्शन-वीर्य की पूर्णता, तेरहवें गुणस्थान के शुरुआत में हो जाती है। (4) योग की पूर्णता, चौदहवें गुणस्थान में होती है।

प्रश्न 294 - जीव, पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं — यह किस अपेक्षा से कहा जा सकता है ?

उत्तर - अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा जा सकता है, परन्तु ऐसा है नहीं।

प्रश्न 295 - जीव, संज्ञी व असंज्ञी किस अपेक्षा कहा जा सकता है ?

उत्तर - अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा जा सकता है, परन्तु है नहीं — ऐसा जानना।

प्रश्न 296 - पर्याप्त और अपर्याप्त में हेय-ज्ञेय-उपादेयपना किस-किस प्रकार है ?

उत्तर — (1) पर्याप्त और अपर्याप्त से सर्वथा भिन्न, निज शुद्धात्मतत्त्व ही आश्रय करनेयोग्य परम उपादेय है। (2) निज शुद्धात्मतत्त्व के आश्रय से जो शुद्धि प्रगटी, वह प्रगट करनेयोग्य उपादेय है। (3) साधकजीव के भूमिकानुसार जो राग है, वह हेय है। (4) पर्याप्ति और अपर्याप्ति-ये सब व्यवहारनय से ज्ञान का ज्ञेय है।

प्रश्न 297 - पर्याप्तियों का कर्ता कौन है और कौन नहीं है ?

उत्तर - पर्याप्तियों का कर्ता पुद्गल है और पर्याप्ति उसका कर्म है। जीव से इनका सर्वथा कर्ता-कर्मसम्बन्ध नहीं है।

प्रश्न 298 - जीवसमास की बारहवीं गाथा का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर - पर्याप्तियों और प्राणों से सर्वथा भिन्न, निज शुद्धात्मतत्त्व ही आश्रय करनेयोग्य परम उपादेय है।

जीव के दूसरे भेद

मग्गणगुणठाणेहि य चउदसहि हवंति तह असुद्धणया।
विण्णेया संसारी सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया॥13॥

गाथार्थ :- सर्व संसारी जीव, अशुद्धनय से मार्गणास्थान और गुणस्थान की अपेक्षा से चौदह-चौदह प्रकार के हैं। शुद्धनय से यथार्थ में सब संसारी जीव, शुद्ध जानना।

प्रश्न 299 - बृहद द्रव्यसंग्रह की इस गाथा के शीर्षक में क्या कहा है?

उत्तर - 'अब, शुद्ध-पारिणामिक-परमभाव ग्राहक शुद्ध द्रव्यार्थिकनय से जीव शुद्ध-बुद्ध-एक-स्वभाववाले हैं, तो भी पश्चात् अशुद्धनय से चौदह मार्गणास्थान और चौदह गुणस्थानसहित होते हैं - इस प्रकार प्रतिपादन करते हैं।'

प्रश्न 300 - शुद्ध द्रव्यार्थिक और अशुद्धनयों का विषय एक ही साथ होने पर भी (प्रथम) शुद्ध द्रव्यार्थिकनय और 'पश्चात् अशुद्धनय' - ऐसा क्यों कहा है?

उत्तर - (1) शुद्ध द्रव्यार्थिकनय का विषय एक ही आश्रय करने योग्य है, क्योंकि उसके आश्रय से ही जीव के धर्मरूप शुद्धपर्याय प्रगट होती है और उसी के आश्रय से ही वृद्धि करके पूर्णता की प्राप्ति होती है। (2) अशुद्धनय के विषय के आश्रय से जीव के अशुद्धपर्याय प्रगट होती है, इसलिए उसका आश्रय छोड़नेयोग्य है। — ऐसा बताने के लिए शास्त्रों में शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को प्रथम और अशुद्धनय / व्यवहारनय को पश्चात् कहा गया है।

प्रश्न 301 - शुद्ध पारिणामिकभाव का क्या अर्थ है?

उत्तर - पारिणामिक का अर्थ, सहजस्वभाव है। उत्पाद-व्ययरहित ध्रुव एकरूप स्थिर रहनेवाला पारिणामिकभाव है।

प्रश्न 302 – पारिणामिकभाव किस जीव को होता है ?

उत्तर – निगोद से लगाकर सिद्धदशा तक सभी जीवों में 'त्रिकाल (अनादि अनन्त) ध्रुवरूप से शक्तिरूप से शुद्ध है' — यह होता है। कहा गया है कि 'पारिणामिक भाव के बिना कोई जीव नहीं है।'

प्रश्न 303 – क्या पारिणामिकभाव में बाकी चार भाव नहीं है ?

उत्तर – नहीं हैं, क्योंकि औदयिक–औपशमिक–क्षायोपशमिक और क्षायिक – इन चार भावों से रहित जो भाव है, वह पारिणामिकभाव है।

प्रश्न 304 – पारिणामिकभाव में औपशमिक आदि चार भाव क्यों नहीं आते हैं ?

उत्तर – (1) औपशमिकादि चार भावों में उदय–उपशम–क्षयोपशम–क्षय, जिसका निमित्तकारण है – ऐसे चार भाव हैं, और जिसमें कर्मोपाधिरूप निमित्त किंचितमात्र नहीं है, मात्र द्रव्य –स्वभाव ही जिसका कारण है — ऐसा एक पारिमाणिकभाव है, (2) औपशमिकादि चार भाव, पर्यायरूप हैं और पारिणामिकभाव, पर्यायरहित हैं; इसलिए चार भावों में पारिणामिकभाव नहीं आता है।

प्रश्न 305 – इन पाँच भावों को 'परम' और 'अपरम' क्यों कहा जाता है ?

उत्तर – (1) पारिणामिकभाव त्रिकाल शुद्ध और परम है; इसलिए शुद्ध पारिणामिकभाव को 'परमभाव' कहते हैं, क्योंकि इसके आश्रय से ही शुद्धपर्याय प्रगट–वृद्धि और पूर्णता होती है। (2) दूसरे औपशमिकादि चार भावों को 'अपरमभाव' कहते हैं क्योंकि इनके आश्रय से जीव में अशुद्धपर्याय प्रगट होती है।

प्रश्न 306 – समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष को उखाड़ फैंकने में कौनसा भाव समर्थ है ?

उत्तर – परमभाव पारिणामिक, त्रिकाल शुद्ध है। यह परमभाव ही समस्त कर्मरूपी विषवृक्ष को उखाड़ फैंकने में समर्थ है।

प्रश्न 307 – इस गाथा में 'सव्वे सुद्धा हु सुद्धणया' से क्या तात्पर्य है ?

उत्तर – शुद्धनय से सभी जीव वास्तव में शुद्ध हैं। यहाँ शुद्धनय का अर्थ द्रव्यार्थिकनय है – इस दृष्टि से देखने पर सभी जीव शुद्ध ज्ञायकभाव के धारक है।

प्रश्न 308 – इस गाथा में अशुद्धनय का वर्णन क्या बतलाने के लिए किया गया है ?

उत्तर – उन पर्यायों को जीव स्वयं स्वत: पर से निरपेक्षतया करता है। कर्म का निमित्त होने पर भी, कर्म उन्हें कराता नहीं है – यह बतलाने के लिए अशुद्धनय का वर्णन इस गाथा में किया है।

प्रश्न 309 – मार्गणास्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर – जिन-जिन धर्म विशेषों से जीवों का अन्वेषण (खोज) किया जाता है, उन-उन धर्म विशेषों को मार्गणास्थान कहते हैं।

प्रश्न 310 – मार्गणास्थान के कितने भेद हैं ?

उत्तर – चौदह भेद हैं (1) गति, (2) इन्द्रिय, (3) काय, (4) योग, (5) वेद, (6) कषाय, (7) ज्ञान, (8) संयम, (9) दर्शन, (10) लेश्या, (11) भव्यत्व, (12) सम्यक्त्व, (13) संज्ञित्व, (14) आहारत्व।

प्रश्न 311 – चौदह मार्गणा किस नय से कही जाती हैं और किस नय से नहीं हैं ?

उत्तर – ये सब निज त्रिकाल शुद्ध आत्मा में शुद्ध निश्चयनय के बल से नहीं हैं; अशुद्धनय से कही जाती हैं।

प्रश्न 312 – चौदह मार्गणाओं में 'गतिमार्गणा' बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर – (1) नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव नाम की चार गतियाँ हैं। (2) चारों गतियों सम्बन्धी शरीर भी है। (3) चारों गतियों सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय निमित्त भी है। (4) चारों गतियों सम्बन्धी भाव भी हैं। (5) परन्तु निज भगवान का गतिरहित अगतिस्वभाव है। (6) उसका आश्रय लेकर, अन्तरात्मा बनकर, क्रम से परमात्मा बने —यह मर्म है।

प्रश्न 313 – (1) आत्मा चार गतियों के शरीरवाला है। (2) आत्मा को चार गति सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय होता है। यह किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर – अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि आत्मा तो अगतिस्वभाववाला है।

प्रश्न 314 – आत्मा के चार गति सम्बन्धी भाव होते हैं – यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर – उपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है।

प्रश्न 315 – मार्गणाओं में 'इन्द्रियमार्गणा' बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर – (1) एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिरिन्द्रिय, और पञ्चेन्द्रियरूप पाँच जड़इन्द्रियाँ हैं। (2) पाँच इन्द्रियों सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय भी है। (3) इन्द्रियों सम्बन्धी ज्ञान का उघाड़ भी है। (4) परन्तु निज भगवान आत्मा, इन्द्रियों से रहित अतीन्द्रिय-स्वभाववाला है। (5) उसका आश्रय लेकर, पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होवे — यह मर्म है।

प्रश्न 316 – आत्मा, पाँच जड़ इन्द्रियोंवाला है; आत्मा को

जड़इन्द्रियों सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय है — यह किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर – अपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि आत्मा तो अतीन्द्रियस्वभाववाला है।

प्रश्न 317 – आत्मा को इन्द्रियों सम्बन्धी ज्ञान का उघाड़ है, – यह किस अपेक्षा से कहा जाता है।

उत्तर – उपचरितसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है।

प्रश्न 318 – मार्गणाओं में 'कायमार्गणा' बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर – (1) पृथ्वीकाय, जलकाय, तेजकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, और त्रसकाय के भेद से छह काय प्रकार की हैं। (2) आत्मा के कायसम्बन्धी शरीर है। (3) आत्मा के कायसम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय भी है। (4) आत्मा के कायसम्बन्धी ज्ञान का उघाड़ भी है, (5) परन्तु आत्मा, काय से रहित अकायस्वभाववाला है। (6) उसका आश्रय लेकर, पर्याय में अकायपना प्रगट होवे — यह मर्म है।

प्रश्न 319 – (1) आत्मा, पृथ्वी आदि कायवाला है। (2) आत्मा को कायसम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय है — यह किस अपेक्षा कहा ज्ञाता है ?

उत्तर – अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि आत्मा तो अकायस्वभाववाला है।

प्रश्न 320 – आत्मा को कायसम्बन्धी ज्ञान का उघाड़ है – यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर – उपचरितसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है।

प्रश्न 321 - मार्गणाओं में 'योगमार्गणा' बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर - (1) मन, वचन, और काययोग के भेद से योगमार्गणा के तीन प्रकार हैं। (2) विस्तार से (अ) सत्य, असत्य, उभय, और अनुभयरूप से मनोयोग, चार प्रकार का है। (आ) सत्य, असत्य, उभय, और अनुभयरूप से वचनयोग, चार प्रकार का है। (इ) औदारिक, मिश्र, और कार्मण-ये काययोग के सात प्रकार हैं। इस प्रकार सब मिलकर पन्द्रह प्रकार की योगमार्गणा है। (3) आत्मा के मन-वचन-कायसम्बन्धी जड़योग का सम्बन्ध है। (4) आत्मा के जड़योग सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय भी है। (5) आत्मा के मन-वचन-सम्बन्धी प्रदेशों में कम्पन भी है। (6) परन्तु भगवान आत्मा का अयोगस्वभाव त्रिकाल पड़ा है। (7) उसका आश्रय लेकर पर्याय में अयोगीपना प्रगट होवे — यह मर्म है।

प्रश्न 322 - (1) आत्मा, जड़मन-वचन-कायसम्बन्धी योगवाला है। (2) आत्मा को जड़मन-वचन-कायसम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय है - यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर - अनुपचरितसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि आत्मा तो अयोगीस्वभाववाला है।

प्रश्न 323 - आत्मा को मन-वचन-कायसम्बन्धी योग का कम्पन है - यह किस अपेक्षा से कहा जाता है ?

उत्तर - उपचरितसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है।

प्रश्न 324 - मार्गणाओं में 'वेदमार्गणा' बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर - (1) स्त्रीवेद, पुरुषवेद, और नपुंसकवेद के भेद से वेदमार्गणा के तीन प्रकार हैं। (2) आत्मा के संयोगरूप तीन वेद

सम्बन्धी पुद्गल का सम्बन्ध है। (3) आत्मा के तीन वेद सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय भी है। (4) आत्मा में तीन वेद सम्बन्धी राग भी है। (5) परन्तु आत्मा का अवेदस्वभाव त्रिकाल पड़ा है। (6) उसका आश्रय लेकर, पर्याय में अवेदपना प्रगट होवे - यह मर्म है।

प्रश्न 325 - (1) आत्मा, तीन वेद सम्बन्धी पुद्गलवाला है। (2) आत्मा के तीन वेद सम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय है। यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर - अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि आत्मा तो त्रिकाल अवेदस्वभावी है।

प्रश्न 326 - आत्मा के वेदसम्बन्धी राग है - यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर - उपचरितसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है।

प्रश्न 327 - मार्गणाओं में 'कषायमार्गणा' बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर - (1) क्रोध-मान-माया-लोभ के भेद से कषायमार्गणा चार प्रकार की है। विस्तार से (2) अनन्तानुबधी क्रोधादि चार, अप्रत्याख्यान क्रोधादि चार, प्रत्याख्यान क्रोधादि चार, संज्वलन क्रोधादि चार, हास्य-अरति-रति आदि भेद से नो कषाय; इस प्रकार पच्चीस प्रकार की कषायमार्गणा है। (3) पच्चीस कषायसम्बन्धी शरीर की अवस्थाएँ हैं। (4) पच्चीस कषायसम्बन्धी चारित्रमोहनीय द्रव्यकर्म का उदय भी है। (5) पच्चीस कषायसम्बन्धी राग भी है। (6) परन्तु त्रिकाली अकषायस्वभाववाला आत्मा भिन्न त्रिकाल पड़ा है। (7) उसका आश्रय लेकर, पर्याय में स्वरूपाचरणचारित्र, देशचारित्र, सकलचारित्र, यथाख्यातचारित्र प्रगट करके परम यथाख्यातचारित्र प्रगट होवे-यह मर्म है।

प्रश्न 328 - (1) आत्मा को पच्चीस कषायसम्बन्धी शरीर की अवस्था है; कषायसम्बन्धी द्रव्यकर्म का उदय है - यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर - अनुपचरितअसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है, परन्तु ऐसा है नहीं, क्योंकि आत्मा तो अकषायस्वभाववाला है।

प्रश्न 329 - आत्मा में पच्चीस कषायसम्बन्धी विकारीभाव है- यह किस अपेक्षा कहा जाता है ?

उत्तर - उपचरितसद्भूतव्यवहारनय से कहा जाता है।

प्रश्न 330 - मार्गणाओं में 'ज्ञानमार्गणा' बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर - (1) मति, श्रुत, अवधि, मन:पर्यय, और केवलज्ञान तथा कुमति, कुश्रुत और कुअवधि-इस प्रका आठ प्रकार की ज्ञानमार्गणा है। (2) इन भेदों से रहित त्रिकाल ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है। (3) उसका आश्रय लेकर, पर्याय में कुमति-कुश्रुत और कुअवधि ज्ञान का अभाव करके, मति-श्रुतादि, ज्ञान प्रगट कर, क्रम से केवलज्ञान की प्राप्ति होवे -यह ज्ञानमार्गणा का मर्म है।

प्रश्न 331 - मार्गणाओं में 'संयममार्गणा' बतलाने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर - (1) सामायिक, छेदोपस्थापन, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय, और यथाख्यातरूप से पाँच प्रकार का चारित्र तथा संयमासंयम और असंयम से दो प्रतिपक्षरूप भेद मिलाकर, सात प्रकार की संयममार्गणा है। (2) चारित्रगुणादिरूप त्रिकाल भगवान एकरूप पड़ा है। (3) उसका आश्रय लेकर प्रथम, स्वरूपाचरण-चारित्र की प्राप्ति करके, क्रम से सामायिक आदिरूप चारित्र की बुद्धि करके, यथाख्यातचारित्र की प्राप्ति होवे - यह संयममार्गणा का मर्म है।

प्रश्न 332 - मार्गणाओं में 'दर्शनमार्गणा' के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर - (1) चक्षु-अचक्षु-अवधि, और केवलदर्शन के भेद से चार प्रकार की दर्शनमार्गणा है। (2) दर्शनगुणादिरूप त्रिकाली भगवान आत्मा एकरूप पड़ा है। (3) उसका आश्रम लेकर केवलदर्शन की प्राप्ति होवे — यह दर्शनमार्गणा को जानने का मर्म है।

प्रश्न 333- मार्गणाओं में 'लेश्यामार्गणा' बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर - (1) परमात्मद्रव्य का विरोध करनेवाली कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल के भेद से लेश्या छह प्रकार की है, (2) परन्तु अलेश्यास्वरूप त्रिकाली स्वभाव एकरूप पड़ा है, (3) उसका आश्रय लेकर लेश्याओं का अभाव करके, पूर्ण अलेश्यापना पर्याय में प्रगट होवे- यह लेश्यामार्गणा को जानने का मर्म है।

प्रश्न 334 - मार्गणाओं में 'भव्यमार्गणा' के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर - (1) भव्य और अभव्य के भेद से दो प्रकार की भव्यमार्गणा है। (2) भव्य-अभव्य से रहित, त्रिकाल परमात्मद्रव्य एकरूप पड़ा है, (3) उसका आश्रय लेकर, पर्याय में सिद्धदशा की प्राप्ति होवे - यह भव्य-अभव्यमार्गणा को जानने का मर्म है।

प्रश्न 335 - 14 मार्गणाओं में 'सम्यक्त्व मार्गणा' बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर - (1) औपशमिक, क्षायोपशमिक, और क्षायिकसम्यक्त्व के भेद से तथा मिथ्यादर्शन, सासादन और मिश्र, इन तीन विपरीत भेदोंसहित छह प्रकार की सम्यक्त्वमार्गणा है। (2) श्रद्धागुणसहित

अभेद आत्मा, त्रिकाल पड़ा है। (3) उसका आश्रय लेकर मिथ्यादर्शनादि का अभाव करके, प्रथम औपशमिक की प्राप्ति कर, क्षायोपशमिक की प्राप्ति कर, क्षायिकसम्यक्त्व प्रगट होवे- यह सम्यक्त्वमार्गणा को जानने का मर्म है।

प्रश्न 336 - मार्गणाओं में 'संज्ञित्वमार्गणा' बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर - (1) संज्ञी और असंज्ञी के भेद से संज्ञित्वमार्गणा दो प्रकार की है। (2) संज्ञी और असंज्ञी से रहित, निज परमात्मस्वरूप आत्मा एकरूप पड़ा है। (3) उसका आश्रय लेकर, पूर्ण धर्म की प्राप्ति होवे - यह संज्ञित्वमार्गणा को जानने का मर्म है।

प्रश्न 337 - मार्गणाओं में 'आहारमार्गणा' बताने के पीछे क्या मर्म है ?

उत्तर - (1) आहारक और अनाहारक जीवों के भेद से आहारमार्गणा भी दो प्रकार की है। (2) त्रिकाल अनाहारकस्वरूप आत्मस्वभाव शाश्वत् पड़ा है, (3) उसका आश्रय लेकर, मोक्ष की प्राप्ति होवे - यह आहारमार्गणा को जानने का मर्म है।

प्रश्न 338 - गुणस्थान किसे कहते हैं ?

उत्तर - मोह और योग के सद्भाव या अभाव से, जीव के श्रद्धा-चारित्र-योग आदि गुणों की तारतम्यतारूप अवस्था विशेष को गुणस्थान कहते हैं।

प्रश्न 339 - गुणस्थान के कितने भेद हैं ?

उत्तर - चौदह भेद हैं - मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरत -सम्यक्त्व, देशविरत, प्रमत्तविरत, अप्रमत्तविरत, अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसाम्पराय, उपशान्तमोह, क्षीणमोह, संयोगकेवली, और अयोगकेवली।

प्रश्न 340 - मिथ्यात्वगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - (1) सच्चे देव-शास्त्र-गुरु का विपरीत श्रद्धान, (2) जीवादि तत्त्वों में विपरीत मान्यता, (3) स्व-पर की एकत्वरूप श्रद्धा, (4) अतत्त्व श्रद्धा।

प्रश्न 341 - सासादनगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - सम्यक्त्व को छोड़कर, मिथ्यात्व की ओर जाना।

प्रश्न 342 - मिश्रगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - सम्यक्त्व और मिथ्यात्व के परिणामों का एक ही साथ होना।

प्रश्न 343 - अविरतसम्यक्त्वगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - सम्यक्त्व तो है ही और साथ में स्वरूपाचरणचारित्र भी है, किन्तु अशक्तिवश किसी प्रकार के निश्चयव्रत और चारित्र को धारण न कर सके।

प्रश्न 344 - देशविरतगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - सम्यक्त्वसहित एकदेश निश्चयचारित्र का पालन करना।

प्रश्न 345 - प्रमत्तविरतगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - सम्यक्त्वचारित्र की भूमिका में अहिंसादि शुभोपयोगरूप महाव्रतों का पालन करता है, यह प्रमाद है। (याद रहे सर्वथा नग्न दिगम्बरदशापूर्वक ही मुनिपद होता है।)

प्रश्न 346 - अप्रमत्तविरतगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - प्रमादरहित होकर, आत्मस्वरूप में सावधान रहना।

प्रश्न 347 - अपूर्वकरणगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - सातवें गुणस्थान से ऊपर, विशुद्धता में अपूर्वरूप से उन्नति करना।

प्रश्न 348 – अनिवृत्तिकारणगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर – आठवें गुणस्थान से अधिक उन्नति करना।

प्रश्न 349 – सूक्ष्मसम्परायगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर – समस्त कषायों का उपशम अथवा क्षय होना और मात्र संज्वलन लोभकषाय का सूक्ष्मरूप से रहना।

प्रश्न 350 – उपशान्तकषायगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर – कषायों का सर्वथा उपशम हो जाना।

प्रश्न 351 – क्षीणकषायगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर – कषायों का सर्वथा क्षय हो जाना।

प्रश्न 352 – संयोगकेवलीगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर – केवलज्ञान प्राप्त होने पर भी, योग की प्रवृत्ति होना।

प्रश्न 353 – अयोगकेवलीगुणस्थान का स्वरूप क्या है ?

उत्तर – योग की प्रवृत्ति सर्वथा बन्द हो जाना।

प्रश्न 354 – ये चौदह गुणस्थान किस नय से हैं और किस नय से नहीं हैं ?

उत्तर – ये चौदह गुणस्थान, अशुद्धनय से है; शुद्ध निश्चयनय नहीं हैं।

प्रश्न 355 – इस गाथा का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर – (1) जीव तो परमार्थ से चैतन्यशक्तिमात्र है। (2) वह अविनाशी होने से शुद्ध पारिणामिकभाव है। वह भाव ही ध्येय (ध्यान करने योग्य) है। (3) किन्तु वह ध्यानरूप नहीं है, क्योंकि ध्यानपर्याय विनश्वर है, और शुद्धपारिणामिकभाव, द्रव्यरूप है, अविनाशी है; इसलिए वही आश्रय करनेयोग्य है – यह गाथा का तात्पर्य है।

नोट – गुणस्थान, मार्गणास्थान, आदि का स्वरूप करणानुयोग के शास्त्रों से विस्तारपूर्वक जाना जा सकता है।

सिद्धत्व-विस्त्रसा उर्ध्वगमनत्व अधिकार

णिक्कम्मा अट्ठगुणा किंचूणा चरमदेहदो सिद्धा।
लोयग्गठिदा णिच्चा उप्पादवएहिं संजुत्ता॥14॥

गाथार्थ :– सिद्धभगवान, कर्मों से रहित हैं, आठ गुणों के धारक हैं, अन्तिम शरीर से कुछ न्यून (कम) आकारवाले हैं, लोक के अग्रभाग में स्थित हैं, नित्य हैं और उत्पाद-व्यय से युक्त हैं।

प्रश्न 356 – इस गाथा में क्या बताया है।

उत्तर – दो अधिकारों का वर्णन किया है (1) सिद्धत्व, (2) उर्ध्वगमन।

प्रश्न 357 – सिद्ध अधिकार में क्या बताया है ?

उत्तर – (1) ज्ञानावरणादि आठ कर्म रहित। (2) सम्यक्त्वादि आठ गुणों सहित। (3) अन्तिम शरीर से कुछ न्यून, सिद्धभगवान हैं।

प्रश्न 358 – ऊर्ध्वगमन अधिकार में क्या बताया है ?

उत्तर – (1) लोक के अग्रभाग में स्थित हैं। (2) नित्य हैं। (3) उत्पाद-व्यय से संयुक्त है – यह ऊर्ध्वगमन अधिकार में बताया है।

प्रश्न 359 – सिद्धों के आठ गुण कौन-कौन से हैं ?

उत्तर – (1) सम्यक्त्व, (2) ज्ञान, (3) दर्शन, (4) वीर्य, (5) सूक्ष्मत्व, (6) अवगाहन, (7) अगुरुलघु, (8) अव्याबाध – इन सर्व गुणों की परिपूर्ण शुद्धपर्यायें सिद्ध के होती हैं।

प्रश्न 360 – क्या सिद्धों में आठ ही गुण होते हैं ?

उत्तर – व्यवहार से आठ गुण और निश्चय से अनन्त गुण, सिद्धभगवन्तों के होते हैं।

प्रश्न 361 – जब सिद्धों में अनन्त गुण प्रगट हो गये हैं, तो आठ गुणों का ही वर्णन क्यों किया है ?

उत्तर – मध्यम रुचिवाले शिष्यों की अपेक्षा से, व्यवहारनय से आठ गुणों का ही वर्णन किया है।

प्रश्न 362 – क्या शिष्य कई रुचिवाले होते हैं ?

उत्तर – (1) संक्षेपरुचिवाले शिष्य। (2) विस्ताररुचिवाले शिष्य। (3) मध्यमरुचिवाले शिष्य – इस प्रकार तीन रुचिवाले शिष्य होते हैं।

प्रश्न 363 – संक्षेपरुचिवाले शिष्यों के प्रति सिद्धों के लिए संक्षेप में क्या बताया जाता है ?

उत्तर – (1) अभेदनय से सिद्धभगवान अनन्त ज्ञानादि चार-सहित। (2) अनन्त ज्ञान-दर्शन-सुख त्रयसहित (3) केवलज्ञान-दर्शन दोसहित। (4) साक्षात् अभेदनय से शुद्ध चैतन्य ही एक गुण है – इस प्रकार संक्षेपरुचिवाले शिष्यों के अपेक्षा से संक्षेप में कहा जाता है।

प्रश्न 364 – विस्ताररुचिवाले शिष्यों को क्या बताया जाता है ?

उत्तर – विशेष अभेदनय की अपेक्षा से सिद्धभगवान में (1) निर्गतित्व, (2) निरिन्द्रियत्व, (3) निष्कायत्व, (4) निर्योगत्व, (5) निर्वेदत्व, (6) निष्कषायत्व, (7) निर्नामत्व, (8) निर्गोत्रत्व, (9) निरायुत्व इत्यादि अनन्त विशेषगुण तथा अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, प्रमेयत्वादि अनन्त सामान्यगुण – इस प्रकार आगम से अविरोध से जानना चाहिए।

प्रश्न 365 - सिद्धों के आठ गुणों में से केवलज्ञान और केवलदर्शन का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - (1) केवलज्ञान = त्रिकाल-तीन लोकवर्ती समस्त वस्तुगत अनन्त धर्मों को युगपत् विशेषरूप से प्रकाशित करे।

(2) केवलदर्शन = उन सबको युगपत् सामान्यरूप से प्रकाशित करे।

प्रश्न 366 - सिद्धों के आठ गुणों में से अनन्त वीर्य और क्षायिकसम्यक्त्व का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - (3) अनन्त वीर्य = अनन्त पदार्थों को जानने में खेद के अभावरूप दशा (4) क्षायिकसमयक्त्व = समस्त जीवादि तत्त्वों के विषय में विपरीताभिनिवेशरहित परिणति का होना।

प्रश्न 367 - सिद्धों के आठ-आठ गुणों में से सूक्ष्मत्व और अवगाहनत्व का स्वरूप क्या है ?

उत्तर - (5) सूक्ष्मत्व = सूक्ष्म अतीन्द्रिय केवलज्ञान का विषय होने से सिद्धों के स्वरूप को सूक्ष्म बताता है। (6) अवगाहनत्व = जहाँ एक सिद्ध हो, वहाँ अनन्त सिद्ध समाविष्ट होते हैं।

प्रश्न 368 - सिद्धों के आठ गुणों में से अगुरुलघुत्व और अव्यावाधत्व का स्वरूप क्या है ?

उत्तर — (7) अगुरुलघुत्व = जीवों में छोटे-बड़ेपने का अभाव। (8) अव्यावाधत्व = किसी से बाधा को प्राप्त न होना।

प्रश्न 369 - सिद्ध और कैसे हैं ?

उत्तर - तेरहवें गुणस्थान के अन्त भाग में नासिकादि छिद्र पूरे हो जाते हैं और एक चैतन्यघन बिम्ब हो जाता है; इसलिए सिद्धों का

आकार चरमदेह से कुछ न्यून होता है। (2) लोकाग्र में स्थित हैं। (3) उत्पाद-व्यय सहित हैं।

प्रश्न 370 - इस गाथा का तात्पर्य क्या है ?

उत्तर - (1) केवली सिद्धभगवान, रागादिरूप परिणामित नहीं होते हैं और वे संसार अवस्था को नहीं चाहते - यह श्रद्धान का बल जानना चाहिए। (2) जैसा सात तत्त्वों का श्रद्धान, छद्मस्थ को होता है, वैसा ही केवली-सिद्धभगवान के भी होता है। (3) इसीलिए ज्ञानादिक ही हीनता-अधिकता होने पर भी, तिर्यञ्चादिक और केवली-सिद्धभगवान के सम्यक्त्वगुण समान ही जानना। (4) इसलिए सभी जीवों को वैसा श्रद्धान प्रगट करना चाहिए और आगे बढ़ने का प्रयास चालू रखना चाहिए।

प्रश्न 371 - सिद्धों के उत्पाद-व्यय को समझाइये ?

उत्तर - (1) सिद्धत्व हो गया, वह बदलकर संसारीपना नहीं हो सकता है। (2) यदि प्रति समय उत्पाद-व्यय न हो तो द्रव्य के सत्पने का नाश हो जावे, क्योंकि 'उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्' ऐसा आगम का वचन है।

नोट - इस प्रकार वृहद्द्रव्य संग्रह की गाथा 1 से 14 तक के प्रश्नोत्तर ही लेखक द्वारा लिखे गये हैं, शेष गाथाओं के प्रश्नोत्तर अनुपलब्ध हैं। कृपया शेष गाथाएँ एवं टीका का भी मूलग्रन्थ से अभ्यास करना चाहिए। ●●

पण्डित कैलाशचन्द्र जैन

जन्म : सन् 1913

देह परिवर्तन : 19 दिसम्बर 2012

जन्मस्थान : ग्राम टिकरी, जिला मेरठ, उत्तरप्रदेश

पिता – श्री मिट्ठनलाल जैन

माता – श्रीमती भरतोदेवी जैन

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा, मथुरा-चौरासी एवं तत्पश्चात् जम्बू-विद्यालय, सहारनपुर में हुई। लघुवय में लाहौर में स्वतन्त्र व्यवसाय किया। देश के स्वाधीन होने के पश्चात्, स्वदेश वापिसी और बुलन्दशहर (उ०प्र०) में आजाद ट्रेडिंग कम्पनी के नाम से, पुस्तकों एवं स्टेशनरी का व्यवसाय किया। अपनी सहधर्मिणी श्रीमती विमलादेवी, चार पुत्रियों तथा एक पुत्र के साथ, पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करते हुए, धर्ममार्ग पर गतिशील रहे।

सिद्धक्षेत्र श्री गिरनारजी की यात्रा के समय, सोनगढ़ में विराजित दिव्यविभूति पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मंगल साक्षात्कार के उपरान्त, आपके जीवन में आमूलचूल परिवर्तन हुआ। फलस्वरूप, निरन्तर तत्त्वाराधना एवं तत्त्वप्रचार ही आपके जीवन के अभिन्न अंग बन गये और सम्पूर्ण देश में तत्त्वज्ञान की पताका फहराने के लिये, आप एकाकी निकल पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री के मंगल प्रवचनों एवं माननीय श्री रामजीभाई दोशी एवं खेमचन्दभाई सेठ की कक्षाओं में जो कुछ सीखा, उसे 'जैन-सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला' के, आठ भाग के रूप में संकलन का कार्य कर, जन-जन को जिनधर्म के गूढ़ रहस्य को साधारण भाषा में प्रस्तुत करने का अपूर्व कार्य किया।

आपकी तत्त्वज्ञान की प्रचार-प्रसार की उत्कृष्ट भावनाओं के फलस्वरूप, उन्हें क्रियान्वित करने हेतु, **तीर्थधाम मङ्गलायतन** के रूप में आपके स्वप्न को आपके परिवार व समग्र मुमुक्षु-समाज ने साकार किया। यहाँ से प्रकाशित मासिक-पत्रिका, **मङ्गलायतन** के आप आजीवन प्रधान सम्पादक रहे।

स्वाभिमानीवृत्ति के साथ ही, निर्भीकता, निस्पृहता, सिद्धान्तों पर अडिगता आदि आपके व्यक्तित्व की उल्लेखनीय विशेषताएँ रही हैं।

आपके उपकारों के प्रति नतमस्तक होते हुए, आपके श्रीचरणों में वन्दन समर्पित करते हैं, और आपकी इस अनुपम कृति को समाज के लाभार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं।

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला